
अध्यात्मयोगिनी
महाश्रमणी
साध्वी विजय श्री 'आर्या'

अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी

परम श्रद्धेया श्री कौशल्या देवी जी

महाराज की दीक्षा-स्वर्ण जयंति

के उपलक्ष में

पुस्तक	: अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी
आशीर्वचन	: आचार्य सम्राट् श्री देवेन्द्रमुनि जी महाराज
लेखिका एवं प्रमुख संपादिका	: साध्वी विजय श्री 'आर्या'
सहसंपादक	: श्री राजेन्द्र नगावत
संप्रेरिका	: साध्वी प्रियदर्शना 'प्रियदा' साध्वी प्रतिभा श्री 'प्राची'
लोकार्पण	: वी० नि० २५२२ १६ जुलाई सन् १९९६, वीर नगर, दिल्ली
मुद्रक	: पार्श्व ऑफसैट प्रैस दिल्ली - ९ दूरभाष : ७४५६९७३/४
प्रकाशक	: श्री शादीलाल जी जैन श्री सुरेन्द्र मोहन जी जैन, (वीर नगर, दिल्ली-७)

समर्पण

जिनका संयममय जीवन
मेरे लिये सदा प्रेरणादायी रहा उन
परम आदरणीय
परम वंदनीय
परम पूज्यनीय
वात्सल्यमूर्ति
अध्यात्मयोगिनी
महाश्रमणी
महासती श्री कौशल्या देवी जी महाराज
के श्रद्धास्पद
पावन
कर-कमलों में
सविनय
सश्रद्ध
सभक्ति
सादर समर्पित

-साध्वी विजय श्री 'आर्या'

दो शब्द

भारत विश्व के देशों में प्रथम आता है, यदि हम धर्म की दृष्टि से विचार करें। क्योंकि यहाँ अनेक धर्मों के अनुयायी रहते हैं, पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ। किसी भी भारत के नागरिक को अपने-अपने धर्माचरण के अनुसार पूर्ण श्रद्धा के साथ पूजा अर्चना करने की स्वतंत्रता है। जैन धर्म सर्व प्राचीन धर्म है, जो अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद में पूर्ण विश्वास रखता है। जैन दर्शन का यह मूलाधार है। अन्तिम तीर्थंकर शासनेश भगवान महावीर स्वामी के इस सिद्धांत का प्रचार-प्रसार वर्तमान समय में, अनेक श्रमण व श्रमणियाँ कर रहे हैं।

जैन धर्म की श्रमण, श्रमणियाँ, आत्म साधना, प्रभावना, तप, त्याग, स्वाध्याय में सदैव तल्लीन रहती है साथ ही अपनी लेखनी द्वारा भी अपने पूर्वाचार्यों और महासतियाँ जी के संयमी जीवन की झाँकी हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते रहते हैं, जो हमारे आदर्श रुप हैं, जिनके चरित्र से हम अपने जीवन का भी कल्याण कर सकते हैं।

इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए महासती श्री विजय श्री जी महाराज ने अपनी शाश्वत लेखनी द्वारा इस रचना में जैन धर्म की समुज्जवल उपासिका, जिन शासन की शान, पूर्णतया समर्पित, भारतीय संस्कृति की प्रतीक, ज्ञान, दर्शन, चरित्र को अंशतः लिखने का पूर्ण प्रयास किया है। वास्तव में कठोर परिश्रम के पश्चात् श्री विजय श्री जी महाराज ने इस

रचना को जैन धर्म की धरोहर के रुप में हमारे समाने प्रस्तुत किया है। क्योंकि महासती कौशल्याजी का समस्त जीवन पूर्णतया सादगी, सरलता, पवित्रता और समर्पण का जीवन है। तप-त्याग आगम, अध्ययन ही महासती जी की जीवनचर्या है। वे एक मृदुभाषी, अल्पभाषी साध्वी जी हैं। उन की हर क्रिया से जैन धर्म की आभा फूटती दृष्टिगोचर होती है। मैनें महासती जी के जीवन को विगत ४० वर्षों से देखा व परखा है। परन्तु सदैव मृदुल मुस्कान, धर्मचर्चा और सौम्यता के दर्शन ही महासती जी में हुये। वास्तव में महासती सतीत्व की प्रतिमूर्ति है, श्रमणसंघ की गरिमा है। हमारे लिये एक आदर्श प्रकाश स्तम्भ है, भूले भटकों को सच्चा मार्ग प्रदर्शित कराती है।

इस ग्रन्थ की रचना कर विदुषी महासती विजय श्री जी ने एक आदर्श जीवन समाज के सामने रखा है उनकी सफल व कुशल लेखनी एवं परिश्रम से ही महासती कौशल्या जी का व्यक्त्तिव व कृतित्व हमारे समक्ष आ पाया है जो इस युग में चौथे आरे की बानगी है। महासती जी का मेरे एवं मेरे परिवार पर सदैव ही वरदहस्त रहा है। मैं महासती जी के दीर्घ संयमी जीवन का अभिनन्दन करता हुआ वन्दन करता हूँ और शासनेश भगवान से उन के संयमी जीवन की उत्तरोत्तर वृद्धि की मंगल कामना करता हूँ वे सदैव हमें सच्चा मार्ग प्रदर्शित करती रहें।

ओम् शांति।

जे.डी. मित्तल
पू. महामंत्री जैन महासंघ देहली
(बलदेव पार्क, देहली)

प्रकाशकीय

हमारा परम सौभाग्य है कि हमें महासती केसरदेवी जी महाराज का वरदहस्त प्राप्त हुआ। महासती जी की विदुषी शिष्या कौशल्या देवी जी महाराज हमारे ही परिवार से संबधित है। महासती कौशल्या जी महाराज अपने दीर्घ सयंमी जीवन में अपनी आत्मा का कल्याण तो कर ही रही हैं साथ ही जिन शासन की चहुँमुखी प्रगति भी कर रही है। यह हमारे लिये अत्यंत गौरव का विषय है।

महासती श्री कौशल्या देवी जी महाराज की सुशिष्या विदुषी महासती विजय श्री जी महाराज ने अपनी आराध्या गुरुणी जी महाराज के व्यक्तित्व व कृतित्व को जैन जगत के सम्मुख लगन की अनूठी लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया है। अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में किसी महान आत्मा का जीवन चरित्र जनता के समक्ष आना एक अत्यन्त ही प्रेरणादायक कार्य है। जिससे जनमानस में धर्म के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। यह पुस्तक वस्तुतः में जनकल्याणकारी सिद्ध होगी।

इस पुस्तक में महासती कौशल्या जी महाराज का सम्पूर्ण जीवन चरित्र आपके समक्ष प्रस्तुत है। वास्तव इस युग में ऐसी महान आत्मा का उद्भव एक आलौकिक


की साधना, अनुपम आपका
रिका, हो कोटि-कोटि

अनुक्रमणिका

यह		इनका
आदिवचन	:	आचार्य सम्राट् श्री आनंद ऋषि जी महाराज
अमृत वर्षा	:	आचार्य सम्राट् श्री देवेन्द्रमुनि जी महाराज
मंगल कामना	:	उपाध्याय डॉ० विशालमुनि जी म०
अभिव्यक्ति	:	श्रमण संघीय सलाहकार श्री रतन मुनि जी महाराज
अतीत का आलोक	:	साध्वी डॉ० मंजु श्री जी
अर्पण	:	साध्वी विजय श्री 'आर्या'

बात है। मैं इस विषय में और अधिक क्या लिखूँ स्वयं आप इसका अध्ययन करके ही अपने जीवन का कल्याण कर सकेंगे। वास्तव में यह रचना आत्म साधना का एक मूल आधार होगी।

जैन धर्म की एक महान साधिका, विदुषी श्रमणीवर्या महासती कौशल्या जी के गौरवशाली, संयमी जीवन का वर्णन करने वाले इस महान ग्रन्थ के प्रकाशन का अवसर देकर महासती विजय श्री जी ने हमारा मान बढ़ाया है हम महासती जी के तो आभारी हैं ही, साथ ही पुस्तक को रोचक, सुन्दर और पठनीय बनाने में मुद्रक, सम्पादक, प्रेरक, महान संतो के आशीर्वचन तथा उन महानुभावों के भी आभारी है जिन्होने अपने-अपने विचार इस रचना में रखे।,

अंत में पाठकगण प्रस्तुत पुस्तक से लाभ उठाकर लेखिका तथा प्रकाशक के श्रम को सफल बनायेगें, ऐसी हमे आशा है।

निवेदक
शादी लाल जैन
सुरेन्द्र मोहन जैन
वीरनगर, दिल्ली

खण्ड-1

अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी अभिनंदनीय जीवन वृत

लेखिका
साध्वी विजय श्री 'आर्या'

अध्यात्मयोगिनी जीवन की ऋषभ रेखाएँ

यह | यहाँ

असंगता की ऊँचाइयाँ

अध्यात्म के पथ पर

अन्तर्यात्रा

यह | यहाँ

खण्ड-२

अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी कृतित्व

अध्यात्म वाणी

प्रवचन
महासती कौशल्या देवी जी

संपादिका
साध्वी विजय श्री 'आर्या'

यह — यहाँ

अध्यात्म - कण

महासती कौशल्या देवी जी

पृष्ठ 175 से 193 तक

संग्रहकर्त्री
साध्वी विजय श्री 'आर्या'

अध्यात्म के स्वर

महासती कौशल्या देवी जी

खण्ड ३

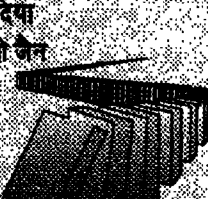
अभिनंदन की उषा

अभिमतों के घेरे में अध्यात्मयोगिनी

पृष्ठ 209 से 235 तक

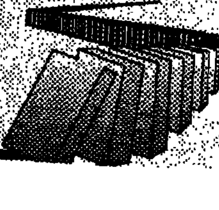
अभिनंदन की वेला अनुभव की पाती

पृष्ठ 238 से 284 तक



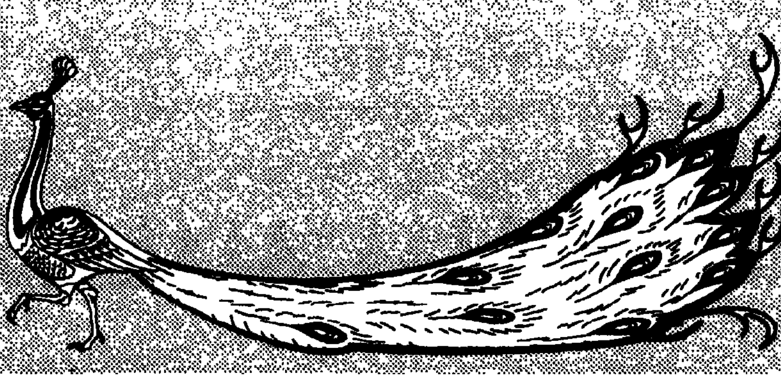
अभिवादन के स्वर

पृष्ठ 286 से 328 तक



अवशेष के पृष्ठ

यह	यहाँ
गधैया कुल की वंशावली	328
गधैया कुल की गरिमा	330
महासती जी की गुरुणी-परम्परा	335
महासती कौशल्यादेवी जी	336
महाराज का धर्म परिवार	
चातुर्मास-सूचि	337
आभार दर्शन	339



आदिवचन

आचार्य सम्राट् श्री आनंदऋषि जी महाराज

जीवन एक यात्रा है, जिसे प्रत्येक प्राणी सम्पन्न करता है, किन्तु सभी के चलने में बड़ा भारी अन्तर होता है। कुछ यात्री ऐसे होते हैं, जो अपना मार्ग लड़ते-झगड़ते तथा कटुता और वैमनस्य बढ़ाते हुए तय करते हैं तथा कुछ ऐसे होते हैं, जो सद्भावना और सहानुभूति के द्वारा अपने से अशक्त प्राणियों को सहयोग देते हुए, गिरतों को उठाते हुए सन्तोष और शान्तिपूर्वक अपनी मंजिल की ओर बढ़ते हैं। दोनों ही चलते हैं, किन्तु एक उसी पथ पर चल कर नरक और निगोद में पहुँचता है और दूसरा उसी मार्ग पर चलता हुआ स्वर्ग, मोक्ष तक भी पहुँच जाता है। इसका कारण केवल यही है कि एक, अन्य यात्रियों से असहयोग करता हुआ नाना प्रकार के कर्मों का बन्धन कर लेता है तथा दूसरा, सभी को सहयोग देता व लेता हुआ अपनी निर्मल भावनाओं के कारण पुण्य संचय कर लेता है जो उसकी आत्मा को ऊँचा उठाते हैं।

-आचार्य सम्राट श्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज

भारत की सांस्कृतिक उज्ज्वल समुज्ज्वल परम्पराओं में श्रमण-परम्परा का अपना अनूठा महत्व रहा है। अतीत के पृष्ठ इस बात के साक्ष्य हैं, कि यह परम्परा समतावादी जीवन-मूल्यों को स्थापित करने वाली श्रेष्ठ परम्परा रही है। इसमें चाहे नारी हो चाहे पुरुष दोनों को ही समान स्थान दिया है। तीर्थंकर केवल ज्ञान केवलदर्शन होने के पश्चात् तीर्थ की स्थापना करते हैं। चार तीर्थ में दो तीर्थ पुरुष से संबंधित हैं, तो दो तीर्थ नारी से संबंधित हैं। नारी और पुरुष दोनों ही मोक्ष के अधिकारी हैं। जैनसंघ में श्रमणों की अपेक्षा श्रमणियों की संख्या अधिक रही है। श्रावकों की अपेक्षा श्राविकाओं की संख्या अधिक है। आचार्य भद्रबाहु रचित कल्पसूत्र के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के चौरासी हजार श्रमण थे तो तीन लाख श्रमणियाँ थीं। अरिष्टनेमी के 18 हजार श्रमण थे तो 40 हजार श्रमणियाँ थीं। पार्श्वनाथ के सोलह हजार श्रमण थे तो अड़तीस हजार श्रमणियाँ थीं। भ० महावीर के चौदह हजार श्रमण और छत्तीस हजार श्रमणियाँ थीं। इसी तरह भगवान ऋषभदेव के समय श्रावक संख्या तीन लाख पाँच हजार, एवं श्राविका संख्या पाँच लाख चौवन हजार, भगवान पार्श्वनाथ के समय श्रावक संख्या एक लाख चौसठ हजार एवं श्राविका संख्या तीन लाख उनतालीस हजार तथा अरिष्टनेमी के समय श्रावक

संख्या एक लाख सात हजार एवं श्राविका संख्या तीन लाख अड़तालीस हजार, इसी तरह भ० महावीर के समय एक लाख उनसठ हजार श्रावक एवं तीन लाख 18 हजार श्राविकाएँ थीं। किन्तु वैदिक परम्परा में नारी पुरूष की तरह प्रतिष्ठित नहीं रही है।

ऋग्वेद की "सर्वानुक्रमणिका" में घोषा, रोमशा, अपाला, विश्ववारा, सूर्यासावित्री, वाक् आम्भृणी आदि नारियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिन्होंने वेद-सूक्तों की रचना कर अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके द्वारा रचित कुछ सूक्तों में उनके नाम भी उपलब्ध होते हैं, जैसे-विश्ववारा आत्रेयी ने ऋग्वेद के पाँचवे मंडल के 28 वें सूक्त की रचना की थी। अपाला ने 8 वें मंडल के 91 वें सूक्त में सात मंत्र हैं, उनकी रचना की थी। सूर्यासाविति ने 10 वें मंडल में पचासवें सूक्त की रचना की, जिसमें 47 मंत्र हैं। काक्क्षीवती घोषा ने 10 वें मंडल में 40 वें सूक्त की रचना की थी जिसमें प्रत्येक में चौदह-चौदह मंत्र है। वाक् आम्भृणी ने ऋग्वेद के 10 वें मंडल के 125 वें सूक्त की रचना की थी, जिसमें 8 मंत्र है।

वेदों के सूक्त की निर्माता होने पर भी नारी को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं दिया गया।

"न स्त्री शुद्रौ वेदमधीयेताम्"

प्राचीन वैदिककाल में नारियाँ भिक्षुणी या सन्यासिनी बनी हों ऐसे उल्लेख भी प्राप्त नहीं होते हैं।

मैक्समूलर, एस०सी०राय चौधरी, डॉ० राधकृष्णन् प्रभृति विज्ञों का मानना है कि उपनिषदों का निर्माण भगवान पार्श्वनाथ के पश्चात् हुआ है। उपनिषदों पर श्रमण संस्कृति का प्रभाव है, यही कारण है कि जहाँ वेदों में सन्यासिनी बनने का उल्लेख नहीं है, वहाँ बृहदारण्यकोपनिषद में मैत्रेयी याज्ञवल्क्य के साथ

सन्यास मार्ग का अनुकरण करती है। उसके पश्चात् रामायण और महाभारत काल में तो अनेक भिक्षुणियों तपसी व श्रमणियों का उल्लेख मिलता है। राम के वनगमन के समय सीता ने भिक्षुणी जीवन की प्रशंसा की है। रामायण के अरण्यकांड में शबरी को श्रमणी और तापसी कहा गया है। महाभारत के आदिपर्व में नारियों के द्वारा तप करने का भी उल्लेख है। महाभारत के शांतिपर्व में सुलभा के लिये भिक्षुणी शब्द का प्रयोग हुआ है।

यह स्पष्ट है कि वैदिक - परम्परा में जितना महत्त्व नर का रहा है, उतना नारी का नहीं। बाद में चलकर "नार्यस्तु यत्र पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवता" आदि सूक्तियाँ अवश्य ही प्राप्त होती है।

बौद्ध-परम्परा में भी तथागत् बुद्ध ने पहले भिक्षु-संघ बनाया। गौतमी ने आनन्द से प्रार्थना की, और आनन्द ने बुद्ध को निवेदन किया, कि महाप्रजापति गौतमी जी आपकी मौसी, अभिभाविका, पोषिका क्षीरदायिका रही है, आपकी मातेश्वरी की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने आपको दूध पिलाया है, उसे प्रव्रज्या मिलनी ही चाहिए। उन्होंने प्रव्रज्या की अनुमति तो दी, पर अन्त में दुःखी मन से कहा - आनन्द ! तथागत प्रवेदित धर्म नियम में स्त्रियाँ प्रव्रज्या न पाती तो यह धर्म चिरस्थायी होता, परन्तु आनन्द ! स्त्रियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की, अतः अब ब्रह्मचर्य स्थायी नहीं रहेगा। यह सत्य है, कि बौद्ध भिक्षुणी संघ की स्थापना तथागत् बुद्ध के विचारों के विपरीत और आशंकाओं के बीच हुई, पर जैनधर्म में स्त्रियों के लिए संघ प्रवेश में किसी प्रकार की न तो आशंका की गयी है, और न किसी ने प्रेरणा ही की है, वे निःसंकोच संघ में प्रवेश करती हैं।

जैन परम्परा में नारी को नारायणी माना है। वह त्याग, वैराग्य व साधना की साक्षात् प्रतिमा है। उसमें प्रतिभा की तेजस्विता है, ऐसी हजारों प्रतिभा सम्पन्न श्रमणियों के उल्लेख मिलते हैं, जिन्होंने अपनी प्रतापपूर्ण प्रतिभा से जैन शासन की प्रभावना की है।

जैन श्रमणियो में महासती कौशल्या जी का नाम बहुत ही आदर के साथ लिया जा सकता है। कुशलता अर्थात निपुणता, दक्षता एवं विघ्न निवारण का गुण जिसमें हो, उसे कहते हैं -कौशल। भगवान महावीर स्वामी ने कहा है :-

"कुसले पुण णो बद्धे, —आचारांग सूत्र"

कुशल व्यक्ति वह है, जो संसार की आसक्ति में बंधे नहीं। भगवान महावीर स्वयं निर्लेप निर्मोह थे। विषयों के दलदल में पुण्डरीक कमल के समान थे। इसलिए आर्य सुधर्मा ने बार-बार भगवान महावीर के लिए कुसले महेसी, कुसले, आसुपन्ने जैसे सुन्दर शब्दों में अपनी श्रद्धा-व्यंजना की है। तथागत् बुद्ध ने भी कुशल कर्म को श्रेष्ठ माना है। गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण ने भी "योगः कर्मसु कौशलम्" कर्म में, अपनी साधना में कुशल होने को 'योग' कहा है।

भारतीय संस्कृति में **'कौशल'** शब्द मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की जननी के लिए आदरपूर्वक लिया जाता है। कौशल्या उनकी महान् माता थी, जो सोलह सतियों में प्रसिद्ध है। नारी के रूप में कौशल्या सत्य-शील-शुचिता का प्रतीक है। त्याग-बलिदान और पराक्रम की प्रेरणा है। **"कौशल्या"** शब्द के साथ भारत की पवित्र संस्कृति का हृदय जुड़ा है।

पूज्य महासती कौशल्या जी का नाम आते ही मुझे गरिमापूर्ण भारतीय संस्कृति का स्मरण होता है। इस

संस्कृति में ज्ञान और कर्म का संबध पवित्रता के साथ जुड़ा है। महासती जी के जीवन में भी पवित्रता, निर्लेपता और ज्ञान की दिव्यता का संगम हुआ है। महासती जी का आगम-ज्ञान गंभीर है। वे अल्पभाषी और मृदुभाषी होने के साथ-साथ जब भी बोलती हैं, तो शब्द-शब्द उनके कुशल कृतित्व का परिचय देता है। ऐसा लगता है, शब्द नहीं जीवन बोल रहा है। कौशल्या जी का कुशल कर्म शब्दों मे स्फुरित हो रहा है। ऐसी श्रमणी हमारे श्रमण संघ की गरिमा है। समाज के लिए आदर्श ज्योतिस्तम्भ है।

महासती कौशल्या जी के अभिनन्दन वन्दन द्वारा विदुषी श्रमणी विजयश्रीजी ने बड़ी कुशलता के साथ उनके कृतित्व की कोमल कलियों को पिरोकर एक सुन्दर माला का मनोहर रूप प्रदान किया है। इसलिए मैं उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ और महासती कौशल्याजी के दीर्घ संयम जीवन का अभिनन्दन करते हुए आर्शीवाद देता हूँ कि वे अपनी ज्ञान-गरिमा और चरित्र-महिमा से श्रमणसंघ को महिमा मण्डित करती रहें।

अक्षय-कामना

उपाध्याय डॉ० श्री विशाल मुनि जी म०

मानव जीवन आध्यात्मिक विकास का अभिनव प्रसंग है। यह ऐसी भूमिका है जिस पर सरलता पूर्वक आध्यात्म साधना का महल खड़ा किया जा सकता है। समृद्धि के हिसाब से स्वर्ग लोक तथा देव गति सर्वोपरि हैं परन्तु वहाँ पर अध्यात्म आनन्द के बीजों को नहीं पनपाया जा सकता है। आत्म-वैभव की समृद्धि का महाविकास तो मानव गति में ही संभव हैं अन्यत्र नहीं।

मानव गति में भी आर्य क्षेत्र का अपना महत्त्व है क्योंकि लम्बी चौड़ी भूमि में उर्वरा भूमि कहीं-कहीं पर होती है। उस उर्वरा भूमि में ही अनाज लहलहाता है, सर्वत्र नहीं। ऐसे ही मानव की संख्या तो बहुत है पर आध्यात्म साधना में रचे-पचे व्यक्तित्व तो हजारों में एकाध ही दृष्टिगोचर होते हैं।

जिन विरल आत्माओं ने जीवन जीने की सम्यक् साधना की हैं, वे स्वभावतया जन-जन के लिये अत्यन्त प्रिय होते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन जन-जन के कल्याणार्थ समर्पित होता है। कहते हैं - परोपकाराय सतां विभूतयः - परोपकार के लिये सज्जनों का जन्म होता है। ऐसी परार्थेन्मुख आत्माओं को कोई भूलाना नहीं चाहता है। वे भूलते ही नहीं फिर भी उन्हें जन-जन तक पहुँचाने की भावना भक्तिपरायण आत्माओं में

निरन्तर बनी रहती है। उस भावना से सम्प्रेरित होकर लेखन, उत्खनन, स्थापन टंकण आदि-आदि अनेकानेक कार्य सम्पन्न होते हैं।

वात्सल्यमूर्ति अध्यात्मयोगिनी बा० ब्र० पू० महासती कौशल्या देवी जी म० सा० अपने समय की महान यशस्विनी साध्वी हैं। यद्यपि वे जन-जन के लिए स्वतः प्रेरणा स्रोत हैं, प्रायः सभी उनकी महानताओं से सुपरिचित हैं। फिर भी धर्म प्रभाविका परम विदुषी साध्वी श्री विजय श्री जी की यह भावना है कि उन महान साध्वी जी का सुन्दर जीवन-वृत्तान्त संकलित रूप में जन-जन तक पहुँचे।

महासती विजय श्री जी का यह सुंदर सुखद संकल्प आज मूर्तरूप ले रहा है, उनका प्रयत्न एवं परिश्रम सफलता के चरम शिखर पर आरूढ़ हो रहा है, इसकी मुझे अपार प्रसन्नता है। आपका यह परिश्रम अब एक आदर्श प्रकाशस्तम्भ के रूप में समाज के समक्ष उपस्थित हो, यह हमारा मंगलमय आशीर्वचन हैं।

अभिव्यक्ति

श्रमण संघीय सलाहकार श्री रतनमुनि जी म०

भारतीय संस्कृति चिरकाल से अध्यात्म प्रधान संस्कृति रही है। इसकी दो पवित्र धाराएं प्राचीन काल से सतत प्रवाहित हो रही हैं। प्रथम धारा जीवन की बाह्य शुचिता, सम्पन्नता और समृद्धि को प्रोत्साहित करनेवाली है, द्वितीय धारा आत्मीय गुणों का विकास और अंतरंग शुद्धता एवं आत्मलीनता पर विशेष बल देती है। प्रथम धारा को वैदिक संस्कृति के नाम से अभिहित किया जाता है और दूसरी धारा के प्रवाह को श्रमण संस्कृति के नाम से सुशोभित किया जाता है।

महावीर का समय श्रमण संस्कृति का स्वर्णकाल रहा है। उस समय यह संस्कृति चरम उत्कर्ष की ओर बढ़ रही थी। इसके हजारों साधक एवं आत्मशोधक समूह जीवन के अन्तरंग एवं बाह्य दोनों को पल्लवित कर रहे थे। वैसे श्रमण संस्कृति का मुख्य ध्येय आत्मचेतना है। पुद्गल युक्त शरीर के मध्य एक चिन्मय ज्योति अपने रहस्य को साथ लेकर छुपी हुई है। हाथी से चींटी तक, पशु से मानव तक, नरक से स्वर्ग तक के प्रत्येक जीवों में यह आत्मज्योति जगमगा रही है।

"संत संस्कृति" ने आत्मविकास का मार्ग प्रशस्त किया है अन्तरंग पवित्रता, निर्मलता के साथ-साथ स्वयं के गुणों का विकास करने में श्रमण संस्कृति ने उदात्त एवं उन्मुक्त चिंतन दर्शन प्रस्तुत किया है। इस तरह से यह संस्कृति सतत जागरूक ही

नहीं, पूर्णतया प्रयत्नशील भी रही है, इसी अटल ध्रुव अनंत में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर आराध्यदेव भगवान महावीर तक आत्मसाधक तपस्वी इसी पथ पर अपने चरणों को गतिशील करते रहे। आत्म जागरण से चरम लक्ष्य तक पहुँचते रहे ओर आने वालों के लिए आलोक की किरणें छोड़ गये। इस प्रकार आत्म तेज से युक्त श्रमण संस्कृति की ध्वजा निरन्तर सांस्कृतिक क्षेत्र में चमक दमक रही है, उसके सन्देश महक रहे हैं। भारतीय सन्त-परम्परा ने भारतीय संस्कृति को जीवित ही नहीं रखा उसे समुज्जवल भी बनाया है। भारत की परम्परा के इतिहास में ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक का काल सन्त परम्परा का माना गया है। इस एक हजार वर्ष के काल में भारतीय सन्तों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी भाषा के माध्यम से जो जनजागरण किया था वह भारत के इतिहास की एक अमर घटना है।

जैन-परम्परा के अनुसार इतिहास में विक्रम की 16वीं तथा 17वीं शताब्दी अत्यंत ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। इन दोनों शताब्दियों में स्थानकवासी जैन परम्परा के संस्थापक महापुरुषों का जीवनमान और कार्यकाल रहा है, पूज्य लवजीऋषिजी म. सा, पूज्य धर्मदासजी महाराज, पूज्य धर्मसिंह जी महाराज, ने गुजरात की भूमि पर क्रियोध्दार किया था। राजस्थान की धरती पर नागौर नगर में पूज्य मनोहरदासजी ने क्रियोध्दार किया था। पंजाब की शस्यश्यामला भूमि पर पूज्य धर्मसिंहजी ने क्रियोध्दार किया था।

सन्त जीवन पर विचार करने से पूर्व उसके भावात्मक रूप को समझना आवश्यक होगा।

"साधयति स्व- पर कार्याणि इति साधु"

अर्थात - जो अपने/स्वयं और पर अर्थात् संसार के हितकार्यों को साधता है, वह साधु है।

दूसरे शब्दों में कहा जाए तो साधु जीवन एक पूर्ण समर्पित जीवन होता है। साधु जीवन की सार्थकता इसी में है कि वह अपने हित के साथ दूसरों का हित साधता रहे।

ऐसे स्वपर कल्याणकारी साधु संसार में दुर्लभ है। सन्त महाकवि तुलसीदास जी ने इन सन्तों के समागम को ही दुर्लभ कहा है।

"सन्त समागम हरिकथा तुलसी दुर्लभ दोय"

साधुओं की संगति दुर्लभ होने के साथ प्राप्ति भी भाग्यवान को होती है, साधु स्वभाव से ही सदैव परहित रत रहता है, साधु का कार्य चन्दन की भांति छिल छिल कर सुगंध बिखेरना, अगरबत्ती की भांति जल जल कर अपने परिवेश में वातावरण को मधुर सुरभि प्रदान करना एवं मोमबत्ती की भाँति अपने अस्तित्व को विसर्जित कर विश्व को प्रकाश देने में तत्पर रहना है। साधु की गुण गरिमा गाते हुए आचार्य जिनदास गणी इतने भावविभोर हो जाते हैं कि उसे साक्षात कल्पवृक्ष की उपमा दे देते हैं।

"विविह कुलुप्पणा साहवो कप्परू करवां"

कल्पवृक्ष तो मानव की भौतिक आवश्यकताओं एवं अभिलाषाओं को ही पूरी कर सकता है। लेकिन साधु मानव की आध्यात्मिक एवं पारलौकिक उन्नति में सदा प्रयासरत रहता है। मनुष्य की आध्यात्मिक समृद्धि का आश्रय साधु ही है। अतः साधु कल्पवृक्ष से भी महान है।

कल्पवृक्ष तो स्थिर होता है, लेकिन साधु अपनी विहारचर्या द्वारा अपने मुख से अमृत वर्षाकर जनमानस को पवित्रता से भर देनेवाला साक्षात् चलता फिरता

कल्पवृक्ष है।

सन्त महिमा का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी पर्याप्त रूप से मिलता है। मानव देवताओं को दिव्यशक्ति का पुँज मानकर अपनी कामना पूर्ति के लिए उनकी उपासना करता है। किंतु यह भी ज्ञात होना चाहिए कि देवता स्वयं भी असहाय होते हैं। वैदिक साहित्य में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं कि जब कभी देवताओं पर संकट आया तो इन्द्र का सिंहासन डोल उठा एवं उन्होंने दौड़कर पृथ्वी के तपस्वी, ऋषि, मुनियों की शरण ली, जिसमें उन्हें सफलता भी मिली। ऐसा वर्णन केवल वैदिक साहित्य पुराणों में ही नहीं बल्कि जैनागमों में भी मिलता है।

सन्त महिमा को दर्शाते हुए श्रीमद्भगवत् गीता में पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण कहते हैं कि सन्त सबसे बड़ा देवता है। वह समस्त जगत का बंधु एवं जगत की आत्मा है। सच तो यह है कि मुझमें और सन्त में कोई अन्तर ही नहीं है।

"देवता बान्धवा सन्त, सन्त आत्मा हमेवच"

श्रीगीता -२६/३४

सिक्खों के गुरु अर्जुनदेव कहते है कि, सन्तों की अद्वितीय एवं अलौकिक महिमा का वर्णन वेद भी नहीं कर सकता उन्हीं के शब्दों में देखिए-

"साधु की महिमा वेद न जाने,
जेता सुने तेता बखाने।
साधु की शोभा का नहिं अन्त,
साधु की शोभा सदा बेअन्त॥"

साधु साक्षात पृथ्वी के देव होते हैं। वह दया एवं करुणा के अनंत स्रोत एवं धर्म की जीवित प्रतिमा होते हैं। एक समय भगवान महावीर से गौतम स्वामी ने सहजभाव से प्रश्न पूछा - भगवन्। साधु को इस संसार का देवता कहा है ऐसा क्यों। किस कारण से ? भगवान

महावीर ने उत्तर देते हुए कहा' - "गौतम। साधु अध्यात्म एवं धर्म की जीती जागती मूर्ति है। त्याग; तप, ब्रह्मचर्य का साक्षात् अवतार धर्मदेव है। भ० महावीर ने कहा'–

"से तेण`णं एवं उच्चई धम्मदेवा।"

भगवती सूत्र के 14वें शतक में साधु जीवन की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।

संत अध्यात्म आनन्द की इतनी गहराई में डूब जाते हैं कि स्वर्ग के सुख भी उसके सामने फीके पड़ जाते हैं। संत इन सुखों का आनन्द स्वयं ही नहीं लेता, मुक्त मन से सबको बाँटता है। जो भी संत के द्वार पहुँचा तो उसे संत आनन्द का दान देता है।

साधना के क्षेत्र में उनकी महान उपलब्धियाँ है। जैन सन्तों का त्याग एवं इनकी कठोरतम तप साधनाएँ सुप्रसिद्ध है। वे अपने कठिन तप जप त्याग साधना से अपनी आत्मा एवं भारतीय संत-संस्कृति को गौरवान्वित करते हैं।

भारतीय इतिहास में सोलहवीं शताब्दी के पूर्व का काल संक्राति का काल रहा है। सोलहवीं शताब्दी को धार्मिक, सांस्कृतिक और वैचारिक क्रांतिकारी शताब्दी से सम्बोधित करें तो भी अतिशियोक्ति नहीं होगी, क्योंकि इस समय भक्ति एवं साधना के क्षेत्र में इस शताब्दी ने अनेक क्रांतिकारी मोड़ लिये हैं। इस शताब्दी को परिवर्तन, पुनर्जागृति का काल भी कहा जाता है। भक्ति उपासना की दृष्टि से इस शताब्दी में निर्गुण उपासना का स्वर भी मुखरित हुआ है। सन्त कबीर, रविदास आदि इसी शताब्दी की उपलब्धियाँ हैं। दूसरी ओर धर्म प्राणवीर लोकशाह की धर्म क्रांति इसी शताब्दी का ऐतिहासिक उद्घोष है।

संत-संस्कृति में स्थानकवासी परम्परा ने क्रांतिकारी परम्परा के रूप में विकास किया। साधना, भक्ति, और उपासना के क्षेत्र में विकास किया। यह समय संत - संस्कृति का उत्कर्षकाल रहा है। इस समय अनेक प्रतिभा संपन्न सन्तों का आविर्भाव हुआ। आत्म - तेज व साहस द्वारा उन्होंने अपनी परम्परा का विकास/विस्तार किया, जिसकी अक्षुण्ण कड़ी वर्तमान तक चलती आ रही है।

इस प्रकार अतीत में "संत संस्कृति" ने महान कार्य किये, वर्तमान में कर रही है। श्रमण संस्कृति का संसार में अपना एक अडिग अस्तित्व है और भविष्य में भी रहेगा। संत संस्कृति के तप, त्याग का बल कभी मिट नहीं सकता वह अमिट रहेगा।

ऐसी ही संत-संस्कृति में महासती श्री कौशल्यादेवी जी का नाम अविस्मरणीय हैं। आपका जीवन त्याग संयम का प्रतीक है। आपके जीवन के क्षण-क्षण से जनमानस को तप, त्याग, संयम की प्रेरणा मिलती है। सत्य संयम, त्याग की सुगन्धि प्राप्त होती है।

आपके संयममय जीवन की अर्द्धशताब्दी पर में मंगल कामना करता हूँ, कि आप चिरायु बनकर जिनशासन की समुन्नति करती रहें।

अतीत का आलोक

साध्वी डॉ० मंजु श्री जी

जिन शासन में भगवान ऋषभदेव के युग से ही ऐसी अनेको प्रबुद्ध महिलाओं का जन्म हुआ है, जिनकी प्रेरणा-शक्ति ने इतिहास में नवयुग का निर्माण किया है। वे मानव-इतिहास में ऐसी अखंड प्रज्वलित दीप शिखाएँ बन गई हैं, जो भविष्य में भी अनेकों व्यक्तियों का पथ-प्रदर्शन करती रहेगीं और अनेकों दीप जलते रहेंगे। आइये, उन दीप-शिखाओं की जगमगाहट से कुछ परिचित हो लें।

१) भगवान ऋषभदेव ने जब देखा कि एक वर्ष हो गया है, बाहुबली को खड़े-खड़े साधना करते, लेकिन केवलज्ञान नहीं हुआ, तो उन्होनें अपनी दोनों दीक्षित पुत्रियों-ब्राह्मी और सुन्दरी को बाहुबली को समझाने के लिये, कषाय-सहित तप की कमी एवं कषाय-विजय का महत्त्व बताने के लिये भेजा। उन दोनों बहनों ने बड़े स्नेह एवं आत्मविश्वास से बाहुबली को जो समझ दी, वह जन-विश्रुत है ही। बहनों की वाणी का प्रभाव था कि बाहुबली ने अतल में छलांग लगाई, मान के काँटे को उखाड़ फेंका और क्षणमात्र में उनका केवलज्ञान प्रकट हो गया।

हर जिज्ञासु के मन में प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि प्रभु ने भाई को समझाने के लिये बहनों को ही क्यों भेजा, भाइयों को क्यों नहीं ? उत्तर कठिन है, किन्तु यह बात तो स्वीकारनी ही पड़ती है कि वे दो दीप्त दीपशिखाएँ थीं, जिनमें बाहुबली का महादीप प्रज्वलित करने की सामर्थ्य थी।

२) जैन-परम्परा मान्य 24 तीर्थंकरों में 19 वीं तीर्थंकर मल्ली भगवती थीं - एकमात्र महिला तीर्थंकर।

मल्ली राजकुमारी से शादी करने के लिये छह राजा एक साथ तैयार थे, और मल्ली न मिलने पर युद्ध के लिये भी तैयार। मल्ली के पिता इस जटिल समस्या को सुलझाने में स्वयं को असमर्थ और हतबल महसूस कर रहे थे। मल्ली ने इतने चातुर्य से उनको समझाया कि छहों राजाओं को वैराग्य हो गया और उन्होनें मल्ली भगवती के दीक्षा-ग्रहणोपरान्त उनके चरणों में दीक्षा अंगीकार की।

मल्ली भगवती ने दीक्षा-ग्रहणोपरान्त मात्र तीन प्रहर में केवल ज्ञान प्राप्त किया। तीर्थंकर पद-प्राप्त आत्माओं में इतने कम समय में केवल ज्ञान-प्राप्ति का यह अनूठा उदाहरण है।

३) श्रीकृष्ण के चचेरे भाई श्री अरिष्टनेमि की शादी राजीमती से होने वाली थी। किन्तु शादी के समय, मांसाहारी बारातियों के भोजन के लिये पिंजरों में बंद पशु-पक्षियों का करुण क्रन्दन सुन कर अरिष्टनेमि का हृदय परिवर्तित हो गया। वे मुनि बन गये तो राजीमती भी उन्हीं की पथगामिनी बन गई। एक दिन भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन-वन्दन को जाती हुई राजीमती वर्षा से भीगे कपड़ों को सुखाने के लिये गिरनार पर्वत की गुफा में प्रविष्ट हुई, तो बिजली की चमक में उन्होंने वहाँ अरिष्टनेमि के छोटे भाई मुनि रथनेमि को देखा तो शीघ्र ही स्वयं को वस्त्राच्छादित कर लिया। मुनि ने भी इसी समय उन्हें देखा तो भोगों के लिये आमन्त्रित किया। उस समय राजीमती ने रथनेमि को फटकारते हुए ऐसी शिक्षा दी कि रथनेमि ने न केवल अपनी गलती स्वीकार कर माफी मांगी, अपितु संयम में भी दृढ़ता अपनाई और अन्त में मोक्षगामी बने।

४) इषुकार नगर के महाराजा इषुकार की महारानी का नाम कमलावती था। नगर-पुरोहित भृगु और उनकी पत्नी यशा तथा उनके दोनों बच्चे वैराग्यप्रेरित होकर संयमी बनने के लिये जब तैयार हुए, तो उनकी सम्पत्ति का मालिक कौन ? कोई नहीं। अतः वह राजकोष में जमा हो। आज्ञा पाते ही गाड़ियाँ भर-भर कर, त्यागी हुई सम्पत्ति, राजमहल की ओर आने लगीं। गवाक्ष में बैठी कमलावती रानी ने देखा, तो राजा से पूछा कि क्या किसी निपूते की मृत्यु हो गई है? राजा ने कहा – नहीं, पूरा परिवार संसार-त्यागी बना है। आश्चर्य से रानी बोली – तो फिर किसी की त्यागी हुई वस्तु तो वमन के समान होती है, क्या आप उच्छिष्ट ग्रहण करेंगे ? यह धन-वैभव-ऐश्वर्य सभी कुछ यहीं छोड़ कर ही तो जाना है, फिर इस प्रकार का आचरण/कार्य क्यों ?

रानी की प्रेरणा पाकर राजा भी विरक्त बना। और इस प्रकार राजा, रानी, भृगु पुरोहित, यशा पुरोहित-पत्नी एवं उनके दो बच्चे-छह जनों ने एक साथ संयम अंगीकार किया। यथोचित रूप से संयम पालन कर सभी सिद्ध बुद्धमुक्त बने।

५) सिंधु सौवीर देश की राजधानी वीतभय में उदायन राजा का राज्य था। चण्डप्रद्योतन आदि दस मुकुटधारी महापराक्रमी राजा उसके आधीन थे। वैशाली के राजा चेटक की पुत्री प्रभावती उसकी रानी थी। प्रभावती निर्ग्रन्थ धर्म की उपासिका थी, लेकिन उदायन तापसों का भक्त था। प्रभावती जब मृत्यु प्राप्त कर देव बनी, तो उसने राजा उदायन को प्रतिबोध देकर जैन श्रावक बनाया।

अनन्तर काल में उदायन ने प्रभु महावीर के चरणों में पाँच महाव्रत रूप संयम-दीक्षा ग्रहण की।

६) तेतलीपुत्र नामक मन्त्री को उसकी पत्नी पोट्टिला पर बहुत अनुराग था। पोट्टिला को जब वैराग्य हुआ, तो उसने एक शर्त पर उसे दीक्षा लेने की अनुज्ञा दी, कि यदि तुम्हारी आयु मुझसे पहले पूर्ण हो जाये और तुम अपने तप-संयम के प्रभाव से आगामी जन्म देवगति में प्राप्त करो, तो मुझे प्रतिबोध देने अवश्य आना। वैसा ही हुआ। पोट्टिला देव ने तेतलीपुत्र को प्रतिबोधित किया।

७) मणिरथ और युगबाहु दो भाई थे। युगबाहु को मार कर उसकी पत्नी मदनरेखा को पाने की चाहत से मणिरथ ने युगबाहु पर घातक प्रहार किया। ऐसे नाजुक समय में, जबकि पति मृत्युशैया पर पड़ा है, बदले की भावना से आक्रान्त है, क्रोधाविष्ट है, मदनरेखा उसे स्वस्थ चिंतन प्रदान करती है, धर्म का शरणा देती है, फलस्वरूप वह शांत भाव से मरण का वरण करता है और शांत शुभ भावों के परिणामस्वरूप देवगति में उत्पन्न होता है।

८) अर्हन्नक मुनि एक दिन भिक्षाचर्या हेतु नगर में घूम रहे थे। भीषण गर्मी का आतप सह नहीं पा रहे थे। सहसा एक मकान के छज्जे के नीचे छाया देख कर विश्राम हेतु जरा रुक गये, लेकिन ध्यान नहीं दिया कि यह मकान किसका है ? वह मकान किसी वेश्या का था। वह ऊपर छज्जे पर खड़ी यह देख रही थी। और सोच रही थी यह तरुण मुनि परीषह सहने में कमजोर है, इसलिये इसे अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। उसने मुनि को ऊपर बुला लिया और अपने फंदे में फंसा लिया। इधर मुनि की खोज हुई। वे कहीं न मिले, तो साध्वी बनी हुई माँ ने व्यग्र होकर गली-गली में

आवाज लगाते हुए अर्हन्नक को ढूँढना शुरू किया। जब उस गली से माँ गुजर रही थी, उसकी आवाज अर्हन्नक ने सुनी, छज्जे पर आकर देखा - अरे। माँ है। तुरन्त नीचे उतरे। माँ की कड़ी फटकार और प्रेम पगे उपालम्भ को सुनकर अर्हन्नक पुनः संयम में स्थिर हुए।

९) भगवान महावीर के सातवें पट्टधर और आठवें आचार्य स्थूलिभद्र के दो शिष्यों आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती को श्रमण-जीवन के लिये प्रेरणा देने वाली थीं - आर्या यक्षा। इन दोनों का लालन- पालन-शिक्षण आदि आर्या यक्षा के तत्त्वाधान में हुआ। आर्या यक्षा के सान्निध्य में रह कर इन दोनों ने एकादशांगी का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया था। आर्य महागिरी और आर्य सुहस्ती जैसे आचारनिष्ठ, प्रतिभाशाली एवं महान प्रभावक श्रमणों मे प्रारंभ से ही उच्च कोटि के संस्कार ढालने वाली महासती यक्षा कितनी विदुषी, तेजस्विनी, आचार-निष्ठ, संस्कार-दान-कुशल रही होगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

१०) आर्य स्थूलिभद्र की स्थितप्रज्ञता के प्रभाव से कोशा वेश्या श्रमणोपासिका बनी। उसका जाज्वल्य बुद्धि-प्रकाश इतना तेजोदीप्त बना कि उसने स्थूलिभद्र के ईर्ष्यादग्ध गुरुभाई को चारित्र में दृढ़ किया, नन्दराजा के रथिक को संयम का मार्ग दिखाया और स्वंय के शील की भी रक्षा की।

११) मालव प्रदेश के दशपुर (मन्दसौर) नामक नगर में सोमदेव नामक ब्राह्मण पुरोहित की पत्नी रुद्रसोमा जैनधर्म की उपासिका थी। उसके ज्येष्ठ पुत्र का नाम रक्षित और कनिष्ठ का फल्गुरक्षित था। पिता के निर्देशानुसार प्रतिभाशाली रक्षित ने पाटलिपुत्र में रह कर स्वल्प समय में ही वेद-वेदांगादि चौदह विद्याओं में

निपुणता प्राप्त की। अध्ययन पूर्ण कर दशपुर लौटने पर पिता ने, राजा ने, नागरिकों ने भव्य अभिनन्दन किया। स्वागतार्थ उपस्थित लोगों मे रुद्रसोमा ने सामान्यतः 'स्वागतम्' शब्द मात्र से पुत्र का स्वागत किया। पुत्र द्वारा इस उदासीनता का कारण पूछने पर बोली - बेटा, दृष्टिवाद के अध्ययन के बिना श्रुत बहुत अधूरा है। मुझे तब प्रसन्नता होगी, जब तुम दृष्टिवाद का ज्ञान लेकर सर्वश्रुतधर बनोगे। माँ की प्रेरणा ने जलती लौ का काम किया, रक्षित का दीपक जल उठा।

रक्षित ने बड़ी जिज्ञासापूर्वक दृष्टिवाद और उसके ज्ञाता-संबधी जानकारी माँ से प्राप्त की और माँ की आज्ञा लेकर इक्षुवाटिका में विराजित आचार्य तोषलिपुत्र के पास पहुँच कर दृष्टिवाद के अध्ययनार्थ सविनय निवेदन किया। आचार्य द्वारा यह कहने पर कि दृष्टिवाद का ज्ञान तो दीक्षित श्रमण को ही दिया जा सकता है, रक्षित ने तत्काल श्रमण-दीक्षा ग्रहण की। अपने गुरु तोषलिपुत्र और उसके बाद आचार्य वज्र के पास दृष्टिवाद का अध्ययन कर वे साढ़े नौ पूर्वो के पारगामी विद्वान बने।

१२) मगध जनपद के सुग्राम शहर में आर्जव नाम्ना राष्ट्रकूट का पुत्र भवदेव अपनी नवोढा पत्नी नागिला का श्रृंगार करने में तल्लीन था। तभी समाचार मिला, बड़े भाई मुनि भवदत्त नगर में पधारे हैं और अभी घर पर आहारार्थ आये हुए हैं। भ्रातृप्रेम से विह्वल भवदेव, पत्नी का श्रृंगार अधूरा छोड़, मुनि भवदत्त के दर्शनार्थ रसोई घर में पहुँचे। आहारदान के उपरान्त भ्राता मुनि के साथ ही आदरवश चल पड़े। रास्ते में पत्नी का आकर्षण लौटने को कह रहा है, पर विनय संयुत संकोचवश भ्राता मुनि की आज्ञा बिना लौट नहीं पाते, स्वयं आज्ञा मांगने में संकोच होता है।

दोनों भाई मुनियों के निवासस्थान पर पहुँचे। गुरुजी ने पूछा - 'यह कौन ?' भवदत्त बोले - 'लघुभ्राता हैं, प्रव्रज्या लेने आये हैं।' भवदेव ने भाई के शब्दों को सम्मान देने के लिय प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। बाह्य संयम का पालन यथावत् होने लगा, पर मन बार-बार पत्नी के पास उड़-उड़ जाता है। भवदत्त के स्वर्ग-गमन के पश्चात् पत्नी से मिलन की तीव्र इच्छा से स्थविरों को पूछे बिना अकेले चल पड़े। सुग्राम शहर में पहुँचे। शहर के बाहर चैत्यघर के पास विश्राम किया। वहीं एक संभ्रान्त कुल की महिला और उसकी ब्राह्मण सखी ने उन्हें देखा, वन्दन-नमस्कार किया।

मिलन की आतुरता से मुनि ने उनसे नागिला के विषय में पूछताछ की। पता लगा कि वह महिला ही नागिला है और वह बारह व्रतधारी श्राविका ही नहीं, अखण्ड ब्रह्मचर्य-धारिणी भी है। तत्पश्चात् भी मुनि द्वारा मन की बैचेनी प्रकट की गई, तो नागिला ने कुछ कोमल शब्दों से कुछ फटकार लगाते हुए, दृढ़ता से खूब समझाया। वमन किया हुआ पुनः ग्रहण करना कितना हीन कार्य है, यह युक्ति से बताकर उनका मन संयम में स्थिर किया। आचार्य सुस्थित के चरणों में जाकर प्रायश्चित लेने के लिये प्रेरित किया। परिवर्तित-मन, दृढ़ संयमी भवदेव मुनि आचार्य के श्रीचरणों में पहुँच कर निर्दोष संयम के पालन में दत्तचित्त बने।

१३) ब्राह्मण पुरोहित हरिभद्र अपने युग के प्रकाण्ड विद्वान तो थे ही, प्रबल अंहकारी भी थे। जगह-जगह शास्त्रार्थ में विजय पाने के कारण उनका अभिमान परिपुष्ट होता जा रहा था। इसी बल पर उन्होंने एक दिन एक प्रतिज्ञा कर ली थी - 'किसी के द्वारा कथित सार्थक पद-वाक्य यदि मुझे समझ में ना आये, और वह मुझे समझा दे, तो मैं उसका शिष्य बन जाऊँगा।'

एक दिन साध्वियों के उपाश्रय के नीचे से रात्रि से समय गुजरते हुए उन्होंने एक गाथा की पुनरावृत्ति होते हुए सुनी, तो वह गाथा तुरन्त याद कर ली। रात भर उस पर चिन्तन किया, परन्तु अर्थ समझ में नहीं आया, तो सोचा, ये जैन साधु-साध्वी यूँ ही अनर्गल प्रलाप करते रहते हैं। प्रातःकाल होते ही इनका मान-मर्दन करने के लिये जाऊँगा। किन्तु दूसरे दिन का सवेरा उनके नये जीवन का सवेरा था। वे आये थे, परास्त करने लेकिन याकिनी महत्तरा ने उन्हें उस गाथा का अर्थ तो समझाया ही, जीवन का रहस्य भी समझा दिया। और हरिभद्र ने याकिनी महत्तरा का शिष्यत्व स्वीकार लिया। पुरोहित हरिभद्र, मुनि हरिभद्र बन गये ओर फिर महान प्रभावक, साहित्य-स्रष्टा आचार्य हरिभद्र बने। उन्होंने स्वयं की पहचान हमेशा **'याकिनी-महत्तरा-सुनु'** नाम से कराई।

१४) पंजाब में एक समय आया कि जब चतुर्विध तीर्थ में साधु तीर्थ लुप्त हो गया। एक भी मुनि को न देख, महासाध्वी ज्ञाना जी ने एक योग्य व्यक्ति को प्रेरित किया, वैराग्य भावनाओं से भरा, उसको दीक्षित किया और उसके हाथ में संघ-अनुशासन की बागडोर संभलाई। ये थे हमारे **आचार्य रामबख्श जी महाराज**। इस प्रकार एक विदुषी श्रमणी की प्रेरणा ने पंजाब में लुप्त श्रमण-परम्परा को पुनरुज्जीवित किया। पंजाब का वर्तमान श्रमण-महावृक्ष इसी बीज का विराट रूप है।

१५) गुजरात में खम्भात सम्प्रदाय में भी लगभग 35 वर्ष पूर्व ऐसा समय आया था, जब संघ में एक भी साधु नहीं रहा। उस समय जिन शासन-प्रभाविका महासती शारदा बाई स्वामी ने प्रसिद्ध जौहरी कांतिभाई नामक संघ प्रमुख को अपनी ओजस्वी वाणी से ऐसा प्रभावित किया कि वैराग्य भावनाओं का प्रस्फुटन उनके दिल में

हो गया। महासती जी ने उन्हें दीक्षा दी और संघ-नायक के पाट पर विराजमान किया। आज भी 'आचार्य कान्ति ऋषि जी म०' के रूप में हमारे मध्य मौजूद हैं।

१६) मोहनदास करमचन्द गांधी की माँ जैन संस्कारों में जन्मीं, पलीं। बड़ी हुई तो शादी वैष्णव घराने में हुई। किन्तु बचपन के संस्कार अन्त तक मौजूद रहे। जब मोहनदास ने पढ़ाई के लिये विदेश जाना चाहा, तो माँ उसे लेकर जैन साधुओं के पास उपाश्रय में आई। वहाँ अपने बेटे को मांसाहार, जुआ, शराब, परस्त्रीगमन आदि कुव्यसनों से मुक्त रहने की प्रतिज्ञा कराई, तब विदेश भेजा। माँ के इन्हीं प्रेरक संस्कारों की बदौलत मोहन दास गाँधी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के रूप मे विश्व-विश्रुत बन सके।

उपसंहार

ये कतिपय उदाहरण हैं, जिन शासन की दीप-शिखाओं के विभिन्न रूपों में इन्होंने जो ज्योति, जो द्युति, जो प्रकाश विश्व को दिया, युगों बाद आज भी विश्व के लिये वह उतना ही पथ-प्रदर्शक है जितना तब था। आज भी ब्राह्मी और सुन्दरी का उद्‌बोधन अनेक भाइयों को नींद से जगाने में पूर्ण समर्थ है। मल्ली भगवती का जीवन- बोध बरबस ममत्व से ऊपर उठा देता है। वर्तमान में बढ़ते व्यभिचार एवं शारीरिक रोकथाम भौतिक आकर्षण की रोकथाम के लिये राजीमती की फटकार उचित उपाय प्रतीत होती है। कमलावती, प्रभावती, पोट्टिला, मदनरेखा की अपने-अपने पतियों के जीवन को संवारती जीवन-रेखाएँ कुव्यसनग्रस्त पतियों के अत्याचारों से पीड़ित पत्नियों के जीवन में वीरत्व का संचरण कराती हैं, तो पुरुषवर्ग को भी जीवन की उच्चताओं के प्रति चिंतनशील एवं

आचरणशील बनाती हैं।

अर्हन्नक की माता का परिष्कृत ममत्व, साध्वी यक्षा की प्रेरक प्रेरणाशक्ति, कोशा का परिवर्तन और दृढ़ता, रुद्रसोमा का कर्त्तव्यनिष्ठ मातृत्व, नागिला की मार्गभ्रष्ट पति को मार्गस्थ करती व्रतनिष्ठा, याकिनी की दिशाबोधक प्रेरणामूर्ति, महासाध्वी ज्ञाना जी और महासती शारदाबाई द्वारा संघ के बुझे दीप का प्रज्ज्वलन और ऐसी ही अन्य अनेक-अनेक दीपशिखाओं के असामान्य गुणों ने, असामान्य प्रयत्नों ने , असामान्य प्रेरक कार्यों ने जिनशासन ही नहीं, विश्व-इतिहास में नारी को सुंदर ढंग से उजागर किया है, भटके हुओं के लिये सन्मार्ग-प्रदान किया है, उलझे हुओं के लिये समाधान प्रस्तुत किये हैं, रुके हुओं को गति और बेतहाशा दौड़ने वालों को स्थिति का दान किया है, असहाय संसार को महात्मा प्रदान कर सहारा दिया है।

इन्हीं दीपशिखाओं की मालिकाओं में प्रज्वल्लित/उज्जवल दीपशिखा है - आध्यात्मयोगिनी ,शान्तमूर्ति महाश्रमणी श्री कौशल्या देवी जी म०।

हम सभी का कर्त्तव्य है कि इनके संयमनिष्ठ तेजस्वी आध्यात्मिक जीवन को सम्मानित करें, स्वीकार करें और तद्द्वारा उससे प्रेरणा लेकर अपने-अपने पथों को संवारते हुए मंजिल की ओर अग्रसर हों।

अर्पण

साधुत्त्व का सबसे बड़ा कर्म है, स्व कल्याण और इसी उपक्रम में सिद्ध होता है-व्यक्ति-व्यक्ति का कल्याण। इस क्रिया में चैतन्य की अलोकमयता घनीभूत होकर अस्तित्व में आती है, उस चैतन्यमय-विकिरणों से जो भी सम्पृक्तहोताहै, उसके जीवनमें भी आनंदकी सृष्टि होने लगतीहै।

सहसा मुझे एक अनुभूति ने झंकृत किया। मेरी गुरुमैया श्री कौशल्या देवी जी महाराज की दीप्त आभायुक्त प्रशांत मूर्ति ने मेरे हृदय को अन्तर तक अभिभूत कर दिया। मेरे कर जुड़ गये, भावोल्लास से मस्तक स्वतः चरणों में झुक गया। उस अभिभूत अवस्था में होठ बुदबुदाये "मेरी गुरुमैया ! आपका अध्यात्मयोग युक्त प्रसन्न बदन मेरी हृदय में अपार आनंद की वृष्टि कर रहा है, आपके माध्यम से कल्याण की सौगात पाकर जीवन में जो भी निर्मित हुआ है, वह आपके प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति कर रहा है, आपका यह रूप स्थिरता ग्रहण करे। भावों की उत्ताल तरंगों का नीचे गिरने से पूर्व कोई अवलम्ब मिले ...." तभी मेरे हाथ कुछ टटोलते हैं और कलम ग्रहण कर एक शब्द-यात्रा प्रारम्भ कर देते है। भावनाओं के प्रवाह में बहती हुई कलम कोरे कागजों पर चरित्र-चित्र तैयार करती हुई अंततः एक ग्रंथ का आकार धारण कर लेती है। यहीं से प्रारम्भ होता है, इस चरित्राकंन का इतिहास और इसी के साथ जुड़ गया है मेरी लेखनी का प्रथम प्रयास। जैसा कि, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' लिखने के पश्चात् कहा है-

" राम ! तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है। "

यद्यपि मेरी गुरुमैया इस ओर से निर्विकल्प एवं निर्लिप्त रही हैं, तथापि भक्त-मन कब किसी की अपेक्षा/उपेक्षा की परवाह करता है, वह तो अपनी ही भावनाओं को महत्त्व देता है। साथ ही ३० वर्ष की सतत निकटता में मैंने यह भी अनुभव किया है, कि हर महान से महान और लघु से लघु ईकाई भी आपको श्रद्धा की दृष्टि से देखती है। क्योंकि आप आदर्श हैं - उच्चता, भव्यता एवं दिव्यता के।

तभी तो आपके जीवन को शब्दों की सरगम में झंकृत होते देख आचार्य सम्राट श्री देवेन्द्र मुनि जी म० भी हर्षोत्फुल्ल हो उठे, उनके वे शब्द अभी भी मेरे कर्ण-कुहरों मे अव्यक्त रूप से ध्वनि कर रहे हैं - **"विजय श्री ! वे महासाध्वी हैं, देश व काल की सीमा से अतीत श्रमण संस्कृति की गौरव-वाहिका, इनका तो गौरव-गरिमा ग्रंथ तैयार करिये।"**

आचार्य देव के शब्दों ने मेरे भाव-क्षीर में मिश्री का काम किया, मैं पुलकित हो उठी उनके औदार्यपूर्ण गुण-ग्राहकता से सराबोर वचनों से। मेरे इस प्रथम प्रयास में प्रेरणास्रोत रहे हैं, राष्ट्रसंत श्री गणेशमुनि जी शास्त्री एवं उनके विद्वान् सुशिष्य श्री जिनेन्द्रमुनि जी 'काव्यतीर्थ' भी। जिन्होनें मेरे डगमगाते कदमों को स्थिरता प्रदान की और समय-समय पर उचित मार्गदर्शन देकर उपकृत किया, मैं उनका हृदय से आभार मानती हूँ। साथ ही कार्य की संपूर्णता तक परम श्रद्धेया पंजाब उपप्रवर्तनी महासती श्री केसर देवीजी महाराज का आशीर्वाद एवं मेरी गुरु भगिनी महासती श्री विमला श्री जी म०, महासती डॉ० सरोज श्री जी म०, महासती डॉ० मंजु श्री जी म० का भावनात्मक सहयोग आलोक स्तम्भ के समान मार्गदर्शक बनी रह, यह मैं अनुभव करती हूँ।

मेरी सतत सहयोगिनी परम विदुषी, प्रखर प्रतिभा की धनी साध्वी श्री प्रियदा जी एवं प्रतिभा श्री जी का अपरम्पार सहयोग इस भावांकन की प्रत्येक पंक्ति में

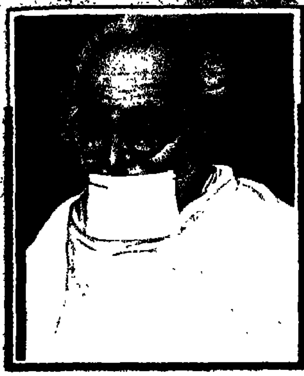
सूत्रवत् गुम्फित है, उनका आभार मानना उनकी विराट् श्रद्धा-भावना का संक्षिप्तिकरण करना है। मैं उनको धन्यवाद देती हूँ। श्रीयुत् राजेन्द्र नगावत ने कृति के संपादन में अपना अमूल्य समय प्रदान किया, वे साधुवाद के पात्र हैं। उनकी साधना महाश्रमणी की आराधना के साथ समर्पणता के रूप में इस ग्रंथ का अलंकरण है।

भाई शादीलाल जी एवं भाई सुरेंद्रमोहन जी पुस्तक प्रकाशन के कीर्ति स्तम्भ रहे हैं, गुरुमैया के प्रति उनकी अनन्य श्रद्धा ही कृति के रूप में सर्वजनभोग्य बनी है। भाई प्रवीण जी (पार्श्व ऑफसैट प्रैस वाले) ने पुस्तक को सुन्दर बनाने में जिस आत्मीयता लगन व परिश्रम का परिचय दिया, वह मेरे लिये सदा ही अविस्मरणीय रहेगा। साथ ही अभिनंदन ग्रंथ समिति के इतर सदस्य एवं जिन-जिनके श्रद्धा-सुमन इस कृति को यत्र-तत्र सुरभित कर रहे हैं, उन सबके प्रति मैं मंगल कामना करती हूँ।

अंततः कल्याण की पीयूष-वर्षा करने वाली महामेघधारा के समान मेरी परम आराध्या गुरुवर्या! आपका तपोपूत जीवन संयम साधना की अर्द्धशताब्दी को पार करता हुआ सुरसरि की परम पावनी वारिधारा सा अद्यतन गतिमान है। इस स्वर्णिम अवसर पर जो कुछ अस्फुट अव्यक्त एवं टूटा-फूटा बिखरा सा अंकित हो सका वह इस तुच्छ कृति के माध्यम से आपश्री के चरणों में समर्पित कर रही हूँ।

—साध्वी विजय श्री 'आर्या'

पूज्य महाराज श्री के निर्मल संयमी जीवन के साक्षी श्रमण-संघ के क्रमशः आचार्यत्रय



श्रमण-संघ के प्रथम आचार्य-सम्राट
पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज



श्रमण-संघ के द्वितीय आचार्य-सम्राट
श्री आनन्द ऋषि जी महाराज



श्रमण-संघ के तृतीय आचार्य-सम्राट
श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज

महासती कौशल्यादेवी जी की दादा गुरुणी
वीतरागता की साकार प्रतिमा
महासती मोहनदेवी जी महाराज



जन-जन के मंदिर में जलाये जिसने ज्ञान प्रदीप।
उन महासती मोहन देवी को वंदन करो सदैव॥



उदय होगा हमारा भाग्य भी इस भाग्यशाली से।
चमक उठता हैं जैसे विश्व सारा अंशुमाली से॥



प्रातः स्मरणीया अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी महासती श्री कौशल्यादेवी जी महाराज

खण्ड १

अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी अभिनंदनीय जीवन वृत्त

लेखिका
साध्वी विजय श्री 'आर्या'



मानव की पूजा कौन करे, मानवता पूजी जाती है।
साधक की पूजा कौन करे, साधकता पूजी जाती है॥

अध्यात्मयोगिनी
जीवन की
ऋषभ रेखाएँ

अध्यात्मयोगिनी जीवन की ऋषभ रेखाएँ

एक भास्वान किरण

उपवन में हंसते-मुस्कुराते सुरभित सुमन को देखकर किसका मन-मधुकर गुंजारव न करता होगा ? धरा पर विकीर्ण दुग्ध धवल निर्मल चन्द्रिका के स्पर्श से कौन पुलकित नहीं होगा ? शिशिर ऋतु की किरणें किसमें नव चैतन्य का संचार नहीं करतीं ? पतित पावनी सुरसरि की वारिधारा में स्नात होकर किसका तन-मन पवित्र नहीं होगा ? गगनचुम्बी भव्य प्रासाद के नयनाभिराम शिखर पर किसके नेत्र स्थिर नहीं हो जाते ? किंतु फूल की मुस्कुराहट में उसके मूल को, धवल-चन्द्रिका को अवतरित करने वाले चन्द्रमा को, किरणों के आलोक के पीछे छिपे सूर्य को, सुरसरि की पावनधारा के आदिस्रोत पद्मद्रह को एवं भव्य भवन के गगनचुम्बी शिखर के गर्भगृह में रही सुदृढ़ नींव को कौन विस्मृत कर सकता है ?

ध्यानयोगिनी, समत्वसाधिका, आत्म-आराधिका कल्याणी गुरुवर्या पूज्या कौशल्यादेवी जी महाराज की श्रेष्ठता, भव्यता, दिव्यता और उच्चता के मूल में जिन शासन का वह निःश्रेयस् संदेश है, जिसे आत्मसात् कर वे महानता के पथ पर अग्रसर है। इस भव्य इमारत की नींव उन सुदृढ़ ईंटो से चिनी गई है, जिसके मूल में इस अवसर्पिणी काल की आद्या महाश्रमणी ब्राह्मी, सुंदरी, वैराग्यमूर्ति राजमती एवं वीर शासन की अद्यतन अविच्छिन्न परम्परा की आद्यस्रोत महाश्रमणी चंदनबाला, मृगावती जैसी संयमनिष्ठा महाश्रमणियों का तप, त्याग वैराग्यमय जीवन चिह्नित है।

श्रमणी-संघ का यह भास्वान प्रकाश अपनी सहस्ररश्मियों से समूचे आर्यावर्त में फैला, और वही पंजाब की शस्य-श्यामला धरा पर महासती श्री खेतांजी के रूप में स्थानकवासी समाज को सर्वप्रथम प्राप्त हुआ। इनके पश्चात् यही प्रकाश

मनुष्य बहुत होते हैं, पर मनुष्यता विरले में होती है। - प्रेमचंद्र

आगे चलकर महासाध्वी श्री वगतां जी, धर्मप्रचारिका महासाध्वी श्री सीता जी, धर्म शास्ता साध्वी श्री खेमा जी, आर्या श्री सजना जी, पंजाब की क्षीणप्रायः श्रमण परंपरा को पुनर्जीवित करने वाली महाप्रभाविका महासती श्री ज्ञानाजी, महासती श्री खूबा जी, महासती श्री मूलां जी, तपस्विनी श्री मेलो जी से महान तत्त्वज्ञा, पंजाब की आद्य प्रवर्तनी महासती श्री पार्वतीजी के रूप में जैन समाज को प्राप्त हुआ।

महासती श्री पार्वतीजी महाराज पांचाल प्रदेश की गौरव, स्पष्ट व निर्भीक वक्ता एवं हिंदी की प्रथम जैन महिला लेखिका के रूप में विश्वप्रसिद्ध साध्वी थीं। विचार, उच्चार और आचार में एकरूप, वर्तमान पंजाब के विशाल श्रमणी-संघ की प्रवर्तिका महासती पार्वती जी जैन संघ की अद्वितीय सती शिरोमणि थीं।

आपके पश्चात् महाभाग्यवान, वैराग्यवान संयमनिष्ठा महासती श्री भगवानदेवी जी हुई, आपकी शिष्या महासती श्री द्रौपदां जी म० भी करुणा की प्रतिमूर्ति एवं महान धर्मप्रभाविका के रूप में प्रसिद्ध हुई। इन्हीं की गौरवशालिनी शिष्या वीतरागता की साकार प्रतिमा, आधुनिक साधना शिविरों की साधिकाओं में सम्माननीया, नारी-समाज की उद्धारिका, ज्ञानमूर्ति, तपोधनी महासती मोहनदेवी जी महाराज थी। उनकी शिष्या शिरोमणि सरलमना, सतत उद्यमरता महासती रोशनमती जी की शिष्या, महासती प्रवर्तनी पार्वती जी महाराज की अनुकृति आज बालब्रह्मचारिणी, पंजाब उपप्रवर्तनी, महासती केसरदेवी जी में देखी जा सकती है।

तन की कमनीयता, मन की निर्मलता, वाणी की स्पष्टता, हृदय की कोमलता, व्यवहार की कुशलता, संकल्प की अजेयता एवं अनुभवों की प्रौढ़ता की अपर पर्याय हैं महासती श्री केसरदेवी जी महाराज। आपके धवल निर्मल ऊर्जस्वल विशाल व्यक्तित्व का अंकन शब्दों की क्षुद्र परिधि में आबद्ध नहीं किया जा सकता। विशेषतः इस समय इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि इसी डाली का फूल आज महासती कौशल्यादेवी जी के रूप में जिनशासन की अनुपम शोभा से अभिमंडित हो रहा है। महासाध्वी श्री कौशल्यादेवी जी जैसा रत्न समाज को देकर आपने वस्तुतः जिन शासन की गरिमा में श्रीवृद्धि की है।

महासती श्री चंदनबाला जी से आज तक सतत प्रवहमान इस पुण्यतोया साध्वीसलिला का निष्पक्ष अवलोकन करने से यह तो सूर्य के प्रकाश की भांति स्पष्ट है, कि संयमनिष्ठा संपन्न, मोक्षार्थलक्ष्यी, आत्मार्थी, कल्याणी महाश्रमणियों

का निराबाध अवतरण इस भूमा के अंचल पर होता ही रहा है, और इन्हीं से प्रेरणा लेकर नव नवीन मोक्षार्थी साधक तैयार हो रहे है। महाश्रमणी श्री कौशल्यादेवी जी इन्हीं कल्याणी महाश्रमणियों की एक कड़ी हैं। जिनका जीवन एक ऐसा दिव्य आलोक है, जिसके संदर्शन कर मुमुक्षु आत्माएँ आत्म-स्वरूप का बोध कर सकती है। इसी हेतु से आध्यात्मिक जीवन एवं उससे जुड़े परिवेश का परिचय इन पृष्ठों पर अंकित किया जा रहा है।

पंजाब की गरिमा

भारत के पश्चिमोत्तर भाग में स्थित एक महत्वपूर्ण प्रदेश है, पंजाब। यहाँ की धरती अनेक सन्दर्भो में उर्व[illegible] है। उर्वरता का एक बहुत बड़ा कारण है, इसे पोसती हुई पाँच नदियाँ - सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब और जेहलम। इन पाँच महानदियों ने इस प्रदेश को सदा शीतल जल से आप्लावित एवम् नाना जाति की प्राकृतिक सम्पदाओं की समृद्धि से परिपूर्ण रखा है, अतः इस प्रदेश का गुण-निष्पन्न नाम "पंचनद" या "पंजाब" प्रसिद्ध हो गया।

पुरातन काल से ही लोग अक्सर नदियों के किनारों पर बसते रहे हैं। भीतरी भागों में तो बहुत बाद में विस्तार हुआ है। यद्यपि हिन्दुकुश और काराकोरम की पर्वत श्रेणियों ने भारत के इस पश्चिमी भूभाग को एक सीमा रेखा दी। परन्तु इन पहाड़ियों के खैबर दर्रे ने मध्य एशिया और अरब आदि देशों के अनेक आक्रामकों को भी भारत में प्रवेश दिया। शक आए, हूण आए, मुगल आए, चंगेज, गजनवी, तैमूर, बाबर जैसे आक्रामकों से यह धरती आक्रान्त रही है। स्वाभाविक रूप से इस स्थिति में पंजाब से बसने वाले लोगों में संघर्ष से जूझने व निरन्तर अपने श्रम को महत्त्व देने की वृत्ति का उदय हुआ। उनकी श्रमनिष्ठा का ही प्रभाव था कि पाँच नदियों से समृद्ध इस प्रदेश में समृद्धि व्याप्त रही। शस्य-श्यामला धरती से सोना उगलता रहा। मनुष्य के श्रम ने उसे दोनों हाथों खूब बटोरा।

पंजाब की माटी वीरत्व से परिपूर्ण रही है। राजा रणजीतसिंह जैसे पराक्रमी शासक तथा लाला लाजपतराय जैसे जुझारू व्यक्तित्व पंजाब की ही देन है।

मानव इतिहास अन्ततः विचारों का इतिहास है। - एच० जी० वेल्स

पंजाब के लोगों की आपसदारी भी विश्व विख्यात है। परस्पर लगाव और स्नेह के कारण यहाँ अनेकों प्रेम कहानियों ने भी जन्म लिया। विभिन्न धर्मों व दर्शनों के निरन्तर सम्पर्क से पंजाब की संस्कृति में पर्याप्त रूप से उदारता का समावेश हुआ। हर प्रकार के संकट से जूझने में धर्मगुरूओं ने सही दिशा-निर्देशन दिया। परिणामतः यहाँ के लोगों में गुरूओं के प्रति उत्कृष्ट समर्पण भाव का उदय हुआ।

श्रमण-परम्परा की आधारभूमि/कर्मभूमि यद्यपि उत्तर-पूर्वी भारत अधिक रही है, पर पंजाब के रास्ते श्रमण धर्म विदेशी भूमि तक प्रसारित हुआ। पंजाब ने भी श्रमण धर्म को आत्मसात किया। श्रमण-परम्परा के महान सन्त श्री शांतिचन्द्र जी म. ने सम्राट् अकबर को प्रेरणा दी और बकरीद पर जीव हिंसा बन्द करवाने का फरमान जारी करवाया। आचार्य श्री मलूकचन्द्र लाहौरी, आचार्य अमरसिंह जी म. जैसे आध्यात्मिक सन्त यहाँ काफी प्रभावपूर्ण रहे। पंजाब केसरी आचार्य श्री काशी राम जी म., आचार्य श्री सोहन लाल जी म०, आचार्य श्री आत्माराम जी म. आदि भी इसी पुण्य प्रसवा भूमि के रत्न हैं। इन सन्तजनों ने न केवल पंजाब वरन् सम्पूर्ण भारत में अपनी प्रभावपूर्ण वाणी से धर्म-गंगा प्रवाहित की।

लाहौर की कीर्तिगाथा

'लाहौर' पंजाब की हृदयस्थली है। पंजाब की सभी प्रगतियों का केन्द्र स्थल 'लाहौर' है।

कई सौ वर्षो से यह पंजाब की राजधानी रहा है। पंजाबी लोग इसे 'लाहौर' अथवा 'ल्हौर' कहते है। फारसी किताबों में इसको लाहावर, लोहावर, लहानूर, लहवर, रहवर आदि नामों से पुकारा है। अमीर खुसरो ने इसे 'लाहानूर' लिखा है। कुछ प्राचीन जैन लेखकों ने भी इसे 'लाहानूर' नाम ही दिया है। राजपूतों के इतिहास में इसे 'लोहगढ़-लोहकोट' भी कहा है। ब्राह्मण लोग इसे 'लवपुर' कहते है। अंग्रेजी स्पेलिंग 'LAHORE' के प्रभाव से गुजराती, मराठी व हिंदी में 'लाहौर' लिखा जाता है।

दंतकथा है, कि श्री रामचंद्र जी के पुत्र 'लव' ने 'लवपुर' बसाया, वही आज 'लाहौर' के नाम से प्रसिद्ध है। तथा दूसरे पुत्र 'कुश' ने 'कुशपुर' बसाया, जो 'कसूर' नाम से प्रख्यात है। लाहौर में हाथीपांव द्वार के समीप रामपुत्र 'लव' का प्राचीन मंदिर भी है। किंतु इस दंतकथा के तथ्यातथ्य को जानने का कोई विश्वसनीय साधन नहीं

है। लाहौर किले में लोह का मंदिर है और अमृतसर में लोहगढ़ का दरवाजा है। गुजरांवाल में लाहौरी दरवाजा है। इसका संबंध 'लव' से है या 'लोह' से यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

'कनिंघम' के अनुसार 'योनर्टन' ने अपनी पुस्तक "History and Entiquities of Lahore" में पहली बार सिद्ध किया कि 'Tolmy' (टॉलमी) द्वारा वर्णित 'Labokla' (लाबोक्ला) पहले 'लवपुर' और बाद में मुस्लिम काल में 'लाहौर' के रूप में जाना जाने लगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि लाहौर को विक्रम की तीसरी-चौथी शताब्दी में किसी 'लोह राजा' ने बसाया था। इसकी पुष्टि पट्टावली समुच्चय भाग 2 गुजराती से भी होती है - 'विक्रम संवत् 348 लाहौर शहर वस्यो।" अर्थात् विक्रम संवत् 348 में लाहौर शहर बसा, जो थोड़े ही समय में बड़ा भारी नगर बन गया।

ईसा की सातवीं शताब्दी में यह एक महत्वपूर्ण स्थली बन गई थी, इसका गौरवपूर्ण उल्लेख 'Hueinsung' ने किया है। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय लाहौर पर हिंदीशाही राज्य था। महमूद की सेनाओं ने 1022 ई० में इसे बेरहमी से लूटा। सन् 1206 में गौरी की मृत्यु के उपरांत 'ऐबक' को राज्य का स्वामी बना दिया गया। 14वीं सदी के अंत में क्रूर आक्रान्ता 'तैमूर' ने भी इसे लूटा। सन् 1524 ई० में 'बाबर' ने न केवल इस नगर को लूटा, वरन् जला भी दिया। ध्वस्त नगर के स्थान पर शीघ्र ही नया नगर बस गया। 'अकबर' के समय लाहौर का वास्तविक महत्व प्राप्त हुआ। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ सभी को इस नगर से विशेष लगाव रहा। बादशाहों के विशेष लगाव के कारण नगर को सुंदरता, भव्यता व समृद्धि की सौगात मिली।

अकबर के शासनकाल में लाहौर का भ्रमण करते हुए 'Father Mousrate' ने लाहौर का गौरवगान कुछ यों किया है -

"यह नगर अपने फैलाव में, आबादी और धनराशि में व्यापारियों के संकलन में, जो सारे एशिया में वहाँ एकत्र होते हैं ; संपूर्ण एशिया या यूरोप में द्वितीय हैं। और इसकी आबादी इतनी घनी है, कि गलियों में लोगों के कंधे एक दूसरे से रगड़ खाते हैं। "

Tery (टेरी) नामक अंग्रेज पादरी ने 'लाहौर' की प्रशंसा करते हुए इसे 'पंजाब के एक प्रधान नगर' के रूप में चित्रित किया है। उसने लिखा है, कि

"लाहौर विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है। आबादी और दौलत की दृष्टि से यह मालामाल है। भारत के सर्वप्रथम व्यापारिक केन्द्रों में उसकी गणना होती है। कहा जाता है, कि उस समय एक उक्ति खूब चलती थी, कि "जिसने जन्म लेकर लाहौर को नहीं देखा, उसका जन्म व्यर्थ है।क्योंकि अगर वह लाहौर शहर घूमता तो उसे धर्म, दर्शन, संस्कृति व इतिहास का बिना कुछ पढ़े-लिखे ज्ञान हो जाता।

रावी नदी के तट पर बसा लाहौर शहर जैन-धर्म व परम्परा का भी प्रमुख केन्द्र रहा है। लाहौर का सबसे प्राचीन संबंध तपागच्छ के जैन आचार्य हीरविजय जी व खरतरगच्छीय आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि से है। दोनों आचार्यों का बादशाह अकबर के दरबार में महत्वपूर्ण स्थान था। अकबर जैन साधुओं के चरित्र, ज्ञान पांडित्य तथा सर्वजनहिताय भावना से इतना प्रभावित था, कि उसने उन्हें अनेक पदवियाँ प्रदान की - वि०सं० 1640 में श्री हीरविजय सूरि को 'जगदगुरू' और मुनि श्री शांतिचन्द्र को 'उपाध्याय' पद दिया। वि० सं. 1649 में श्री जिनचंद्रसूरि को 'युगप्रधान' और मुनि मानसिंह को 'आचार्य' पद दिया। इस अवसर पर मंत्री कर्मचंद ने बड़ा भारी महोत्सव भी किया। जयसोम को 'पाठक' पद दिया, समयसुन्दर जी को 'उपाध्याय' पद मिला। उपाध्याय समयसुन्दर जी ने लाहौर में ही 'राजानो ददते सौख्यम्' इस आठ अक्षर के छोटे से वाक्य के आठ लाख अर्थ कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया था। इसी प्रकार अकबर ने भानुचन्द्र जी को 'उपाध्याय' पद दिया। और इन्हीं के कथन पर श्रद्धा करते हुए अपने बेटे जहाँगीर के यहाँ मूलनक्षत्र में प्रसूत कन्या के कारण कष्ट की उपशांति के लिए श्री तीर्थकर भगवंतों की 'अष्टोत्तरशत स्नात्रपूजा' करवाई थी। यहीं पर जब विजयसेनसूरि ने ब्राह्मण पंडितो को हराया तो अकबर ने उन्हें 'सवाई' की पदवी दी। मुनि नन्दिविजय और मुनि सिद्धिचन्द्र के अवधान देखकर अकबर ने उन्हें 'खुशफहम' (कुशाग्रबुद्धि) की पदवी दी। इस प्रकार जो महोत्सव और धर्मप्रभावना लाहौर ने अकबर के समय देखी शायद उसे फिर कभी नसीब नहीं हुई।

सन् 1738 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद लाहौर पर मुगलों का नियंत्रण ढीला पड़ गया। सन् 1799 में महाराजा रणजीत सिंह ने लाहौर को पंजाब की राजधानी बनाया। दुर्भाग्य से अंग्रेजो की कुटनीति के कारण भारत का विभाजन हुआ और पंजाब का भी विभाजन हो गया। विभाजन की विभीषिका ने जो उत्पात किया, उसके कारण कई मनों में टूटन और विद्वेष ने जन्म लिया। लाहौर जैसी सुरम्य नगरी पाकिस्तान का भूभाग बन गई।

सूर्य और चंद्र अंधकार छोड़कर जाते हैं, जबकि महापुरुष प्रकाश।

विभाजन से पूर्व लाहौर धर्म, दर्शन व संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। इस शहर में अनेकों श्वेताम्बर जैन मन्दिर, उपाश्रय, पुस्तकालय व धर्म प्रचार के केन्द्र थे। लाहौर का दिगम्बर जैन मन्दिर भी अपना अभूतपूर्व स्थान रखता था। जैन ओसवाल व अग्रवालों के घर हजारों की संख्या में थे। ओसवालों में जज रलियाराम, लक्ष्मणदास, मेहरचंद (किताबों वाले), माणकशाह, मेहताबराय आदि प्रसिद्ध सुश्रावक जैनधर्म व शास्त्रों के ज्ञाता तथा देव, गुरु धर्म के प्रति समर्पित रहे हैं। पू० श्री काशीराम जी म० आदि दिग्गज आचार्यों, चरित्रनिष्ठ तपोमहर्षि संतप्रवर एवं प्रवर्तिनी श्री पार्वतीजी म०, प्रवर्तिनी श्री राजमती जी म० ने लाहौर में धर्म की जो अलख जगाई है, उससे जैन-अजैन समाज उऋण नहीं हो सकता। लाहौर में ऐसे-ऐसे शास्त्रज्ञ सुश्रावक थे, कि जब श्री काशीराम जी महाराज भगवतीसूत्र जैसे विशाल व गहन सूत्र पर प्रवचन करते तो श्रावकों की ओर से भी 25 भगवतीसूत्र खुल जाते थे। इनता अध्ययन व शास्त्रज्ञान था श्रावकों का। साधारण साधु-साध्वी की तो इतनी हिम्मत ही नहीं होती थी, कि वे व्याख्यान के पाटे पर बैठें। जैन-परम्परा के इसी प्रमुख नगर में ओसवाल जैन समाज के लगभग 400 घर थे जिन्हें **'भावड़ा'** कहा जाता है।

ओसवाल जाति अनेकता में एकता की संवाहक रही है। वर्णवाद, जातिवाद से ऊपर उठकर धार्मिक बंधुत्वभाव से इस वंश की नींव पड़ी थी। इसका इतिहास अति प्राचीन है, जो राजस्थान की **'ओसिया'** नगरी से जुड़ा हुआ है।

हमारी चरितनायिका इसी वंश की गौरव गरिमा को अभिमंडित करने वाली हुई है, अतः हम अग्रिम पृष्ठों पर ओसवाल जाति की यशोगाथा का संक्षिप्त वर्णन कर रहे हैं।

ओसवाल वंश की यशोगाथा

ओसवाल वंश की स्थापना की भी ऐतिहासिक गाथा है। जोधपुर के रूणेचा के मार्ग पर "ओसिया" नगरी स्थित हैं । यह थली प्रदेश का ऐतिहासिक नगर है। वीरभूमि राजस्थान की इस नगरी का ओसवाल वंशियों के लिए विशेष महत्त्व है। यह नगर कभी अपूर्व गरिमा से मंडित विशाल नगर था।

भगवान पार्श्वनाथ के पांचवें पट्टधर श्री स्वयंप्रभ सूरीश्वर जी जिस प्रकार "श्रीमाल" जाति के संस्थापक माने जाते है उसी प्रकार उन्हीं के शिष्यरत्न

दयाभाव + समता + निर्भयता = अहिंसा । - विनोबा

प्रभावशाली आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि जी ने ओसवाल जाति की स्थापना कर मानव में मानवता की प्रतिष्ठापना की। आप भ० महावीर के 52 वर्ष पश्चात् पार्श्व-परम्परा के छठे पट्टधर हुए। भ० महावीर के बाद जब वर्णवाद ने पुनः सिर उठा लिया तो आपने उभरी जड़ता को समाप्त कर अलग-अलग वर्गों में बँटे मानवों को पुनः व्यवहार एवम् विचारशुद्धि के आधार पर संगठित किया।

इतिहासकारों का मत है कि भ० महावीर के 70 वर्ष पश्चात् वि०सं० से 400 वर्ष पूर्व श्री रत्नप्रभसूरि 500 मुनियों के साथ उपकेशपुर पधारे। वहाँ राजा और प्रजा सभी चामुण्डा देवी के भक्त थे। साथ ही वे मांसाहार, बलिप्रथा, मद्यपान आदि व्यसनों एवम् हिंसक यज्ञयाग आदि से भी ग्रस्त थे। राजा व प्रजा के वाममार्गी होने से जैन सन्तों को भिक्षा में कठिनाई होने लगी, अतः श्री रत्नप्रभसूरि जी ने श्रमणों को वहाँ से विहार का आदेश दिया। लेकिन चामुण्डा देवी के अनुरोध पर आचार्य श्री स्वयं 35 साधुओं सहित उपकेशपुर में चातुर्मासार्थ रुक गए। शेष 465 श्रमणों को गुजरात की ओर विहार करवा दिया।

इधर सर्वजनहितैषी आचार्य ने व्यसनों में आकंठ निमग्न जनसमुदाय को देखा तो वे करुणार्द्र हो उठे। ओसिया निवासियों को मांस-मदिरादि कुव्यसनों से मुक्त कराने की व्यापक जनहित की भावना से आचार्य श्री ने देवमाया का प्रसार किया, जिससे तत्कालीन नरेश उप्पलदेव की एकमात्र सुपुत्र की सर्पदंश से मृत्यु हो गई। युवराज की मृत्यु से सर्वत्र शोक व्याप्त हो गया, उस समय आचार्य श्री के शिष्य वीरधवल के परामर्श से मंत्रियों ने राजकुमार पर आचार्य श्री के पाद-प्रक्षालन का जल छिड़का, जिससे राजकुमार स्वस्थ हो गया। आचार्यश्री की जय जयकार होने लगी। उपकारी सन्त के प्रति राजा ने कृतज्ञता व्यक्त की। उपहार स्वरूप जवाहरातों से भरा थाल भिजवाया।

आचार्यश्री ने कहा - **"हम तो त्यागी सन्त हैं। हमारे लिए तो द्रव्य आदि का कोई मोल नहीं है। यदि राजा हमें उपहार देना ही चाहते हैं, तो वे मिथ्यामार्ग को छोड़कर परम पवित्र जैन धर्म को अंगीकार करें। इससे उनका कल्याण होगा।"**

आचार्यश्री की प्रबल प्रेरणा से राजा सहित 1 लाख 84 हजार व्यक्तियों ने जैन धर्म स्वीकार किया। जन के पूर्व "महा" शब्द लगाकर "महाजन" वंश की स्थापना हुई। वे ही कालांतर में "ओसवाल" कहलाये। यह भी कहा जाता है, कि

राजा उत्पल देव के साथ उपकेश पट्टण के सभी वर्णों के प्रजाजन जैन बने जिनमें क्षत्रिय और वैश्यों के साथ ही ब्राह्मण व शूद्र आदि भी निष्ठा से जुड़े है और वे सब दूध-मिश्री की तरह घुल-मिल गये। इस घोलमोल का ही प्रभाव हैं, कि ओसवालों में क्षत्रियों का तेज और स्फूर्ति, ब्राह्मणों का ज्ञान और गंभीरता, वैश्यों की चतुरता और व्यवहार-बुद्धि तथा शूद्रों की सेवा भावना एक साथ देखने में आती है। इस जाति में वीर योद्धा भी हुए। बुद्धिमान मन्त्री, कुशल प्रशासक और साहसिक व्यापारी भी हुए। दानवीरता, सेवा भावना एवम् सहिष्णुता में ओसवाल जाति सदा अग्रणी रही है।

ओसिया नगरी से महाजनों के अन्यत्र बस जाने के सम्बन्ध में इतिहासविदों का अभिमत है, किसी समय राजा उत्पल देव के मन्त्री उहड़ ने महावीर का मन्दिर बनवाया। उसने मूर्ति के वक्षःस्थल पर स्थित दो ग्रंथियों को अशोभन जानकर भंग करने की कोशिश की, इससे देवी रुष्ट हो गई। देवी के अभिशाप स्वरूप महाजनों को उपकेश पट्टण छोड़ना पड़ा। ओसवालों द्वारा ओसिया से अन्यत्र चले जाने का यह तो दैविक कारण था, पर विशाल नगरी में स्थित हजारों जैन परिवारों के व्यावहारिक रूप से निष्क्रमण का कारण अकाल, सूखा और तद्जन्य विपत्तियाँ रहीं थी। चोरी डकैती से आक्रान्त समृद्ध जाति को विवश होकर जन्मभूमि से दूर जाना पड़ा। आजीविका और सुरक्षा के लिए ओसवाल वंशी दूर-दूर प्रदेशों में निकल गए, और जहाँ भी गए, अपनी विशिष्टताओं को लेकर गए। देश ही नहीं विदेशों में भी वे फैल गए। उज्जवलता से युक्त ओसवाल वंश की ही एक स्वर्णिम कड़ी है, **"अध्यात्म-योगिनी दिव्य विभूति महासती श्री कौशल्या जी महाराज।"**

मनानी परिवार की माननीया

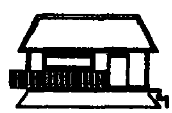
अनुश्रुति है कि लगभग 500 वर्ष पहले ओसवाल वंश के अनेक परिवार भीषण अकाल और युद्धों से उत्पीड़ित होकर उपने मूलस्थल ओसिया नगरी को छोड़कर भारत के विविध अंचलो में जा बसे। पंजाब में बसे हुए ओसवाल परिवार जोधपुर और उसके आसपास के अंचलों से सम्बद्ध हैं।

पंजाब में ओसवालों के लिए "भावड़ा" सम्बोधन प्रचलित है। यह "भावबड़ा" का संक्षिप्त रूप है। मुख-सुख या प्रयत्न लाघव की दृष्टि से यह "भावड़ा" के रूप में चल पड़ा। जिस प्रकार अन्य क्षेत्रों में दया, दान, त्याग, संयम,

विवेक और भाव-भक्ति आदि उच्च भावनाओं के वाहक होने से ये "**महाजन**" कहलाये उसी प्रकार पंजाब में ये "**भावबड़ा**" कहलाए। इस सम्बोधन के साथ ही इनके प्रति श्रद्धा भी सहज ही उपजती है। पंजाब में आज "भावड़ों" को इतना वर्चस्व है, कि एक-एक गाँव में सैंकड़ो परिवार "भावड़ो" के मिल जाएंगे। लाहौर से सात-आठ मील दक्षिण की तरफ एक गाँव है, जिसका नाम ही "**भावड़ा**" है। इससे यह परिज्ञात होता है, कि अतीत में जैनों का विशाल समुदाय वहाँ रहता होगा। इस वंश के 18 गोत्र माने गये हैं, जिनकी लगभग 500 उपशाखाएँ हैं। आगे जाकर ओसवाल वंश में 1444 गोत्रों की गणना की गई। उन्हीं में एक गोत्र है, '**मनिहानि**'। यह गोत्र किस कारण से अस्तित्व में आया यह अनुसन्धान का विषय है। भारत के विविध अंचलों में, विशेष रूप से पंजाब में इस गोत्र के लोग काफी संख्या में हैं। स्यालकोट का सावनशाह मोतीशाह का विशाल परिवार, सिड्ढौरा (अम्बाला) का हंसराज जी का परिवार और जगरांवा (पंजाब) का लाला चेतराम नरातराम का परिवार "मनिहानि" गोत्रीय है, इसी प्रकार लाहौर में लाला 'हीरालाल गंगाराम' का परिवार भी मनिहानि गोत्र का है। परम श्रद्धेया श्री कौशल्यादेवी जी महाराज इसी परिवार की विभूति हैं। "मनहानि" और "मनानि" नाम से जाने वाले लोग भी "मनिहानि" ही है।

मनिहानि कुल की परम्परा गौरवमयी रही है। इस कुल के पूर्वज अनुशासनप्रिय व धर्मनिष्ठ थे। कहा जाता है, कि अपनी जरा सी अवहेलना होने पर किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष होकर वे अपने वंशजों को सावधान कर देते हैं। लाहौर, स्यालकोट आदि में बसे इस परिवार के लोग पकिस्तान बनने के बाद अब बम्बई, जयपुर, दिल्ली, कोटा आदि स्थानों पर आकर बस गये है।

उत्कृष्ट पारिवारिक परिवेश



उत्तम आत्मा के अवतरण की पृष्ठभूमि भी उत्तम ही होती है। फल को देखकर उसके बीज का अनुमान कर लिया जाता है, इसी प्रकार सन्तान को देखकर माता-पिता का भी परिचय हो ही जाता है। हिन्दी के एक कवि ने कहा है -

" जैसे होंगे सघन विटप, तो छाया भी वैसी होगी।
जैसे होंगे मात-पिता, तो सन्तति भी वैसी होगी। "

प्रेम झोंपड़ी को महल बना देता है। - हाल्टी

यह तो एक तथ्य है, कि हीरे की खान से हीरा पैदा होता है, स्वर्ण की खान से स्वर्ण, महान आत्माएँ भी इसी प्रकार उत्तम कुल में जन्म लेती हैं। आपके पिता श्री खैरातीलाल जी एक धर्मनिष्ठ सुश्रावक थे। आपके दादा गंगाराम जी प्रख्यात व्यक्तित्व के धनी श्री हीरालाल जी के अनुज थे। आप अपने परिवार के साथ लाहौर में कब आकर बसे इसका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। लाहौर के जिस भाग में आप रहते थे वह ओसवालों की बस्ती थी, इसे **'थड़ियां भावड़यां'** अथवा **'भावड़े दी थड़ियाँ'** कहते थे। तथा कोई 40 वर्षो से इसे 'जैन स्ट्रीट' कहने लगे थे। यहाँ जैन स्थानक, दिगंबर जैन मंदिर व अकबर के समय का श्वेतांबर मंदिर तथा उपाश्रय जैनधर्म की एकता परस्पर सौहार्द एवं भ्रातृभावना का परिचायक था। यहीं पर श्री खैरातीलाल जी अपनी मातु श्री गुरदेई (कक्कीबाई) एवम् अनुज श्री के० डी० रामलाल जी के साथ दस बच्चों के विशाल परिवार के मुखिया थे। समाज में उनको आदर की दृष्टि से देखा जाता था। वे एक प्रामणिक व्यक्ति थे। व्यापार व्यवसाय में प्रचलित अनेक कुटेवों - लेनदेन में हेराफेरी करना, कम देना, अधिक लेना, मिलावट करना, दिखाना कुछ, देना कुछ आदि से आप पूर्णतया परे थे। लक्ष्मी की अपार कृपा होने पर भी आपमें अंहकार का नामोनिशां न था।

श्री खैरातीलाल जी एक जागरूक श्रावक थे। साधु सन्तों के आचार-विचार पर आप खुली दृष्टि रखते थे। प्रायः आप कहा करते थे - **"हम साधुओं के दर्शन करने के लिये जाते हैं, न कि साधुओं को अपने दर्शन देने के लिए। अतः स्थानक में प्रवेश करते ही हमारी निगाहें साधु की ओर होनी चाहिए। साधुओं की निगाहें अगर हमारी ओर हों, वे जाते ही हमसे बातें करने लगे, हमारे बारे में चर्चा करने लगें, तो यह मानना चाहिए कि वे साधु मर्यादा से पृथक हो रहे है।"** आपके अनुसार साधु को ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय में ही एकाग्रचित रहना चाहिये।

श्री खैरातीलाल जी का यह चिन्तन दर्शाता है, कि वे केवल औपचारिकतावश ही साधुओं के दर्शन के लिए समुपस्थित नहीं होते थे, वरन् वे साधुचर्या के प्रति भी पूर्ण सचेत थे, और साधुओं को उत्कृष्ट रूप में देखना ही उन्हें सर्वाधिक प्रिय था।

आप कहते थे, कि "साधु का तो फक्कड़ फकीर होना ही श्रेयस्कर है। अपने आचार-विचार से उसका स्खलित नहीं होना ही कल्याणप्रद है। **"साधु सोहता भला"**- अर्थात् न वह अधिक गर्म हो न बिल्कुल ही नर्म। मध्यम वृत्ति का होकर ही उसे हर श्रावक से व्यवहार रखना चाहिए। कोई जिज्ञासु पास आकर बैठ जाए

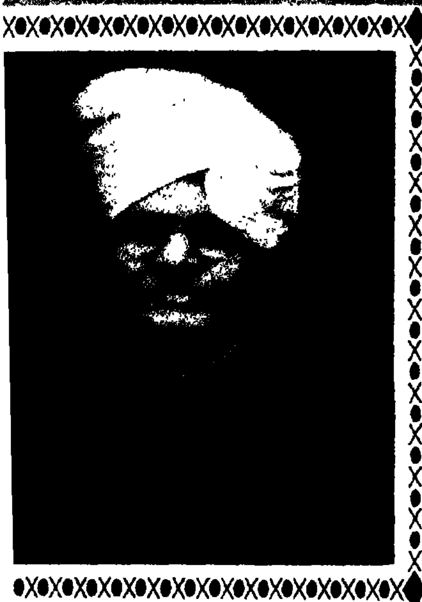
तो उसे करुणा बुद्धि से मुक्ति का मार्ग बताना चाहिए। कोई जिज्ञासा न करे या जानने को उत्सुक न हो तो साधु को मौन ही रहना चाहिए। साधु को अभीष्ट है अपनी साधना, आत्म-साधना के उपरान्त ही उसके लिऐ अन्य क्रियाएँ हैं। अपनी साधना में विघ्न डालकर किसी के प्रति आमुख होना उसे साधुत्व से पतित कर देता है।"

श्रावक यदि ऐसी जागरूकता रखे तो ही सच्चा श्रावक है क्योंकि एक श्रावक की जागरूकता समूचे समाज की जागरूकता का परिचायक है। ऐसा समाज ही प्रगतिपथ पर अग्रसर होता है। श्री खैरातीलाल जी का हर विषय पर अपना एक नजरिया था और उस पर गहन चिन्तन था। यही कारण था कि समाज में आपका पर्याप्त आदर था, कोई भी सामाजिक कार्य आपकी अनुमति के बिना सम्पन्न नहीं होता था।

ऊँचा कद, रौबदार चेहरा, पैनी दृष्टि और इन सबसे ऊपर हृदय की उदारता आपके व्यक्तित्व की अपूर्वता थी। सिर पर बादामी रंग का साफा, शुभ्र स्वच्छ वस्त्र, गिन-गिन कर बढ़ते कदम आपकी छवि को अवलोकनीय बनाते थे। आप दूरदर्शी थे, गहरी सूझबूझ के कारण आगे आने वाले समय को पहले से ही जान लेते थे। जैसे कोई देवी संकेत आपको मिल जाता हो। आपकी पारखी दृष्टि अनुपम थी। देखते ही किसी की वृत्ति को आप सहज ही जान लेते थे। दूरदर्शिता के गुण के कारण ही आपने देश के बदलते हालात को पहले से ही परख लिया था। जब स्वप्न में भी किसी को ख्याल नहीं था कि भारत-पाक विभाजन हो सकता है, तब आपने यह अनुमान लगा लिया था कि स्थिति जटिल से जटिलतर हो सकती है, यह भी सम्भव है कि इस क्षेत्र को छोड़कर जाना पड़े। इस परिस्थिति में आपने अनेकों को वह क्षेत्र छोड़कर दिल्ली आदि स्थलों पर बस जाने की सलाह दी। स्वयं आप भी पाँच मंजिला इमारत और दुकान जो **"हीरालाल गंगाराम"** के नाम से कार्यरत थी; का मोह छोड़कर विशाल परिवार के साथ पटियाला आकर बस गये। व्यापार की दृष्टि से आपने अपनी परख दृष्टि से दिल्ली को बेहतर जानकर पटियाला से दिल्ली की ओर प्रयाण किया। वहाँ अपने आवास और भोजन की चिन्ता छोड़कर सर्वप्रथम व्यवसाय स्थल की खोज की। इस विषय में आपका दृष्टिकोण यह था कि अर्जन तत्काल शुरू हो जाए, क्योंकि **"आयमनालोच्य व्ययमानो वेश्रमणोऽपि श्रमणायते"** अपनी पूंजी को बढ़ाने का उपक्रम नहीं किया जाए तो कुबेर का भंडार भी शनैः

संसार का बड़ा से बड़ा कार्य बुद्धि बल से हो सकता है।

अध्यात्मयोगिनी के माता-पिता





श्रीमति तारा देवी जैन

शनैः रिक्त हो जाता है। कोई भी व्यवसाय में जुटा व्यक्ति यह अच्छी तरह जानता है, कि अपनी रोटी अपना व्यापार ही दे सकता है। दूसरी बात व्यापार नहीं होने की स्थिति में बच्चे बेसहारा हो जाएंगे। ऐसी स्थिति में परिवार के युवक कहीं गलत रास्ता न पकड़ लें, यह भी डर था। श्री खैरातीलाल जी ने गहरी सूझबूझ से दिल्ली में जो दुकाने स्थापित की आज भी वह सदर बाजार में "हीरालाल गंगाराम" नाम से प्रख्यात है। उसे अब आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री अमृतलाल जी सम्भालते हैं।

श्री खैरातीलाल जी की दो शादियाँ सम्पन्न हुई थीं। पहली पत्नी का अल्पवय में देहावसान हो गया था। वह एक कन्यारत्न को जन्म देकर मृत्यु की शरण में जा चुकी थी। उनसे प्रसूत कन्या "सुमित्रा" लाहौर के सुप्रसिद्ध श्रावक लाला रिखबदास जी (धागेवालों) को ब्याही गई। सुमित्रा जी अत्यन्त सरल स्वभाव की धर्मनिष्ठ श्राविका रत्न थीं। महासती श्री कौशल्या जी को इनका भरपूर स्नेह मिला। सन् 1978 में अम्बाला में इनका देहावसान हो गया।

श्री खैरातीलाल जी का दूसरा विवाह स्यालकोट के लाला लालशाह जी की सुपुत्री तारादेवी जी के साथ हुआ। तारादेवी जी शील, सौन्दर्य व सौजन्य से सम्पन्न महिला थी। स्यालकोट और लाहौर की नारियों में वे प्रतिष्ठा प्राप्त थी। हर कोई उन्हें आदर की दृष्टि से देखता था। उनके मन में सात्विकता का वास था, वाणी में मिश्री जैसी मधुरता थी, अपने मिलनसार स्वभाव के कारण सबकी स्नेहभाजन थी, दुखियों के प्रति उनके मन में वात्सल्यभाव था। उनका चेहरा हँसमुख था। धर्म के प्रति वे अनन्य श्रद्धालु थीं। जो गुण प्रकट में दिखते थे, वे अन्तर में भी बड़े ही भव्य व उज्जवल स्वरूप में स्थित थे। शास्त्रों में श्राविका के जितने लक्षण वर्णित हैं, वे सभी आपमें मौजूद थे। तपस्या की उपासना में वे बड़े श्रावकों को भी पीछे छोड़ देती थीं। प्रतिवर्ष अठाई, पर्व तिथियों में उपवास, प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमण एवम् अनेक व्रत प्रत्याख्यानों से आपका जीवनदीप जगमगाता रहता था। तप ने उनके जीवन को इतना सन्तुलित और संयमित बना दिया था कि वे अनेकों की प्रेरणा स्रोत बन गई। उनके प्रभाव से अनेकों ने अपने जीवन को तप, जप में संलग्न किया।

सन्त सेवा उनको बहुत प्रिय थी। नियमित रूप से प्रवचन श्रवण करतीं और अधिकांश श्रेष्ठ बातों को अपने जीवन में स्थान देतीं। समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा

गृहस्थ जीवन का आदर्श - ज्योति एक मूर्ति दो।

थी। सन्त-सती भी उनकी सराहना करते और उनकी धर्मनिष्ठा का उल्लेख करते। स्वच्छ जीवन, स्वच्छ विचार और स्वच्छ व्यवहार की धनी श्रीमती तारादेवी व्रत-नियमों में साधुओं के समान प्रवृत्त होती हुई अपने जीवन के 82 वसन्त पार करने के पश्चात् सन् 1980 में दिल्ली की वीर नगर कॉलोनी में स्वर्गस्थ हो गई।

श्री खैरातीलाल जी के अनुज के०डी० रामलाल जीने भी अपने ज्येष्ठ भ्राता एवम् पिता के यश में अभिवृद्धि की। आप ऊन के प्रमुख उद्योगपतियो में से एक थे। आपके मार्गदर्शन से संचालित 5 विशाल फैक्ट्री और दो दुकाने देश की गौरवगरिमा में चार चाँद लगा रही है। सदर बाजार दिल्ली के आप कई वर्षो तक अध्यक्ष पद पर रहे। वीरनगर (दिल्ली) आदि कई संघ व संस्थाओं के आप माननीय सदस्य रहे हैं। आप अत्यन्त सहृदय, दीनों के मसीहा व अनाथों के आश्रयदाता थे। सन् 1973 में आपका देहावसान वीरनगर (दिल्ली) में हुआ। आपके गौरव को आपके सुपुत्र श्री सुरेन्द्रमोहन जी दिनोंदिन बढ़ा रहे हैं। श्री सुरेन्द्रमोहन जी भी कॉलोनी के कर्मठ कार्यकर्ता हैं। "जैन महावीर स्कूल" के तो आप प्राणाधार हैं। साथ ही उत्तम कोटि के समाजसेवी भी।

श्री खैरातीलाल जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री अमृतलाल जी "हीरालाल गंगाराम" फर्म के मालिक है।श्रीमान् बाबूलाल जी प्लास्टिक फैक्ट्री के रूप में अपना स्वतंत्र उद्योग चला रहे है। श्री देवराज एवम् विजयकुमार जी भी समाज में सुप्रतिष्ठित सज्जन श्रावक हैं। श्री खैरातीलाल जी की सुपुत्री श्रीमति सन्तोष जी का विवाह जम्मू में रंग के व्यापारी श्री बालकिशन जी जैन से सम्पन्न हुआ था। सन् 1977 में वे अपने भरे पूरे विशाल परिवार को छोड़कर स्वर्गवासिनी हो गई। आपकी चौथी पुत्री श्रीमती चन्द्रकान्ता जी तिलक डब्बी वाले श्री विजयपाल जी के घर की शोभा है। सबसे छोटी पुत्री श्रीमती सूर्यकांता हिन्दी की प्रवक्ता पद पर कार्यरत है। इनका विवाह जालन्धर निवासी श्री राजेन्द्र कुमार जी के साथ हुआ है।

इस प्रकार श्री खैरातीलाल जी के परिवार में हर कोई योग्य रूप से अपने कार्यो का निर्वहन कर रहे हैं वे ने केवल अपने परिवारों की शोभा है, वरन् समाज में भी उनकी प्रतिष्ठा हैं और धर्म के प्रति सबकी गहरी आस्था है।

भाग्य एक बाजार है, कुछ देर ठहरने से भाव गिर जाता है । - बेकन

आषाढ़ के अवतंस

भीषण ताप के पश्चात् जब आषाढ़ के बादल घुमड़ते हैं, तो सर्वत्र हर्ष का वातावरण व्याप्त हो जाता है। उस समय बादलों की गड़गड़ाहट ढोल धमाकों की ध्वनि सी प्रतीत होती है और बिजली की चमचमाहट आनन्द से सराबोर कर देती है। कृषक हर्ष विभोर हो जाते हैं, मस्त-मयूर रंग-बिरंगे पंखों को प्रकृति की मनोरम छटा से होड़ करते फैला देते हैं। वर्षा के आगमन की सूचना वे आनन्द से विभोर होकर नृत्य द्वारा व्यक्त करते है। वर्षा की बूंदें आकाश से बरस कर तरस रही धरती की तृष्णा को बुझाने में तत्पर हो जाती हैं। रोमांचित धरा का कण-कण स्फूर्ति से परिपूर्ण हो जाता है और अनेकों बीज अंकुरित होकर हरीतिमा की चादर बिछा देते हैं। उसी महीने में संत सतियों के चरण अविरत गति से वर्षावास स्थलों की ओर बढ़ने लगते है। वर्षा के आगमन और सन्तों के आगमन का मिला-जुला वातावरण सर्वत्र उल्लास के पदचिह्न स्थापित कर देता है। एक ओर कर्मक्षेत्र सक्रिय होने लगता है दूसरी ओर धर्मक्षेत्र, जड़त्व में भी चैतन्य का संचार प्रारम्भ हो जाता है।

प्रकृति की इस सुरम्य वेला में श्रीमती तारादेवी की कुक्षि से कौशल्या देवी का जन्म उसी प्रकार हुआ जैसे पूर्व दिशा में बालसूर्य अथवा सीप में मौक्तिक। आषाढ़ कृष्णा अष्टमी का वह शुभ दिन विक्रम सम्वत् 1985 तदनुसार सन् 1928 ई० को सप्ताह का प्रथम दिन सोमवार; एक अलौकिक उजालिमा से भर उठा। श्रीमती तारादेवी कन्यारत्न पाकर मुदित हो उठीं। गर्भकाल से ही वे अनेकों शुभस्वप्न देख रही थीं। उन्हें यह महसूस हो रहा था कि उनके गर्भ में पलने वाला जीव कोई विशिष्ट व्यक्तित्व का धनी है। अत; गर्भ का वे पूर्ण सजगता से परिपालन कर रही थी। जिस समय कन्या का जन्म हुआ, ठीक उसी समय कक्ष में एक आलोक सा हुआ। जैसे नवजात कन्या का तेज प्रगट हुआ हो।

मध्य बिन्दु पर स्थित अष्टमी तिथि

जिस दिन म० श्री जी का जन्म हुआ वह दिन था अष्टमी का। अष्टमी तिथि सभी तिथियों में मध्य की तिथि है, इस तिथि का जो महत्व है, वह अन्य किसी तिथि का नहीं। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार प्रत्येक मास के दो पक्ष और प्रत्यक पक्ष की

अपना निर्णय किसी से पहले न कहो। - ज्ञान सलडेस

15 तिथियाँ होती है, किन्तु सभी तिथियाँ एक जैसी नहीं होती। कोई तिथि प्रशस्त तो कोई तिथि अप्रशस्त मानी जाती है। जैन ज्योतिष में 15 तिथियों के पाँच स्वरूप बताए गए हैं - नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा। प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी की तिथियाँ "नन्दा" है। द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी "भद्रा" तिथि है, तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी ये "जया" तिथि हैं। चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी रिक्ता और पंचमी, दशमी एवम् पूर्णमासी ये "पूर्णा" तिथि कहलाती है।

महासती कौशल्या जी का जन्म "जया तिथि" का है। जो कर्मो पर विजय प्राप्त कराने वाली तिथि है। जैन धर्म में अष्टमी तिथि का विशेष महत्व है। यह पर्व तिथि मानी जाती है। इस दिन सैंकड़ों मुमुक्षु आत्माएँ आत्मशुद्धि का संकल्प करती हुई विविध प्रकार की तपस्या एवम् धर्माराधना करती है। मध्य की दृष्टि से चिन्तन करें तो तिथियों के पाँच प्रकारों में 'जया तिथि' मध्य में है। जया तिथि में भी अष्टमी की अवस्थिति मध्य में है। पक्ष की पन्द्रह तिथियों में भी अष्टमी तिथि का स्थान मध्य में है। मध्य का स्थान महत्वपूर्ण होता है। विशिष्ट व्यक्ति को मध्य में रखते है। मध्य में रहा हुआ "देहरी दीपक" न्याय से सर्वत्र प्रकाश देता है। शरीर में नाभि का, तिर्यक् लोक में जम्बूद्वीप का, जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत का, आत्मा के असंख्यात प्रदेशो में 8 रूचक प्रदेशों का, हार में पैंडल का, दिवस व रात्रि के मध्य का विजय मुहूर्त का, पंच परमेष्ठी में आचार्यवर का जो महत्व है, वही महत्व तिथियों के मध्य में अष्टमी तिथि का है।

कोई भी वृत्त अपनी परिधि का निर्माण मध्यबिन्दु से ही करता है। किसी भी संघर्ष में मध्यस्थ ही उचित समाधान देता है। त्राटक ध्यान में चक्षु को मध्य बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है। न अधिक कठोर, न अधिक मृदु जीवन में भी मध्यम मार्ग का बड़ा महत्व है। परिपूर्ण परिक्रमा के लिए धुरी की स्थापना भी मध्य में की जाती है। इस प्रकार मध्य स्थान की अपनी एक विशिष्ट गरिमा है।

अष्टमी का महत्त्व एक अन्य तरीके से भी आंका जा सकता है। पन्द्रह तिथियों में अष्टमी ही एक ऐसी अनन्य तिथि है, जिसमें चन्द्रमा शुक्लपक्ष का हो या कृष्णपक्ष का, एक जैसा रहता है। न उसकी शुक्लपक्ष में कलाएँ बढ़ती है, न कृष्णपक्ष में घटती है। अष्टमी का चन्द्रमा शुक्लपक्ष को जितना प्रकाश देता है, उतना ही प्रकाश उसका कृष्णपक्ष की अष्टमी का होता है। अष्टमी तिथि चन्द्रमा के उत्थान और पतन में समत्व की सूचक है।

ऐसे आदमी पर कभी विश्वास न करो जो तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँधें। - अज्ञात

अध्यात्म में समता का बड़ा महत्व है। समता दृष्टि में न किसी पर विमोह होता है न निर्ममता। समता न्यायपूर्ण अवस्था है। दुःख अथवा सुख में, विषाद और उल्लास का न होना ही समता है । ऐसी समतामयी अष्टमी तिथि के समान ही महाराजश्री जी भी समभाव की उत्कृष्ट साधिका है। आप जैसी माध्यस्थी, समदृष्टि सम्पन्न, सहज स्वभावी साध्वी का दर्शन असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। मैं लगभग तीस वर्षो से आपके घनिष्ठ सम्पर्क में हूँ। मैंने उन्हें मान-अपमान, निन्दा-प्रशंसा, रोग-नीरोग कटुता-मधुरता में अलिप्त पाया है। ऐसी समत्व योग की साधिका के अवतरण के लिए अष्टमी तिथि एक उत्तम संयोग है।

एक अन्य दृष्टि से विचार करें तो अष्टमी तिथि अर्ध तमिस्रा और अर्धप्रकाश का रूप है। चौबीस तीर्थकरों का अवतरण, धर्म का उद्योत, मोक्ष की ओर उन्मुख चेतनाएँ सुखम- दुखम या दुखम-सुखम के मिश्रित काल में ही प्रादुर्भूत होती है, यह इतिहास सिद्ध तथ्य हैं। इस दृष्टि से अष्टमी तिथि सुख-दुख के सन्धिस्थल में वैराग्य की प्रतीक है। इसी तिथि में हमारी चरित्रनायिका ने जन्म लेकर जीवन में संवेग एवम् वैराग्य की प्रतिस्थापना की।

सबको प्यारी सबसे न्यारी



आपके जन्म से घर-बाहर सर्वत्र हर्ष का वातावरण छा गया। लालाजी के आँगन में मानों लक्ष्मी और सरस्वती का एक साथ अवतरण हुआ। अष्टमी की शुभ तिथि आपके जीवन का अभिन्न अंग बन गई। आपके आकार-प्रकार में भी उसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता था। अष्टमी के चन्द्रमा जैसा ही भाल, कमान सी भौंहें, शुक-सी नासिका, श्यामवर्ण, गम्भीर शान्त निश्छल नयन, सुगठित देह, शालीन चापल्य, मुख पर व्याप्त प्रसन्नता की निर्मलकान्ति को निहार निहार कर सभी प्रसन्न होते थे। कहा है -

" सः जातो येन जातेन, याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनी संसारे, मृतः को वा न जायते॥ "

अर्थात् इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं जन्म लेता और कौन मृत्यु को प्राप्त नहीं होता, जन्म और मृत्यु प्रत्येक प्राणी की होती ही है, परन्तु जन्म उसी का सार्थक हैं, जिसके जन्म से वंश के गौरव में अभिवृद्धि हो, अपने सद्गुण

और सदाचरण के द्वारा कुल, समाज, जाति एवम् धर्म के पक्ष में चार चाँद लगा देने वाली सन्तान का जन्म ही सार्थक है।

" किं तेन जातु जातेन, मातुर्यौवनहारिणा।
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजैर्यथा ॥ "

- उस संतान के उत्पन्न होने से भला लाभ ही क्या है, जो वंशरूपी बांस के डंडे पर झंडे की तरह सबसे ऊँची होकर न लहराये। वस्तुतः श्री कौशल्या जी महाराज के जन्म से कुल पवित्र हो गया, माता कृतार्थ हो गई और जन्मभूमि भी पुण्यमयी हो गई। शुभ आत्मा का अगला-पिछला सारा जीवन शुभ संस्कार लिये ही होता है। जो शुभ संस्कारी होता है वह अपने जीवन से स्वयं का जीवन तो दिव्य बनाता ही है, औरों को भी पारस-संस्पर्श देता है।

आपके जन्म के बाद तीन बहनें और पाँच भाई और भी हुए। पर आपने जिस प्रकार अपने जीवन को दीप्ति-पथ पर अग्रसर किया, वह अपने आप में एक मिसाल है। कहा भी है -

" फूल तो बहुत खिलते हैं, सुगन्ध देता है कोई कोई।
पूजा तो बहुत करते हैं, पूजनीय बनता है कोई कोई। "

यह फूल खिला, खुला, इसमें आत्म-सौन्दर्य के साथ ही आत्म-सुगन्ध भी फैली। चहक, महक और लहक का भला सा सम्मिश्रण आपके रूप में संसार को प्राप्त हुआ। आपकी छटा अपूर्व थी, तो अन्तर सौन्दर्य भी अप्रतिम था। लाला खैरातीलाल जी के विशाल वंशवृक्ष को आपने सबसे उन्नत और उन्नत किया।

सुसंस्कारी माता पिता की सन्तान होने के कारण संस्कार तो आपको विरासत में मिले ही थे, तथापि जैसा कि महाकवि मिल्टन ने कहा है -

"शिशु की क्रीड़ाएँ उसके भावी जीवन की संकेत होती है।" इस कथन के अनुसार बाल्यकाल से ही आपमें एक होनहार बालिका के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे। माता-पिता की आज्ञा-पालन करना, बाल सुलभ उद्दण्डता या हठवादिता का अभाव। किसी से भी बात-बेबात उलझने या खटपट न करने का स्वभाव, शिकवा शिकायत से दूर रहना; आदि बातें आपको सामान्य बालकों की श्रेणी से

मनुष्य का वातावरण ही उसके संस्कारों का निर्माता है।

पृथक् रखे हुए थीं। आपको तो प्रिय था एकान्तवास। नम्रता, मितभाषिता, गाम्भीर्यता, सौजन्यता आदि से आप आरम्भ से ही अलंकृत थीं, तथापि शुक्लपक्ष के चन्द्रमा समान ज्यों-ज्यों आप वृद्धि प्राप्त करने लगीं, त्यों-त्यों आपकी वाणी में मधुरता एवम् विचार प्रवणता का अधिकाधिक सौष्ठव दिखाई देने लगा।

क्षण-क्षण के कलापों में विवेक झलकने लगा। संभाषण और सीमित बोल आपकी विशिष्टता थी, सत्कर्म के प्रति अभिरूचि थी और ज्ञान के प्रति अपूर्व जिज्ञासा। साधु-साध्वियों के सत्संग में आप सदा-सर्वदा निरत रहतीं। इन वृतियों से आपके सुखद, सुन्दर भविष्य की झलक सहज ही मिल जाती थी। जो आपको देखता, वही आपकी दिव्यता से संपृक्त होता । आपके प्रति एक पूज्य भाव ही उपजता। कभी भी कोई अन्य भाव आपके प्रति अनुभव ही नही करता। प्रत्येक को यही लगता कि यह बाला साधारण कोटि की नही है, इसमें उत्तमता का निवास है। एक श्रद्धास्पद पावन आकर्षण आपमें प्रारम्भ से ही विद्यमान था।

माता-पिता अपनी लाडली कन्या की सौम्य मुखमुद्रा और शान्त स्वभाव को देख निहाल हो जाते। आपके सद्गुण एवम् सुसंस्कारी कार्य देख कर वे सुखद भविष्य की कल्पना में जुट जाते। उन्हें यह आभास होता कि यह कन्या कुल के गौरव में अपार अभिवृद्धि करेगी। महासती जी का जीवन इस प्रकार की विशिष्टताओं से परिपूर्ण विशेष संकेत देता रहता था। उनका बाल्य जीवन आत्म साधनामय जीवन का पूर्ण संकेत था।

नीव पुख्ता हो तो इमारत दृढ़ होती है। जो श्रेष्ठता आपकी बचपन में थी, वही निरन्तर और अधिक निखरती चली गई। परिणाम यह है, कि आज आपके दर्शन मात्र से मन में पावनता की अनुभूति होती है। आपका स्वल्प सा सान्निध्य जीवन की दिशा को ऊर्ध्वगामी बना देता है।

भवान्तर के बीज

पाँच वर्ष की अल्प अवस्था में ही महाराजश्री के निर्मल मनमानस में वैराग्य भावना का सागर हिलोरें लेने लगा था। शैशवकाल में जब आप यदा कदा अपनी

जो अन्तरंग से मुक्त है, प्रकृति उसे बांध नही सकती।

भुआ से कहती-

"भुआ !हम दोनों ही दीक्षा लेंगे, तुम मेरी गुरुणी बनना। मैं तुम्हारी शिष्या बनूँगी। हम स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाएँ करेंगे।" तो भुआ अपनी भाभी तारादेवी जी से कहती-

"देखो अपनी "छल्लो" (प्यार का नाम) अभी से त्याग वैराग्य की बातें करती है। इसकी बातों से यही लगता है कि यह अवश्य ही साध्वी बनेगी। कहा भी है न -

" पूत के पाँव पालने
बहू के पाँव बारणे। "

यह सुनकर माता उल्लास से भर जाती। आँखों में अश्रु तिर आते। उन अश्रुओं में हर्ष भी होता और अज्ञात भय भी। बिटिया के गौरवमय जीवन से खुशी होती तो उत्कृष्ट साधनामय जीवन का विचार कर पीड़ा भी। उनके मन का आवेग यूँ व्यक्त होता -

"क्या कमी है तुझे घर में, जो दीक्षा की बात कहती है ? जानती है, दीक्षा के बाद चमकीली चीजें नही मिलती। नंगे पैरों पैदल चलना पड़ता है, बालों को हाथों से नोचना पड़ता है, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी सब सहना पड़ता है।"

परन्तु आपको यह सुनकर कभी भय या आश्चर्य नही होता। ऐसा लगता मानो ये सब बातें आपके लिए सहज हों, पूर्वाचरित हों। क्योंकि पूर्वजन्म में साधना पथ पर अग्रसर हुई आत्मा के वैराग्यपूर्ण संस्कार वर्तमान जीवन में पुनः प्रादुर्भूत होकर उसे विरक्ति की ओर प्रेरित करते हैं। भगवद्गीता में कहा भी है -

" शुचिना श्रीमतां गेहे, योगभ्रष्टोऽभिजायते।
अथवा योगिनामेव, कुले भवति धीमताम्॥
एतद्धि दुर्लभतरं लोके, जन्म यदीदृशम्।
तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम्॥
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ! "

अर्थात् - पिछले जन्म में योगमार्ग पर चलते-चलते किन्हीं विशेष प्रवृतियों के कारण योगभ्रष्ट होकर फिर सांसारिक जीवन बिताने के लिए श्रीमंतों एवम्

कान दो और मुख एक इसलिये है, कि अधिक सुनो और कम बोलो -

धर्मात्मा गृहों में जन्म लेते है, व वहाँ पर अपने विगत जन्म के योगसाधन के संस्कारों को पुनः प्राप्त कर उसी साधना पथ के पथिक बन जाते है।

वस्तुतः जिसके जन्म-जन्मांतरों के दृढ़ संस्कार न हो, वह कभी इस जन्म में ऐसा विरक्त और उदासीन नहीं बन सकता, यह निश्चित है। जन्म-जन्मांतरों की यह विशिष्टता तीर्थकरों के जीवन में तथा अन्य श्लाका पुरुषों के जीवन में देखी जा सकती है। संस्कारों में आया हुआ एक बिन्दु मात्र का भाव, भवान्तर में बृहद् रूप ले लेता है। पूज्या महासती श्री कौशल्या म० भी पूर्व जन्म की योगिनी है, यह उनके बचपन के क्रिया-कलापों से स्पष्ट होने लगा था, आज यह अवधारणा पुष्ट ही हो चुकी है।

जीवन ज्योति जलती रही

जीवन आशा-निराशाओं का झूलना ही है। कभी-कभी इसमें ऐसे भी प्रसंग आ जाते हैं, कि जीवन के प्रति आशाएँ छूट जाती है, पर विशेष पुण्य संयोग से आशा की डोर पुनः जुड़ जाती है, और आई विपत्ति टल जाती है। ऐसा ही एक संयोग आपके भी जीवन में आया-

सावन महीने में जब प्रकृति की छटा सुहावनी होती है, रविवार को लाहौर निवासी रावी के किनारे मन बहलाव के लिये जाया करते थे। ऐसे ही एक रविवार को आप अपनी ज्येष्ठ भगिनी सुमित्रा, भुवा की लड़की शीला, भाई अम्बा व उसकी आया तथा नौकर चन्दू के साथ सूर्योदय से पूर्व ही चल पड़े। सड़क पार करने के समय उधर से तेजी से आता फिट-फिट अपना सन्तुलन नहीं रख पाया। आप चपेट में आ गयीं और उसके साथ बहुत दूर तक घिसटती हुई चली गयी। उस समय आप मात्र 5 वर्ष की नन्हीं बालिका थीं।

इस हादसें में आपकी दाहिनी भुजा पूरी तरह से कट गई, वेदना की तीव्रता से आप मूर्च्छित हो गई। वे क्षण मृत्यु की कगार तक आपको ले गए। आपसे पूर्व दो भाई व एक बहन मृत्यु की शरण में जा चुके थे इसलिए आपके जीवन के प्रति भी संशय होना स्वाभाविक था। सबने जीने की आशा छोड़ दी थी। लेकिन जिसे मुक्तिपथ का अमर राही बनना हो, वह असमय में मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। उसे

मौत से कोई बच नही सकता, पर अमरत्व को कोई भी प्राप्त कर सकता है।

जीने के सारे संयोग स्वतः प्राप्त हो जाते है। नोकर चन्दू तत्काल पास के अस्पताल में आपको लेकर गया। डॉक्टर ने स्थिति की गम्भीरता देखकर शीघ्र ही बड़े अस्पताल ले जाने की सलाह दी। चतुर चन्दू बिना किसी विलम्ब के आपको बड़े अस्पताल ले गया। वहाँ डाक्टरों ने आपका अविलम्ब ऑपरेशन किया। तब तक घरवालों को कोई सूचना नहीं थी। जब ऑपरेशन सफलता के साथ सम्पन्न हो गया तब घर पर सूचना भेजी गयी, परिवारीजन दौड़े-दौड़े अस्पताल पहुँचे, उस समय आप अचेतावस्था में पड़ी थीं। कई घण्टों के बाद आपको होश आया। तब सबकी साँस में साँस आई। कई दिनों तक पट्टा बंधा रहा, शनैः शनैः उपचार के बाद आप पूर्णतया स्वस्थ हो गई। इस प्रकार एक बहुत बड़ी घात आपकी जीवन ज्योति को नष्ट करने के लिए आई, परन्तु आपका स्पर्श करके ही चली गई। कहा भी है - " रक्षंति पुण्यानि पुरा कृतानि" - इन्सान की रक्षा उसके पूर्वकृत पुण्य के उदय से होती है।" आपकी जीवन-रक्षा आपश्री की आयुष्य कर्म की प्रबलता के कारण तो हुई ही थी, साथ ही अनेक मुमुक्षु आत्माओं के पुण्य का सुपरिणाम भी थी।

कौशल्या जी की किशोर अवस्था

बचपन से ही आप तीव्र मेधावी थीं। किसी भी चीज को एक बार पढ़ या सुन लेती तो उसे मस्तिष्क में ज्यों का त्यों सँजोकर रख लेती थीं। तीव्र मेधा-शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति जिस कार्य में हाथ डालता है, उसमें उसकी एकाग्रता सध जाती है। शिक्षा के प्रति प्रारम्भ से ही आपके मन में आदर का भाव था। केवल पठन-पाठन ही नहीं वरन् प्रत्येक गृहकार्य को भी आप पूरी कुशलता से करतीं। विशाल परिवार जिसमें पिता श्री खैरातीलाल जी थे, उनके अनुज के० डी० रामलाल जी, उनकी चार भगिनी, माता तारा देवी व चाची श्रीमती कमला जी तथा ज्येष्ठ भगिनी सुमित्रा आदि के होने से काम करने का अवसर ही नहीं मिलता था, छोटे - मोटे कामों के लिए घर में नौकर-चाकर थे। फिर भी आप हर किसी का हाथ बँटाते-बँटाते अपनी कुशलता व्यक्त कर ही देतीं।

प्रवचनों में आप अक्सर जाया करतीं। जो ज्ञान वहाँ से मिलता उसे अपने

अगर सर्वगुणसम्पन्न बनना चाहते हो तो सर्व से गुण लो।

तक ही सीमित नहीं रखतीं, वरन् अपनी प्राप्ति को विस्तार देने की ललक से प्रवचन में सुनी हुई कहानियाँ, दृष्टांत आदि अपने से छोटे भाई-बहनों को बड़े चाव से सुनाती। आपके मन में यह भावना था कि सब सुसंस्कारी हों। सब की धर्म जिज्ञासा बढ़ें। एक किशोरी बालिका में ऐसे विचारों का होना यह स्पष्ट करता था, कि मोक्षार्थी आत्माएँ जीवन के हर मोड़ पर अपनी ओर से आलोक फैलाने में ही प्रयत्नशील रहती हैं। वे अपने कार्यों द्वारा, परस्पर व्यवहारों के द्वारा अपनी ओर से निरन्तर यही प्रयास करती हैं कि कोई भी जीवन की उच्चता पाने से वंचित नहीं रहे। ऐसी पृष्ठभूमि में पली महासती कौशल्या जी का वही चिन्तन आज भी जन-जन को उत्प्रेरित कर रहा है।

प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व भीड़ में भी एक अलग चेहरा लिये होता है। विशाल परिवार में आपश्री का चेहरा एक अलग ही ज्योति से सम्पन्न नजर आता। आप एक महायोगिनी के समान हरपल उत्कृष्ट रूप में ही परिलक्षित होती, अतः सभी छोटे भाई-बहन आपको श्रद्धा व आदर की दृष्टि से देखते, आपको अपना आदर्श मानते। हमउम्र भाई-बहनों में यद्यपि बराबरी का व्यवहार होता है, छोटी-छोटी बातों को लेकर तू-तू, मैं-मैं हो जाया करती है, झगड़े-टंटे भी होते है। परन्तु आपकी त्यागवृति, बड़प्पन एवम् सद्भावनापूर्ण व्यवहार ने परिवार के वातावरण को इतना सुमधुर और आदरपूर्ण बनाया, कि घर के बुजुर्गों को कभी किसी भी बच्चे को डांटने, फटकारने की नौबत न आती।

आप सबकी गार्जियन थी। सबके सुख-दुख का पूरा ख्याल रखतीं। प्रत्येक की उलझनें पलों में सुलझातीं। यहाँ तक कि छोटे भाई-बहनों को अपने ही हाथों से वस्त्र सीकर पहनाया करतीं। वे बड़ी श्रद्धा से उन वस्त्रों को पहनते। जैसे भी वस्त्र आप सीती वे पहन लेते थे। कभी किसी ने कोई शिकायत नहीं की। महासती जी कई बार कहती हैं, कि मुझे वस्त्र सीना, काटना मेरे अनुजों ने ही सिखाया।

आपकी स्कूली शिक्षा सीमित रही, स्कूल में आपने विशेष अध्ययन नहीं किया। प्रारम्भिक कक्षाओं में अध्यापिकाओं के मधुर स्वभाव के कारण उनके द्वारा पढ़ाया गया पाठ सीधा हृदय को छूता था। आप उनकी मिठास भरी वाणी को श्रवण कर उल्लास से अध्ययन करतीं और परिणामस्वरूप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होंती। परन्तु

तार द्वारा बिजली शहर तक पहुँचती है,
महापुरुषों द्वारा ज्ञान जनता तक पहुँचता है।

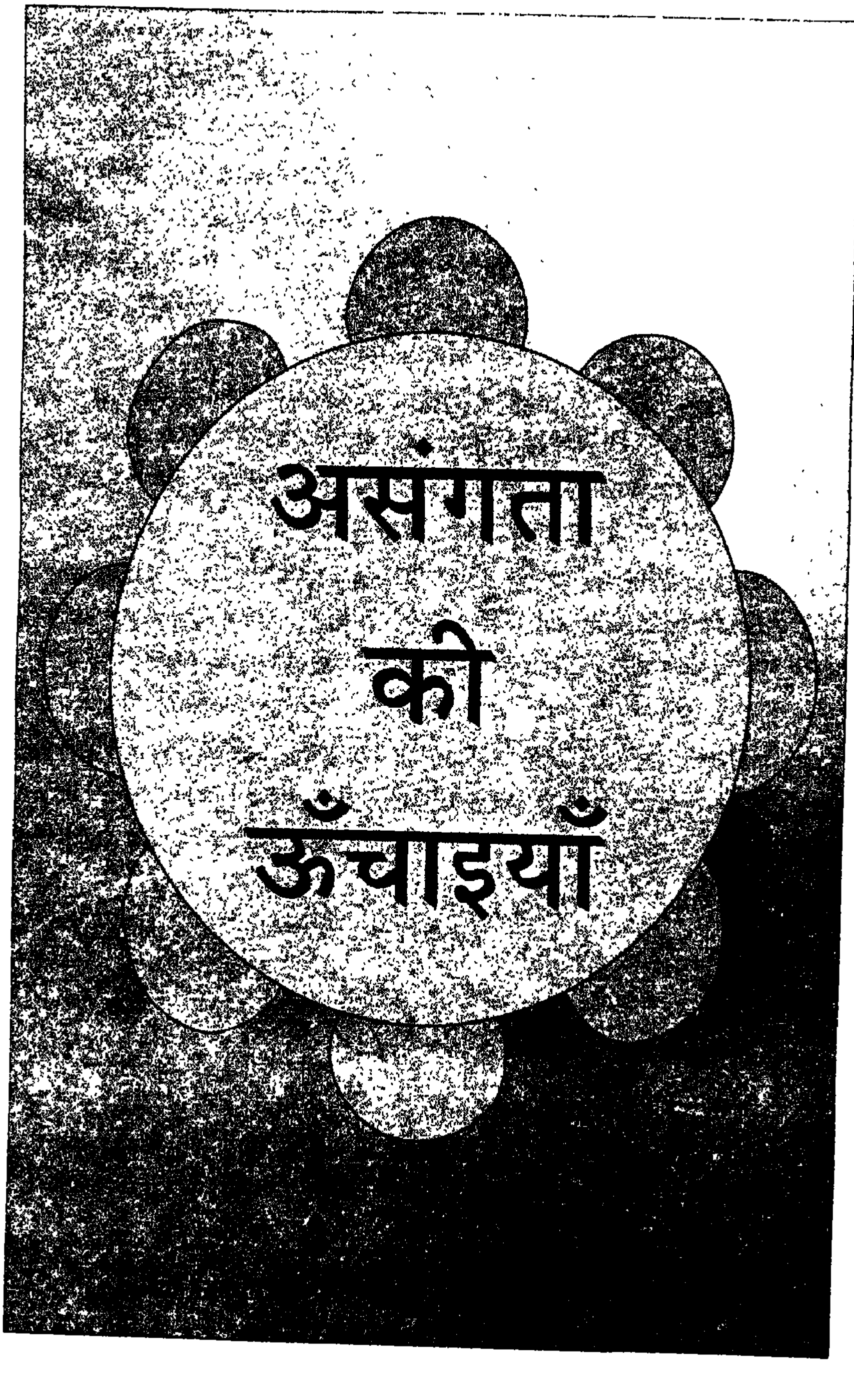
जब आप प्राईमरी कक्षा में आगे बढ़ी, तो मिठास भरी वाणी पीछे छूट गई। जो अध्यापिका गणित पढ़ाती थी, वह अत्यन्त ही कर्कश स्वभाव की थी। उसकी वाणी से आग के बबुले उठते। वह बात-बात पर डाँटती, डपटती, कभी-कभी गाली गलौच पर भी उतर आती। महासती जी का संभ्रान्त मन इन सबका आदी न था। आपके मन में उस अध्यापिका और उसी के माध्यम से गणित में तीव्र अरूचि पैदा हो गई। इस कारण अध्ययन में मन नहीं लगा। गणित में अरुचि और उससे प्राप्त असफलता का विचार कर आपने स्कूल जाना ही छोड़ दिया।

यह प्रसंग दर्शाता है कि एक शिक्षक का विद्यार्थियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार होना चाहिए। जिसका काम अध्यापन के माध्यम से ज्ञान का घर भरना ही नहीं वरन् संस्कारों का निर्माण करना भी है, वही यदि नैतिक दृष्टि से गिरा हुआ हो तो बहुधा स्थिति बिगड़ जाती है।

इस प्रकार आपकी स्कूली शिक्षा 'ना' के बराबर रही, मगर आपके मन में कभी न बुझने वाली ज्ञान ज्योति प्रज्ज्वलित थी, अतः आपने कला-केन्द्र का रुख किया और अपनी बुद्धि, प्रतिभा तथा लगन को गृहकलाएँ-कढ़ाई, बुनाई, गोटा, किनारी आदि सीखने में लगा दिया, और उनमें निष्णात हो गई।

आपके कला-कौशल ने उन क्षेत्रों में भी अनेकों को प्रभावित किया। सब उसकी सराहना करते । आपने उन कलाओं में अभिरुचि पैदा कर सन्तोष अनुभव किया। आपकी वही प्रतिभा आगे चलकर एक महासती के रूप में और भी अधिक निखरी।

सुख को गुणाकार और दुःख को भागाकार करने
की शक्ति एकमात्र धर्म में है।


असंगता
की
ऊँचाइयाँ

असंगता की ऊँचाइयाँ

टूटा बन्धन-मुक्त मन

उज्जवल आत्माएँ किसी संकुचित सीमा में बंधकर नहीं रह सकतीं। प्रकाश की किरण को यदि जरा-सा भी छिद्र मिल जाए, तो वह किरण, धारा बनकर बाहर आ जाती है। जिसका कार्य अनेकानेक भव्य जीवों को आलोक की सौगात देना निर्धारित हो, भला वह एक सीमित परिधि में निबद्ध होकर कैसे रहे ?

जैसे घृतकुम्भ की चिकनाई बाहर प्रकट हुए बिना नहीं रहती, उसी प्रकार अन्तर की गहराईयों में छुपे हुए भाव भी जीवन व्यवहार में आए बिना नहीं रहते। संसार के प्रति उदासीनता और वैराग्य की ओर उन्मुखता के भाव जो आपमें स्थित थे, वे परिजनों से, विशेषकर माता-पिता से छुपे हुए न रहे।

पिता अपनी सुकोमल पुत्री को वैराग्य के कंटकाकीर्ण मार्ग से बचाये रखना चाहते थे। यद्यपि पिताश्री की धर्मनिष्ठा प्रगाढ़ थी, वे एक सुश्रावक थे, सन्त जनों के प्रति उनमें श्रद्धाभाव था, मगर जब वे अपनी लाडली पुत्री की ओर देखते तो उनकी कल्पनाएँ उसके सुखद गृहस्थ जीवन की ओर ही उभरने लगती। पुत्री की धर्मनिष्ठा, सादगी, सरलता उनको आशंकित करने लगती।

माता-पिता की सोच में इस तरह के भाव उभरने का एक बड़ा कारण यह भी था कि उन्हें यह कन्या रत्न बड़ी दुर्लभता से प्राप्त हुआ था। इससे पूर्व तीन संतानें मृत्यु को वरण कर चुकी थीं। आप भी मृत्यु की कगार से लौटकर आई थीं। फिर आपके उपरान्त जो पाँच सन्तानें हुई वे सभी पुत्र रूप में थीं। इसके अतिरिक्त आपने अपने विनम्र और मधुर स्वभाव से घर के सभी सदस्यों की प्रियता प्राप्त की

थी और सभी आपके प्रति कई आशाएँ लेकर बैठे थे। कोई भी सम्भवतः यह नही चाहता था, कि उनकी प्रिय कौशल्या वैराग्य पथ पर चलकर उनकी स्नेह परिधि को रिक्त कर दे।

ऐसे अवसर पर परिजन एक सबसे बड़ा हथियार इस्तेमाल करते हैं कि वे उसे परिणय के प्रगाढ़ बन्धन में बांध दें। इसी भावना के वशीभूत आपके माता-पिता ने एक संभ्रान्त परिवार के सुन्दर, सुशील लड़के के साथ आपकी सगाई कर दी। अबोध बालिका इस बंधन को समझ नहीं पा रही थी। समझ पाई भी तो स्वीकार नहीं कर पा रही थी। उसे इस प्रकार के किसी भी बंधन के प्रति जरा भी ललक न थी, भावना न थी।

वह बालिका तो साधु-साध्वियों की सन्निकटता में ही अपने को कृतार्थ मानती, वे ही उसके सखा, मार्गदर्शक तथा जीवन उन्नायक थे। संसार में यद्यपि वह स्थित थी पर सांसारिकता उसे जैसे रास नहीं आ रही थी। उसे लगता था, कि यह मानव तन कुछ विशेष प्रयोजन के लिए है। उस प्रयोजन को सिद्ध करना ही मेरा प्रथम दायित्व है।

मनुष्य के मन की भावनाओं का असर वातावरण में फैलता है, लड़के वालों ने देखा, कि जिसके साथ हमने शादी का निश्चय किया है, वह तो विराग की प्रतिमा है। संसारस्थ जीव रागी होना चाहिए तभी वह गृहस्थ जीवन को सुखमय बना सकता है। वैरागी और संसारी तो विपरीत दिशायें हैं, 36 के अंक के समान दोनों के लक्ष्य पृथक्-पृथक् हैं। ऐसा बेमेल संबंध किस काम का ? फिर संसार में तो शादी संबंध चमड़ी को देखकर भी किये जाते है। आपका वर्ण श्याम था, जिसने लड़के वालों को और विमुख कर दिया। नतीजा यह निकला कि लड़के वालों ने स्वयं इस संबंध को अस्वीकार कर दिया। इस तरह आप सहज ही एक रेशमी बंधन से मुक्त हो गई। न कुछ कहने की जरूरत पड़ी न सुनने की।

धर्म का अंकुर अन्तर्मन में

धर्म का जो बीज आपके अंतरंग में स्थित था, उसे अंकुरित होने का प्रथम अवसर तब आया जब महासती ईश्वरादेवी जी लाहौर में पधारीं। उनकी नैश्राय में आपने प्रथम बार देव, गुरु और धर्म के स्वरूप को समझा। आपको लगा कि वास्तव में यही जीवन का सच्चा मार्ग है।

आत्मा का पूर्ण विकास जिससे हो वही धर्म है। - गणेश वर्णी जी

महासती ईश्वरादेवी जी ने धर्म की विशद व्याख्या की। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व, सुदेव और कुदेव, वीतरागी और रागी का जो वर्णन किया, भाषा की सरलता और अपनत्व भरी समझाईश दी, उससे जड़-चेतन, मैं और मेरा इन सभी की पृथकता और गहराई, दूध-पानी की तरह प्रकट होने लगी। आपके हृदय की उर्वरा भूमि में सम्यक्-दर्शन का बीज उसी प्रकार अंकुरित होने लगा जैसे गुफा के मध्य माधवी लता।

लाहौर में साधु-साध्वियों का आना प्रायः होता रहता था। विशाल जैन संघ और उसमें भी शास्त्रवेत्ता श्रावकों की अवस्थिति अनायास ही साधु वर्ग को आकर्षित करने में सक्षम थी। अतः जब महासती मथुरादेवीजी म०सा० की सुशिष्या महासती श्री सुंदरीजी पधारीं तो उनसे आपने सामायिक व प्रतिक्रमण का ज्ञान किया।प्रतिक्रमण सीखते समय आपने यह महसूस किया कि यह तो आत्मशुद्धि एवं आत्मालोचन का दीवट है। उस दीवट के दिव्य प्रकाश में बहिर्मुखी वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाया जा सकता है। इस प्रकार अन्तर्यात्रा प्रारंभ हुई तो आत्मगुण उभरने लगे, एक ओर विनय पापभीरूता एवं नम्रता में वृद्धि हुई तो दूसरी ओर सावद्य प्रवृत्तियों में न्यूनता आने लगी।

गुरु बिन कौन बतावे बाट

मन कितना ही दीप्त हो जाए, भावना कितनी ही चरम सीमा पर पहुँच जाए, पर गुरु के बिना उन्हें कौन स्थायित्व दे सकता है ? आपको महसूस हो रहा था कि इसके लिए एक साधना संपन्न व्यक्तित्व का सान्निध्य आवश्यक है, जिसका सतत संस्पर्श वैराग्य के बिरवे को स्नेहपूर्ण सहलाहट दे सके और जीवन को एक कल्याणकारी वृटवृक्ष का आकार प्रदान कर सके, वह जिसे हम "गुरु" की संज्ञा से विभूषित कर सकें। अनुभवी का कथन है कि -

"आत्मा की खोज करने के लिए, मोह माया की फोज को परे करने के लिए कर्मो का बोझ उतारने के लिए ज्ञान की हौज में डुबकी लगाने के लिए मुक्ति की मौज पाने के लिए 'गुरु' का सतत सान्निध्य अत्यावश्यक है"।

सच्चे गुरु की सच्ची भक्ति करनी चाहिये।

आप भी अपने जीवन को सर्वात्मना समर्पण करने हेतु गुरु की तलाश में थे। संयोग से उसी समय दिव्यविभूति स्वनामधन्या, परम श्रद्धेया पूज्या महासती श्री मोहन देवीजी म०, श्री केसरदेवीजी म० आदि साध्वी वृन्द चातुर्मासार्थ लाहौर पधारीं। वे क्या आई, आपको अपनी वैराग्य की रसवाहिनी वाग्धारा में बहाकर ले गई। आपकी उत्कट भावनाओं को जैसे एक आयाम मिल गया, बीज को पल्लवित और पुष्पित होने का अवसर मिल गया।

महासती श्री केसरदेवीजी से साहस व शक्ति की सम्प्राप्ति



महासती श्री केसरदेवीजी म० के पावन सान्निध्य में आपके मन में संयम के प्रति गहरी अभिरूचि ही जागृत नहीं हुई वरन् निर्भयता व आत्म विश्वास भी उत्पन्न हुआ कि मैं भी संयम मार्ग को अपना सकती हूँ, मैं भी महासती केसरदेवीजी के समान योग्यता और क्षमता को अर्जित कर सकती हूँ। जब इतनी सुन्दर, सुडौल, स्वस्थ कन्या को इनके माता-पिता ने वैराग्य पथ पर अग्रसर होने की अनुमति दे दी, तो क्या मेरे माता-पिता मेरी उत्कट भावना को अनुकूलता प्रदान नहीं करेंगे ? मैं भी अपने माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करूँगी।

मन में जागे इस आत्म-विश्वास ने साहस में भी अभिवृद्धि की। पूर्व में जिस संदर्भ में एक शब्द भी बोले जाने का साहस नहीं था, आज लगता था अवसर आये तो उस पर धारा प्रवाह बोल सकती हूँ। उत्तमोत्तम धर्म पथ की सारी सुविधाओं को आपने जाना था और जो कमी रह गई थी वह भी अब महासतियों के आने से संपूर्ण हो रही थी। विश्वास ने निश्चय का रास्ता खोज लिया। महासती जी के सान्निध्य में आपने दृढ़ निश्चय कर लिया कि, मैं अपने पुरुषार्थ को जगाकर वैराग्य पथ की पथिक बनूंगी, अब मैं संसार चक्र में नहीं उलझूंगी। जिनके दर्शन मात्र से मेरे मन में निर्भयता, दृढ़ता का संचार हुआ है, उन्हीं के पावन सान्निध्य में रहकर मुक्ति पथ का वरण करूंगी।

योग्य ही योग्य को चुनता है।

निर्झर फूट पड़ा



ये विचार जब चरमावस्था पर पहुँच गये तो एक बार परम श्रद्धेया महासती श्री मोहनदेवीजी म० के चरणों में आपने अपनी तीव्र अभिलाषा को अभिव्यक्त कर दिया। एक लम्बे समय से रुके पानी को जब राह मिलती है तो उसके प्रवाह में विशेष ध्वनि होती है और गति में तेजी आ जाती है। कौशल्या जी ने जब अपने मन की बात कह दी तो उन्हे लगा कि एक बहुत बड़ा बोझ सर से उतर गया है।

पर यह बोझ से मुक्ति नहीं थी। बोझ का हस्तांतरण था। महासती श्री मोहनदेवीजी आपकी संयमनिष्ठा एवं तीव्र वैराग्योत्पादक वचनों को सुनकर हर्षित हुई पर एक विचार उनको आंदोलित कर उठा। वे यह जानती थीं कि आपके पिता श्री खैरातीलाल जी रौबदार व्यक्तित्व के धनी हैं, उनका स्वभाव तेज है। उनसे दीक्षा की आज्ञा माँगना और आज्ञा मिल जाना टेढ़ी खीर है।

आपसे पूर्व आपकी भुआजी के अंतर में कई वर्षो से वैराग्य की लता पनप रही थी। अतः एक बार उन्होंने भाई को प्रसन्न मुद्रा में देखा तो दीक्षा की भावना प्रकट कर दी। किन्तु मिनटों में ही पास पलट गया। भाई ने ऐसी डाँट पिलाई और ऐसे बंधन लगाए कि बेचारी दीक्षा लेना तो दूर, दुबारा मुँह भी नहीं खोल सकी। चुपचाप शादी के बंधन में बंध गई।

भुआजी वाला यह प्रसंग महासती मोहनदेवीजी म० से छुपा हुआ नहीं था। अतः आपके समक्ष भी जब यह उदाहरण दिया गया तो आपने म० श्री से निवेदन किया कि "म० श्री! मैं तो वैराग्य के पथ का ही एक प्रकार से वरण कर चुकी हूँ। जैसे मीरा के हृदय में कृष्ण स्थापित हुए थे, उसी प्रकार संयम ही मेरा आश्रय है, मैं इस मार्ग से डिगने वाली नहीं हूँ। मेरा मन-मेरू वैराग्य की पावन धरा से कभी भी उखड़ नहीं सकता, यह मेरा अटूट विश्वास है।"

महासती मोहनदेवीजी बालिका की इन बातों से चमत्कृत हुई। सोचने लगीं, कि ऐसे उद्‌गार साधारण वृत्ति की बालिका के नहीं हो सकते, अवश्य ही यह कोई दिव्य आत्मा है। इस कथन के पीछे इसकी प्रबल आत्मशक्ति है। गद्‌गद् हृदय से महासती जी ने कहा -"कौशल्ये! तेरा वैराग्य शत प्रतिशत मजबूत है, तेरे विरक्त

प्रेम श्रेय के लिए होना चाहिये । - भ०ऋषभ देव

मन को देखकर मुझे अपार प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है, तथापि उसे प्रकट करने का यह उचित अवसर नहीं है, क्योंकि चातुर्मास के प्रारंभ में ही यदि दीक्षा की बात छेड़ दी तो जिन स्थितियों का सामना करना पड़ेगा वह अनेक उलझनें पैदा कर देगा। तेरे अध्ययन में भी अन्तराय आ जाएगी। इसलिए जब तक चातुर्मास संपूर्ण नहीं हो जाता तब तक इस संबंध में मौन रहना ही श्रेयस्कर है।"

गुरुणी जी की बात आपको उचित प्रतीत हुई। किसी करारे आघात को झेलने की स्थिति अभी नहीं बनानी थी। अतः आपने भी नवीन ज्ञानार्जन को ही अपना अध्यवसाय बनाया और महासती केसरदेवीजी से शास्त्रों की चाबी रूप स्तोक ज्ञान लेना प्रारंभ कर दिया।

गुरुणीजी का विहार

चातुर्मास के उपरान्त दो मास तक अस्वस्थता के कारण महासती मोहनदेवीजी म० का लाहौर में ही स्थिरवास रहा। माघ मास में साध्वीवृन्द ने विहार की तैयारियाँ कर ली। आपकी भावना भी साथ में जाने की थी परन्तु आज्ञा की सीमा-बंधन में बंधी आप नहीं जा सकीं। महासती जी के विहार के उपरान्त आपका मानस उखड़ा-उखड़ा रहने लगा। जैसे कोई रुग्णता शरीर में प्रवेश कर गयी हो। आत्मिक वियोग ने आपको क्षीण कर दिया था। म० श्री का विहार हुए एक दो मास व्यतीत हो गए थे। अंततः आपने यह सोचा कि जब मेरा निश्चय दृढ़ है, तो माता-पिता से आज्ञा लेनी ही पड़ेगी। बिना कहे उन्हें कैसे पता लगेगा, कि मैं महासतीजी के पास रहकर ज्ञानाभ्यास करना चाहती हूँ।

परन्तु कैसे कहें, कब कहें और कहने का प्रभाव क्या पड़ेगा आदि विचारों में वे डूबती-उतराती रहीं। चप्पू चलाने पर भी किनारा दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। अतः आप खोई-खोई सी रहने लगी।

माँ से अनुनय

अपनी संतान की एक-एक क्रिया पर माँ की दृष्टि रहती है। माँ ही सबसे अधिक उसकी पीड़ा समझ सकती है। माँ कभी नहीं चाहेगी कि उसकी संतान एक

क्षण के लिए भी पीड़ा के दौर से गुजरे। संतान की एक आह उसे पूरी तरह आंदोलित कर देती है।

माँ तारादेवी ने जब कौशल्या के चेहरे पर उदासी का आवरण देखा तो बड़े स्नेह दुलार भरे शब्दों में पूछा-

"बेटी ! कुछ दिनों से देख रही हूँ, तू इस संसार में रहकर भी कहीं और रहती है । जैसे तेरे मन में कोई बहुत तूफान मच रहा है। तू कहती नहीं है पर तेरा चेहरा सारी बात प्रकट कर रहा है। अपनी माँ से क्या छुपाना ?"

माँ के इन शब्दों ने कौशल्या के मन में घुमड़ रहे बादलों को बरसने के लिए विवश कर दिया। वेगवती बौछारों के रूप में उसका अंतर माँ के आगे खुल पड़ा-**"माँ ! मुझे संसार के इन सारे क्रिया-कलापों में रस नहीं आ रहा हैं। मेरा मन महासतियों के पास रहने के लिए बेचैन हो रहा है। मुझे संयमी जीवन अभीष्ट है, अतः मुझे महासतीजी के पास रहने की आज्ञा प्रदान करो।"**

पुत्री के उस धारा प्रवाह कथन से माँ तारादेवी कुछ घबरा सी गयी। फिर भी स्वयं को संयत करती हुई बोली -

"बेटी ! यह जरूरी नहीं है कि आत्म-कल्याण केवल दीक्षा लेकर ही किया जा सकता है। गृहस्थी में रहकर भी तूं धर्म-ध्यान कर सकती है। उसके लिए तुझे कोई रोकने वाला नहीं हैं।"

कौशल्या ने कहा -**"माँ मेरा जो अभीष्ट है वह सिर्फ दीक्षा लेकर ही प्राप्त किया जा सकता है। मेरा मन महाराज श्री के चरणो में ही रम रहा है, वहीं मेरे मन को स्थायी आनंद मिलेगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।"**

माँ ने जब बेटी के निश्चय की दृढ़ता देखी तो वह मन ही मन काँप उठीं पैंतरा बदल कर बोली - **" वे साध्वी हैं या कोई जादूगरनी ? मेरी विनीत और आज्ञाकारिणी बिटिया पर यह कैसा जादू कर दिया है।"**

कौशल्या ने माँ को थोड़े क्षिप्र शब्दों मे कहा -**"माँ मेरा निर्णय मेरा अपना है। महासतियों को दोष देना ठीक नहीं है। वे मेरी प्रेरणा है। मेरे दीक्षा लेने अथवा**

जिसकी अन्तरंग मोह ग्रंथि छूट गई वह परमात्मा है।

न लेने से उनको कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। मेरी दीक्षा से जो भी लाभ होगा, वह तो मुझे ही होंगा। तुम अगर कुछ कहना चाहती हो तो मुझे ही कहो, मुझे ही दोष दो, महासतियों को कुछ न कहो।"

माँ के स्वरों मे शिथिलता आई -"देख छल्लो ! तू तो जानती है हमारे परिवार में तेरे पिता की मर्जी के बगैर एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। अतः कोई भी ऐसा विचार मत बना कि जिससे परिवार में बवाल मच जाए। तू अच्छी तरह जानती है कि परिवार में किसी को, खासकर तेरे पिताजी को संयम की बातें नही सुहाती हैं, वे तुझे किसी भी हालत में आज्ञा प्रदान करें, यह असंभव लगता है।"

कौशल्या दृढ़ स्वर में बोली - " माँ ! मेरे निश्चिय की अडिगता को देख पिताजी को भी आज्ञा देनी ही पड़ेगी।"

माँ ने जैसे हथियार टेक दिये -"ठीक है, तू प्रयत्न कर पिताजी से आज्ञा लेने का, यदि वे आज्ञा दे देते हैं तो मैं उसमें बाधक नहीं बनूंगी।"

माँ से इतनी चर्चा होने के बाद कौशल्या को लगा कि उसने एक मोर्चा तो जीत लिया है। माँ को विश्वास में लेकर उसे लगने लगा कि वक्त पड़ने पर वे उसका पक्ष ले सकती है और वह यह विचार करने लगी कि ऐसा समय कब आएगा जब वह पिताजी को अपनी भावना कह सकेगी। और दीक्षा ग्रहण कर अपना कल्याण कर सकेगी।

पिता से प्रार्थना

कौशल्या नित्य प्रति अपने मन को बल देने का प्रयास कर रही थी। जैसे कोई बड़े शक्ति प्रदर्शन के लिए तैयारी करता है या कोई परीक्षा के पूर्व गहन अध्ययन करता है, पूरा प्रयास करता है कि कहीं कोई कमी न रह जाए। आखिर एक दिन पिता के समक्ष कौशल्या ने अपनी भावना प्रकट कर ही दी।

हुआ वही जिसकी आशंका थी। डाँटते हुए पिता ने कहा - "दीक्षा का मतलब फूलों की सेज नहीं है, काँटो पर चलना पड़ता है। बच्चों का खेल नहीं

है दीक्षा ! अपने दिमाग से यह फितूर निकाल दे। बैठे बिठाये तुझे भी यह एक अच्छा नशा चढ़ गया। जानती है, किसी भी तरह के नशे का असर थोड़ी देर के लिए होता है। जब नशा उतर जाता है तो अपने ही कृत्य पर पछताना पड़ता है। खबरदार, आगे से कभी भी ऐसी बेवकूफी की बात मुँह से निकाली तो।"

पिताजी की डाँट से कौशल्या हतप्रभ न हुई। अपितु अत्यंत दृढ़ व संयत शब्दों में बोली - "पिताश्री ! मैं जानती हूँ कि दीक्षा खेल नहीं है, इसीलिए तो आपसे मैं इस उम्र में आज्ञा के लिए कह रही हूँ। भावना तो मेरी बचपन से ही थी, पर उस समय शायद मैं इसीलिए रुकी रही कि जो भय आप अभी बता रहे हैं, उसकी संभावना उस समय हो सकती थी। अब मैं इस पथ पर काफी सोच समझकर बढ़ने जा रही हूँ। अगर आप आक्रोश का परित्याग कर मेरे उज्ज्वल भविष्य पर अनुकूलता पूर्वक विचार करेंगे ता आज्ञा देने में देरी नहीं करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।"

कौशल्या के समझदारी भरे वचनों से पिता का क्रोध कम हुआ तो समझाते हुए बोले "बेटी, अभी तो तुम अनुभवहीन हो। बाल-बुद्धि में अनेकों ख्याल आते-जाते रहते हैं। ऐसे ख्यालों पर विचार नहीं किया जाता। यह उम्र ही ऐसी है कि इसमें कोई भी अच्छे या बुरे संस्कार मन पर तत्काल अंकित हो जाते है। परन्तु ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती है वे संस्कार क्षीण हो जाते है......। जब तुम यौवन की दहलीज पर कदम रखोगी तो पाओगी कि तम्हारे विचारों में अकस्मात् ही परिवर्तन आ गया है। उस समय किशोरावस्था के विचार हवा में उड़ जाएँगे। अन्य नये विचार दीक्षा के बाद उभरे तो संभव है तुम अपनी उस समय की स्थिति से तालमेल न बिठा पाओ, और कुछ ऐसा अनहोना हो जाए कि अपना कुल कलंकित हो जाए ?" अतः संयम का आग्रह छोड़ दो। और अपने खानदान की इज्जत को बरकरार रखो। क्योंकि - "

" संयम कोई जादूगर का खेल नहीं,
संयम कोई मौज करने का महल नहीं।
कंटकाकीर्ण है संयम की शय्या
संयम में सांसारिकता की रेल-पेल नहीं॥ "

अपनी योग्यता पर विश्वास प्रायः योग्य बना देता है।

कौशल्या ने पिता को विश्वास दिलाते हुए कहा - "ऐसा कभी नहीं होगा पिताश्री ! आपकी पुत्री कभी भी कुल को कलंकित नहीं करेगी। मेरा यह निर्णय भावुकता का निर्णय नहीं है, मैने इस निर्णय के पहले काफी सोच-विचार कर लिया है।"

कौशल्या के तर्क युक्त विचारों को सुनकर भी पिता पिघले नहीं। वे किसी भी स्थिति में दीक्षा संबंधी कोई भी तर्क मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनकी 'ना' का मतलब सिर्फ 'ना' ही था। वे बोले - 'छल्लो ! मैं तुम्हारी धर्म क्रिया में बाधक नहीं बनता बल्कि धर्म को जीवन के लिए आवश्यक मानता हूँ। यह भी अच्छी तरह जानता हूँ कि धर्म ही वह नाव है, जो जीवन की नैया को पार लगा सकती है। नित्य प्रति धर्म का किसी न किसी रूप में व्यवहार होने से ही मनुष्य को आत्म-शान्ति मिलती है। मैं चाहता हूँ, तुम घर में रहकर ही धर्म-ध्यान करो, यहाँ तुम्हे कोई नहीं रोकेगा। पर दीक्षा देना मुझे अभीष्ट नहीं है। तुम्हें पता है, तुम्हारी भुआ की कितनी भावना थी, उसको भी मैंने दीक्षा की अनुमति नहीं दी। आज वह अपनी गृहस्थी में खुश है। तुम यह कभी उम्मीद ही मत करना कि मैं तुम्हें दीक्षा की अनुमति दे दूँगा।" यह कहकर खैरातीलाल जी चले गये।

पिता के इस प्रकार पूर्ण नकार कर चले जाने से कौशल्याजी को पीड़ा तो बहुत हुई पर उन्होने अपनी आशा का दीप बुझने नहीं दिया। वे सोच रही थी पिता धर्मनिष्ठ है, संकल्प के धनी है, केवल उनका मोह ही मुझे संयम मार्ग पर बढ़ने से रोक रहा है। माँ तो किसी प्रकार आज्ञा दे देगी, पर पिता से आज्ञा लेने के लिए जीवन को और कसना होगा। संयम को पूरी तरह जीवन में रमाना होगा। यदि पिता का विश्वास अर्जित कर लिया तो उनका हृदय पसीज सकता है।

यही सोचकर कौशल्या जी ने अपने जीवन को पूर्णतया संयमित कर लिया। सचित्त जल का त्याग, जमीकंद का त्याग, पर्व दिनों में सब्जी का त्याग, जूते-चप्पल आदि का त्याग करके वे सादगीमय जीवन जीने लगीं। खान-पान, रहन-सहन में भी वे अप्रतिबद्ध सी हो गई, बिना कुछ मीन-मेख के खाना खा लेतीं, बिना किसी विशेष प्रतिबंध के उठ-बैठ सो लेतीं, घर में रहकर भी वे घर में नहीं थीं, सांसरिक कार्यो से वे पूर्णतया उदासीन हो गई।

परिजन आपकी इस कठोर चर्या को देखकर, द्रवित और चकित होते। परन्तु

हमारे जीवन का व्यवहार ही हमारे हृदय की सच्चाई का प्रमाण है।

खैरातीलाल जी का इतना दबदबा था कि कोई उनके आगे मुँह नहीं खोलता। एक अजीब सी खामोशी वातावरण में व्याप्त थी।

कसौटी पर कसा कंचन

पिता ने कुछ महीनों तक पैनी दृष्टि से पुत्री के परिवर्तित जीवन को देखा, लेकिन संयम के बारे में वे कभी सहमत नहीं हुए, अपितु विचार करने लगे, इसका वैराग्य कच्चे सूत का नहीं है, जो एक झटके में टूट जाए। यह तो रज्जु की तरह पक्का है, इसे तोड़ने के लिए कैंची की सहायता लेनी पड़ेगी।

कैंची की सहायता वाले विचार पर उन्होंने चिंतन किया तो कौशल्याजी के नियम पालन में अनेक बाधाएँ उपस्थित की जाने लगीं। कौशल्याजी ने सचित पानी का त्याग किया हुआ था तो उन्होंने अचित पानी बनाना बंद करवा दिया। जमीकंद त्यागा तो कभी आलू टमाटर, कभी गाजर तो कभी मूली की सब्जी घर में बनने लगी। अन्य सब्जी के अभाव में वे सहज रूप से सब्जी का त्याग कर पानी से रोटी खा लेंती, लेकिन मुँह से कुछ नहीं कहतीं।

सामायिक पर प्रतिबंध लगा दिया तो वे भाव-सामायिक करके आत्म-चिंतन करने लगीं। उनके स्थानक आने जाने पर रोक लगा दी गयी। यहाँ तक की उन्हें अपनी धर्म-सखियों के यहाँ भी नहीं जाने दिया गया।

ज्यों-ज्यों प्रतिबंध बढ़ते गए त्यों-त्यों उनका संयम के प्रति अनुबंध बढ़ता गया, वे और भी दृढ़ से दृढ़तर होती गयीं। धर्मपथ की यात्री होने से स्पष्ट द्रोह तो उन्होंने नहीं किया परंतु अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु जो भी कष्ट दिये जाते उन्हें समभाव से सह लेतीं, और जो बाधाएँ उत्पन्न की जातीं, उनसें बचने का रास्ता खोज लेती। इस प्रकार बिना किसी आह ! उह ! के वे सब कुछ समता भाव से सहन किये जा रही थी। कहा भी है, कि -

"अंगीकृतं सुकृतिनो न परित्यजन्ति"।

- मनस्वी मानव अंगीकार किये प्रण से कभी विचलित नहीं होते। कौशल्या जी की आत्मा कभी सच्चे वैराग्य से ओतप्रोत हो चुकी थी, उनकी अंतरात्मा जागृत हो चुकी थी। वे संसार की मोहमाया से पृथक् हो रही थीं, अतः संयम की समस्त

मनुष्य का लक्ष्य ऊँचा और मन समूचा, तो लक्ष्य प्राप्ति में देर नहीं।

कसौटियाँ उनकी आत्मा को ओर निखार रही थीं, जैसा कि कहा है -

"तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः कांचन कांतवर्णम्।"

- स्वर्ण को जितना भी तपाओ उतनी ही उसकी चमक-दमक बढ़ती है। गैंद को जितने वेग से जमीन पर पटको वह उतनी वेग से ऊपर की ओर जाती है, उसी प्रकार कौशल्याजी की जितनी परीक्षा की गयी उनकी आत्मा उतनी ही कुंदन बनकर चमकने लगी।

एक शायर ने संघर्षो में से उबर उठने पर कहा है-

" सुर्खरूं होता है इसाँ आफतें आने के बाद।
रंग लाती है हिना पत्थर पर घिस जाने के बाद॥ "

वस्तुतः संकटपूर्ण स्थितियाँ ही महान पुरूषों के जीवन का निर्माण करती हैं। परीक्षा के दौरान कौशल्याजी का मानस और प्रदीप्त हो उठा । वे अपनी साधना में निमग्न थीं, किंतु तारादेवी जी का मातृ हृदय बेटी की कठोर चर्या को देख-देखकर उद्वेलित हो उठता। वे अपने पति को प्रकट में तो कुछ भी नहीं कह पातीं, किंतु जो व्रत, नियम उनकी "छल्लो" करती वे भी उसी में सम्मिलित हो जातीं। इसी कसौटी पर कसते हुए एक वर्ष का सुदीर्घ समय व्यतीत हो गया।

समय गुजरता गया, बीच-बीच में बाप बेटी में कुछ बहस भी छिड़ती रही परन्तु दोनों ही अपने अपने संकल्पों पर अडिग थे। न खैरातीलाल जी ने जिद्द छोड़ी, न कौशल्याजी के निश्चय में कोई शिथिलता आई। दोनों में एक दूसरे को खींचने की जैसे होड़ा-होड़ी चल रही हो।

पिता से पुनः अनुरोध

एक दिन कौशल्याजी ने पुनः पिता के समक्ष विनम्रतापूर्वक अपनी भावना प्रकट करते हुए कहा ! "पिताश्री। मैं उन सब नियमों का पालन कर रही हूँ, जो जैन संतों को अभीष्ट होते हैं। यदि इनसे भी कठोर नियम हों, जो मेरी जानकारी में नहीं हैं, वे भी ज्ञात होने पर मैं पालन कर सकती हूँ। मुझे यह अनुभव हो गया है कि सुख की प्राप्ति कष्टों को सहे बिना नहीं हो सकती। घर्षण, छेदन,

मेहनत से शरीर मजबूत होता है, कठिनाइयों से मन।

ताड़न और तपन के बिना स्वर्ण में दीप्ति नहीं आ सकती । आपने यह भी देखा होगा कि मैंने आपकी तरफ से पहुँचाई गई किसी भी बाधा का प्रतिरोध नहीं किया। आपके प्रति मेरा पूरा आदर भाव है। मैं आपसे उसी बात की अनुमति चाह रही हूँ जो मेरे जीवन के लिए उत्तमोत्तम हैं और जिससे आपका कुल गौरव बढ़ने की आशा है...... ।"

....."पिताश्री! आपने मुझे संभवतः हर तरह से परख लिया है। मेरी दृढ़ता और अटल निश्चय की जानकारी आपको मिल चुकी होगी। मैं आपसे विनम्र अनुरोध करती हूँ कि अब तो कृपा करके मुझे महाराज श्री के सान्निध्य में रहकर आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त करने की अनुमति दीजिये।"

लाला खैरातीलाल जी दीक्षा के मामले में अब भी चट्टान की तरह अडिग थे। किंतु चट्टान से टकराने वाली हर लहर को यह विश्वास होता हैं कि उसका पुनः पुनः प्रयास एक दिन अडिग से अडिग चट्टान को भी तोड़ देगा। यद्यपि चट्टान को तोड़ने में कोई विशेष लहर ही यश प्राप्त करती है परंतु उसके पीछे जितनी लहरें आई और टकराई उनका भी महत्त्व होता है। इसीलिए प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से कौशल्या जी प्रयास कर रही थीं। पर उनका यह वार भी खाली गया। पिता ने साफ-साफ शब्दों में कहा-

"छल्लो ! तू कितनी भी कोशिश कर ले, कितना ही त्याग प्रत्याख्यान कर ले, मैं तुझे दीक्षा की राह पर नहीं जाने दूँगा। तू बार-बार ये बातें छेड़कर अपना और मेरा समय व्यर्थ ही बरबाद कर रही है। अच्छा तो यही है कि तू ये त्याग-वैराग्य का रास्ता छोड़ दे। नहीं छोड़ेगी तो भी तुझे दीक्षा नहीं दूँगा। तेरी हठ के कारण ही अब मुझे लगने लगा है कि दीक्षा से कितनों का मन दुःखी होता है। परिवारों में कितना अनादर होता है .....।"

अनादरता का आरोप कौशल्या सहन नहीं कर सकी, वह क्षिप्र शब्दों में बोली-

"नहीं पिताश्री ! नहीं। यह अनादर का इल्जाम बिल्कुल ही गलत है। आपके प्रति आदर ही मुझे बार-बार आपके पास अनुरोध लेकर आने को प्रेरित करता है। यदि आपके प्रति मैंने आदरभाव न रखा तो अनादर ही मेरी प्रवृत्ति हो

कठिनाइयों में ही सिद्धांतों की परीक्षा होती है । - फील्डिंग

जाएगी और में जहाँ भी जिस हाल में भी रहूँगी, यह वृत्ति मुझे पीड़ा देगी। मैं विनम्रतापूर्वक आपसे दीक्षा के लिये आज्ञा की याचना करतीं हूँ......।" कहते हुए कौशल्या पिता के चरणों में झुक गई।

पुत्री पर अपने कहे का प्रभाव नहीं होते देख पिता ने तेवर बदला। उन्होंने अपनी पत्नी को आड़े हाथों लेते हुए कहा - "तुमने ही कौशल्या का साथ देकर उसे दृढ़ बना रखा है। उसके साथ तुम भी त्याग-प्रत्याख्यान कर इसकी भावना को बल दे रही हो। जबकि मैं दीक्षा किसी हालत में नहीं दे सकता। यदि तुम्हें यही करना है तो घर-दुकान की चाबियाँ तुम ही संभालो मैं घर से बाहर निकल जाता हूँ। जिस घर में मेरी इच्छा नहीं चले, उस घर में रहने से क्या लाभ....?" यह कहकर लाला खैरातीलालजी चाबियों का गुच्छा फैंककर चले गये।

बात ऐसी मोड़ ले लेगी यह कल्पना किसी को नही थी। कौशल्या को चिन्ता हुई कि मेरे कारण पिता कोई गलत कदम न उठा लें। कहीं कोई अनिष्ट न हो जाए। यदि मेरे कारण क्लेश हुआ, तो धर्म भी बदनाम हो जाऐगा। खैरातीलालजी का ऐसा रवैया देखकर माँ-बेटी दोनों ही हतप्रभ हो गयीं। अनेक प्रकार के विचार मन को आंदोलित करने लगे। आँखों से नींद गायब हो गई। हृदय की धड़कने बढ़ गयीं। लेकिन जब देर रात को लालाजी घर लौटे तो माँ और बेटी दोनों की साँस में साँस आई। उन्होंने सोचा - शायद अब क्रोध शांत हो गया है, किंतु ऐसा नहीं था। लालाजी के चेहरे पर अभी भी क्रोध की रेखाएँ उभर रही थी। कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। एक अजीब सा सन्नाटा छाया हुआ था।

नैराश्य के काँटे : निर्णय के फूल

अभी तक तो कौशल्याजी यह समझ रही थी कि मैं एक दिन अनुनय-विनय कर माता-पिता से किसी तरह दीक्षा की स्वीकृति प्राप्त करनें में सफल हो जाऊँगी। लेकिन पिता के तेवर देखकर उसका विश्वास डोल गया । आँखो के आगे अंधेरा-सा छा गया। अपने कमरे में जाकर आज पहली बार वह फफक-फफक कर रो रही थी ।

बहुत देर रो चुकने के बाद जब थोड़ी स्वस्थ हुई तो पुनः विचारों का क्रम

चल पड़ा। वह सोचने लगी- " गुरूदेव कहते थे हर पदार्थ स्वतंत्र है तो फिर मैं परतंत्र कैसे? वह कौन सी चीज है, जो मुझे परतंत्र बना रही है ? क्या पिताजी की खुशी के लिए अपनी आत्म-स्वातन्त्र्य की भावानाओं को जलांजलि दे दूँ?

विचारों को स्वतः ही मोड़ देतु हुए वे स्वयं ही बोल पड़ी- "नहीं ! नहीं ! मेरा निश्चय अडिग है, मैं अपने बंधन स्वयं तोड़ दूँगी। अपनी आत्मा को स्वयं ही परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कर दूँगी । मैं हनुमान के समान शक्ति की धारक हूँ। मुझमें महावीर का वीरत्व स्थित है, कायरता मेरा कवच नहीं। मैं साहस से परिपूर्ण हूँ। मुझे कोई भी अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकता। मैंने जिस मार्ग को वर लिया वह मेरा परम और चरम पथ है, वही मेरा निर्णय है।" कहा है -

" लगी लगन छूटे नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठो कहाँ अंगार में, जो चकोर तेहि खाय ।।"

जब चकोर जैसा पक्षी भी अपने प्रण पर अटल रह सकता है तो मैं तो मानव देह में हूँ। मेरा निर्णय मेरा अपना है। कोई इससे सहमत हो या न हो , मै तो पूर्ण समर्पित हूँ, उसी के लिये, हाँ , उसी मार्ग के लिए ....।"

जाने कहाँ से कौशल्या जी में अपार साहस का संचार हुआ वे अपने आपको विराट् आकार का अनुभव करने लगी थी। उन्हें यह लगने लगा, कि बस तीन पग में वे पूरी धरती नाप सकती है। जब वामन रूप विष्णुकुमार ने वैक्रिय लब्धि से अपना आकार बड़ा कर लिया था तो प्रत्यक्ष रूप में न सही वैचारिक रूप से तो मैं उस स्वरूप को पा ही सकती हूँ।" उनका विश्वासी मन कह रहा था -

" लगा रह दिल किनारे से, कभी तो लहर आएगी ।
यह तकदीर तेरे जीवन की कभी तो पलटा खाएगी।।"

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी -



कौशल्या जी अपने मन में उक्त विचार कर रही थी, और इधर उसके पिता अन्य ही विचारों को मूर्त रूप देने में लगे हुए थे। उनके द्वारा लगाये प्रतिबंध का परिणाम जब निष्फल सिद्ध हो गया, तो वे कोई अन्य उपाय खोजने लगे जिससे बेड़ी

बड़ी से बड़ी बात को सरल ढंग से कहना उच्च संस्कृति का प्रमाण है । - बाइबिल

और भी कड़ी हो जाये । पंखों की फड़फड़ाहट शांत हो जाए। इसके लिये पिता ने अपने कुछ मित्रों से राय ली, अनेको विघ्न बाधाएँ उपस्थित करने पर भी कौशल्या अपने नियमों को नहीं छोड़ रही है। भय, प्रलोभन, डाँट-डपट, समझाना-बुझाना सब तरीके अजमा लिये गये हैं पर कोई भी तरीका कारगर नहीं हो पा रहा है, कौशल्या के हृदय पर रंच मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है ऐसी हालत में क्या किया जाए ? जिससे वह दीक्षा की बात भूल जाए, तो सबने एक ही सलाह दी कि लड़की की सगाई कर दो । शादी होकर सुसराल चली जाएगी, तो अपने आप दीक्षा की रटन छूट जाएगी। खैरातीलाल जी को भी यही विचार पसंद आया। उन्होनें पाँव में मजबूत बेड़ी डालने का चिरपरिचित नुस्खा अजमाने का निश्चय किया । उनकी दृष्टि में यह ब्रह्मास्त्र था अर्थात् उसका वार खाली जाने का प्रश्न ही न था चुपचाप उन्होंने एक अन्य जगह सगाई कर दी और " चट मँगनी पट ब्याह" की तैयारियाँ शुरू हो गई।

कौशल्या को पिता ने अपने इस निर्णय से अपरिचित ही रखा । सभी को कह दिया कि इस संदर्भ में सब मौन हो रहें । परन्तु बच्चों के मुख पर सच उभर ही आता है। छोटे भाई बहनों ने बतलाया कि " दीदी आपकी शादी होने वाली है। खूब धूम धड़ाका होगा, आप दुल्हन बनोगी, खूब मजा आएगा ।"

कौशल्या जी ने यह बात सुनी तो हतप्रभ रह गई। उनका हृदय अपार वेदना से भर उठा । आँखो से अश्रुओं की धारा बह चली। परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी वे 'ऊह' भी नहीं कर सकती थीं। स्थिति बड़ी विचित्र थी एक और पिता अपने दायित्व का निर्वाह करना चाहते थे, दूसरी ओर वे इस जकड़न से मुक्ति पाना चाहती थीं। जितना भी पिताश्री को समझाने का प्रयत्न करतीं, उन्हें लगता जैसे रेत में से तेल निकालने का असफल प्रयास कर रहीं हैं। समय की केसी बलिहारी कि घने अंतर्विरोधों में जीवन घिसट रहा था। वे सोचतीं-"क्या कन्या जीवन परतंत्रता का नाम है ? क्या स्वतंत्रता केवल विचार की वस्तु होती है ?"

कौशल्या जी चिंतन के सागर में डूब गई, वे विचार करने लगीं - अगर पिताजी ने मुझे विवाह के सूत्र में बाँध दिया तो वे अपने दायित्व से मुक्त हो जाएँगे। इधर मेरा जीवन नया मोड़ ले लेगा, और मेरी भावनाओं पर श्वसुर पक्ष का अधिकार हो जायेगा। क्या नारी की यही स्थिति है, कि वह हर कदम पर किसी

चूड़ियाँ खनखनाहट का कारण है, द्वैत घबराहट का।

ओर के द्वारा शासित हो? क्या वह अपनी भावना के अनुरूप जीवन जी सकने में स्वतंत्र नहीं है ?

मन बार-बार विद्रोह कर रहा था । वे घर से चुपचाप भाग जाने की इच्छुक हुईं। लेकिन संस्कारों में जो विनय व मर्यादा थी वह उन्हें रोक रही थी। किसी तरह फिर से अपनी भावनाओं को पिता के समक्ष प्रकट करने की कोशिश में वह कब और केसे उनके पास पहुँची, वह नहीं जानतीं परन्तु जब सामने पिता दृष्टिगोचर हुए तो मन के भाव उमड़ पड़े, बोलीं -

" पिताश्री ! आप मुझे चाहे जितनी यातनाएँ दीजिये, चाहे तो कसौटी पर पुनः कस लीजिए, लेकिन कृपा करके ऐसा कदम न उठायें कि अनचाहे ही मैं उस सांसारिकता के दलदल में फँस जाँऊ जिसमें एक बार धँस जाने के बाद उबरने के हर प्रयास में और अधिक धँसते चले जाने की स्थिति आ जाए ।

पिताजी ने कहा - "कौशल्या ! तू चाहे कितने भी तर्क दे, मेरा मन परिवर्तित नहीं हो सकता। मेरे निश्चय के पीछे मेरा स्वार्थ ही नहीं वरन् तेरी भलाई की भावना भी छिपी है। आखिर यह क्यों नहीं समझती कि जो तेरे लिए अकरणीय है उसके पीछे इतनी पागल क्यों हो रही है ? असंभव को संभव बनाने का तेरा उपक्रम ही तुझे उलझा रहा है। इसकी बजाए मेरे विचारों की अनुकूलता में रमती तो आज एक सुखमय वातावरण को जन्म देती । मैं तेरी सब बातें मानने को तैयार हूँ, पर दीक्षा नहीं दूँगा, नहीं दूँगा, । बोल क्या कर लोगी ? ..... " क्रोधावेश में खैरातीलाल जी पैर पटककर चले गये ....।

कौशल्या एक बार फिर अपने को असहाय और परतंत्र महसूस करने लगी। सौलह वर्ष की कन्या न कहीं जा सकतीं थी, न इस जाल से छूट सकती थी । सोच रही थीं, कि " हाय ! कन्या का जीवन भी क्या जीवन है, उसे कहीं भी स्वतंत्रतापूर्वक चलने या स्वतंत्रतापूर्वक विचार करने का अधिकार नहीं है।"

अपने जीवन की इस विडम्बना से कौशल्या जी बहुत अधिक हताश हो गयीं। उन्हें लगा कि यह जीवन भी व्यर्थ जाता लगता है। वह जीवन व्यर्थ ही तो है जिसमें मनुष्य अपने अभीष्ट को न पा सके। कभी कौशल्या जी को यह विचार आता कि भला किसी और को क्यों दोष दूँ, मेरे ही पुण्यकर्मों में कहीं न कहीं कमी रह गयी है ....।"

सच्चे मित्र के सामने दुख आधा और हर्ष दुगुना मालुम होता है - जान्सन

फिर वे स्वयं से प्रश्न करने लगी - " क्या मैं अपने हित-अहित के बारे में सोच भी नहीं सकती ? क्या मै बलि के बकरे की तरह किसी के भी हाथ सौंप दी जाऊँगी? क्या मैं इसी तरह जीवन के प्रवाह में बहने के लिए जन्मी हूँ? क्या मैं सर्व सुखद, संयमनिष्ठ श्रद्धेय गुरूणीजी महाराज का सान्निध्य प्राप्त करके भी आत्म स्वातंत्र्य के मार्ग पर नहीं बढ़ पाऊँगी .... ।"

कौशल्या जी की विचार श्रृंखला चलती ही जा रही थी । वे सोच रहीं थीं - "यदि इस जन्म में संयम रूपी दधि से आत्म सुख रूपी नवनीत को प्राप्त नहीं किया तो क्या भरोसा कि पुनः मुझे ऐसे प्रबल पुण्य का योग मिले । उनके मस्तिष्क में उत्तराध्ययन सूत्र की यह गाथा कौंधी -

" जम्मं दुक्खं, जरा दुक्खं,, रोगाणि मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतवो ।। "

"अहा ! अनादि काल से संसारी प्राणी जन्म-मरण की चक्की में खोपरे की भाँति पिसे जा रहे हैं, सुख और दुःख के शिकंजे में घिसे जा रहे हैं। फिर भी संसार का राग कितना गहरा है ।"

वे सोच रहीं थीं कि पिताश्री को आखिर क्या हो गया है , वे तो अत्यन्त अनुभवी तथा धर्मनिष्ठ व्यक्तित्व लगते थे । वे राग के अंधकूप में केसे गिर गए हैं और साथ ही मुझे भी उसी में धकेलने को उत्सुक हैं । नहीं ! नही ! मैं इस प्रकार दमित होना नहीं चाहूँगी। मैं माया, ममता, मोह के बंधनों को तोड़कर महासती चंदना एवं महासती सुभद्रा की तरह जन्म-मरण के बंधनों को काटने के लिए निवृति मार्ग का ही अनुसरण करूँगी। चाहे इसके लिए मुझे किसी भी स्थिति का सामना करना पड़े। मेरा निर्णय अटल है, मैं स्व पुरूषार्थ के बल पर सारी बाधाएँ पार कर जाऊँगी । अभी समय है, कुछ करने का।

क्योंकि कहा है -

" समय लाभ सम लाभ नहीं ।
समय चूक सम चूक नहीं ।। "

अतः -

अच्छे विचारों पर यदि अमल नहीं किया तो वह अच्छे स्वप्न से बढ़कर नहीं है - सिसेरो

" जो भी करना है वह कर गुजरो यह दिल की राय है।
सोचने वाला हमेशा सोचता रह जाता है॥ "

और फिर "समय चूके पुनि का पछताना ।" यह समय व्यतीत हो गया तो लक्ष्य ही चूक जायेगा, फिर अवसर हाथ नहीं आने का ।

अब वे पूर्णतया सजग हो गईं। मन ही मन दृढ़ निश्चय कर लिया कि अगले कदम की पूर्ण निर्णायक वे ही होंगी। अब उन्हें किसी भी ऐसे अवलम्ब की खोज नहीं करनी चाहिए जिस पर आरूढ़ होते ही फिसलकर नीचे आ जायें।

उन्होनें यह तय कर लिया कि बंधन तोड़कर जाने के सिवाय अब कोई विकल्प नहीं रह गया है। पर जाना कहाँ ठीक रहेगा ? और कब जाना ठीक रहेगा। इस ऊहापोह की स्थिति में अभिन्न व्यक्ति पर ही दृष्टि जाती है। अतः अपनी प्रिय सखी लज्जावती, जो पड़ोस में ही रहती थी, उससे मन की बात कही। बोलीं - "तू मेरी अंतरंग सखी है, सदा तूने मुझे धर्म में सहयोग दिया है। तू अच्छी तरह से जानती है कि अब मेरा मन संसार से पूर्णतः विरक्त हो चुका है। पिताश्री के ये शब्द मेरे लिए चुनौती बन गए हैं कि - " कन्या कर ही क्या सकती है ? " वे मुझे अबला समझ रहे हैं, मुझे सबला बनकर दिखाना है और इसके लिए मैं अंतिम कदम उठाने को तत्पर बनी हूँ। महासती श्री मोहनदेवी म०जी अम्बाला विराजमान हैं, उनके पास जाना चाहिए अथवा जालंधर में प्रवर्तिनी श्री राजमती जी म० के पास ? बता सखि ! तेरे संकेतों से ही अब मैं इस जीवन से उबर पाऊँगी।"

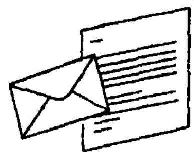
लज्जा अपनी सखि के ये वचन सुनकर पहले तो सकते में आ गयी । पर वे जानती थी कि पका पत्ता या फल पेड़ से विलग होने को आतुर हो जाता है। उन्होनें कहा-"मेरे विचार से तो प्रवर्तिनी जी के पास जाना ही श्रेयस्कर है। वे इस समय पंजाब की सती शिरोमणि हैं, प्रमुखा साध्वी हैं, और सबसे बड़ी बात लालाजी उन्हें श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते हैं।"

कौशल्या जी को भी यह बात जँची,, उन्होनें अधीरता से पूछा - "ठीक है, लेकिन यह पता कर कि जालंधर जाने वाली गाड़ी कब रवाना होती है, वही गाड़ी मालूम करना जो रात को जाती हो । रात्रि को ही निकलना ठीक रहेगा । दिन के प्रकाश में तो पलायन करने से बात बिगड़ सकती है। बात बिगड़ गयी तो फिर कभी भी बनने की नहीं।"

साहस अनेक लोग कर सकते है लेकिन सही बात के लिये, सही समय पर साहस करना कितनों को आता है ? - साइरस

लज्जा जी ने मालूम करके बता दिया कि जालंधर की ट्रेन रात्रि ३ बजे रवाना होती है। अब तो कौशल्या जी के मन में रात्रि तीन बजे का समय गहराई से अंकित हो गया । वे जैसे उस समय का ही जाप करने लगीं थीं। उनकी सारी सोच शक्ति तीन बजे के समय पर आकर स्थिर हो गई क्योंकि इसके लिए उन्हें रात्रि २ बजे पलायन कर देना होगा ।

पिता के नाम पाती



कौशल्याजी जाने की तैयारियाँ करनी लगीं । इससे पूर्व उन्होंने इष्टदेव का ध्यान किया, पंच परमेष्ठी मंत्र का जाप किया । उनका मन झंकृत हो रहा था । जैसे थोड़ी-थोड़ी देर में किसी वाद्य यंत्र के संगीत में "झन्" से झांझ बज उठती हो । उसी मन के कंपन की स्थिति में उन्होने कागज और कलम लिया । परिवार के नाम पत्र लिखा-

" आदरणीय माताजी, पिताजी !
चरणों में सादर प्रणाम ! "

मैं लगभग दो वर्षों से आपसे दीक्षा की अनुमति माँग रही हूँ, किन्तु आपने मेरी भावनाओं पर कोई गौर नहीं किया । मुझे आपने स्थानक में जाने से रोका, मैं रूक गयी, मेरी सहधर्मिणी सखियों से नहीं मिलने दिया, मैं नही मिली । मेरे खाने पीने के ऊपर कठोर प्रतिबंध लगाये, मैंने प्रतिवाद नहीं किया। मेरे नियमों को तुड़वाने के काफी प्रयास किये , मैं वह भी सहन कर गयी । और भी आप कोई परीक्षा लेते तो मैं सहर्ष देने को तैयार थी । मैंने अपने को एक वीर सेनानी की भाँति हर वार के लिए तैयार कर लिया था । किन्तु आपने अब मेरे आत्म स्वातंत्र्य पर प्रतिबंध लगाना प्रारंभ कर दिया तो मेरी आत्मा का शौर्य जाग उठा । इस शादी को मैं अपनी आत्मा की बरबादी का कारण मानती हूँ। अतः बरबादी से बचने के लिए मैं आत्म-स्वातंत्र्य के मार्ग पर जा रही हूँ।

आपकी सुपुत्री,
कौशल्या (छल्लो)

विजय उसी को प्राप्त होती है, जो विजयी होने का साहस करता है । - अशोक

बंधन तोड़ उड़ चला पंछी

" ध्यान मग्न थे खग नीड़ो में, तरू थे कान लगाये ।
नभ के नयन देखते नीचे अपनी दृष्टि गड़ाए ॥ "

वह समय स्वतंत्रता प्राप्ति का पूर्वकाल था । सर्वत्र हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की क्रूर भावना भयावह रूप धारण किये फैल रही थी। ऐसे समय में वह षोडशवर्षीया कन्या अर्द्धरात्रि को घर से निकल पड़ने का अटल निर्णय लेकर चल पड़ी। अपना लिखा पत्र शयन कक्ष में छोड़ गई थी । चलते समय यह विचार था कि घर से बाहर निकलते ही ताँगा तैयार मिलेगा, लेकिन इतनी रात गये ताँगा कहाँ मिलता ?

घर से निकलने के बाद घर की ओर नजर डाली तो सही, मगर जब मोह के बंधन निःशेष हो गये थे तो उसके छूटने का कोई मलाल कहाँ से रहता ? उस समय तो एक ही लक्ष्य था, जालंधर की गाड़ी। जो भी कदम आगे बढ़ता यही विचार उभरता कि जो छूट गया वह केवल निमित्त था। सही दिशा मिल गई है, तो छूटने की पीड़ा भला कैसे होगी ?

रात्रि लगभग दो बजे का समय, दो पहर बीत चुके थे। गलियाँ और मोहल्ले सुनसान लग रहे थे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। दिन भर के श्रम के बाद सारा आलम नींद की गोद में बेसुध पड़ा था। ऐसे विकट, भयावह समय में सौलह वर्ष की कन्या, साहस की प्रतिमा सी बनी एकाकी लक्ष्य पथ पर बढ़ती जा रही थी। **वह वीर कन्या विकट को निकट पाकर भी प्रकट में हर संकट से मुक्त थी।** ऐसी वीर कन्या के लिये ही मानो कबीर की वाणी प्रस्फुटित हुई थी ।

" लंबा मारग दूर घर, विकट पंथ बहु मार।
कह "कबीर" कस पाइये , दुर्लभ गुरू दीदार॥ "

कौशल्या जी जानती थीं कि गुरू का सान्निध्य संसार की सबसे दुर्लभ वस्तु है । दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति के लिए विशेष प्रयास करना ही पड़ता है। जो कष्टों से घबराकर लौट गया, उसका भाग्य ही लौट गया । प्रभु का मार्ग शूरों का मार्ग है, कायरों का नहीं।

सोने की असलीयत और मिलावट का आग में पता चलता हैं।

कहा भी है - "Fortunes favours the Brave" अर्थात भाग्य उसी का साथ देता है, जो पुरूषार्थ करता है। कौशल्याजी ने धर्म पर बढ़ने के लिए पूर्ण समर्पण भाव से कदम बढ़ाए। उसी का परिणाम था कि वे कठिन स्थिति में भी घर से बाहर कदम रख पाई।

गहन अंधकार में निर्भयता और संकल्प की धनी वह साहसी कन्या बढ़ी जा रही थी। मंजिल का निर्णय पहले से ही हो चुका था। कुछ समय में वह स्टेशन पर पहुँच जायेगी और ३ बजे वाली गाड़ी से जालंधर की ओर प्रस्थान कर जायेगी। वहाँ पर श्रद्धेया राजमती जी महाराज विराजित हैं उनके श्री चरणों में उसे आगे की दिशा खोजनी है, जो अंततः महासती श्री मोहनदेवी जी के चरणों तक पहुँचा दे।

चरणों में गति थी, विचारों में उससे भी तेज गति थी। पर पथ भी तो लम्बा हो चुका था। चलते-चलते भी लग रहा था कि अभी बहुत दूर जाना है । मन में एक आशंका भी थी कि कहीं स्टेशन पहुंचने में विलम्ब न हो जाए। आखिर चरणों की गति सीमा तो सीमित ही होती है। और कोई साधन न मिल पायेगा यह अनुमान होता तो थोड़ी ही देर पहले निकल पड़तीं ।

भावड़े के मोहल्ले के बाद मुसलमानों के मोहल्ले से गुजरना था। इक्का दुक्का कोई आता नजर आता या बहुधा कोई भ्रम ही होता । जो भी पास से गुजरता ऐसा महसूस होता कि वह उसी की ओर बढ़ा चला आ रहा है। तो कभी कोई एकाकी कन्या को यूँ जाते देख घूरने लगता था।

मन ही मन कौशल्याजी महामंत्र नवकार का स्मरण करती चली जा रही थी। मुसलमानों के क्रमशः चार बड़े मोहल्ले पार कर वे अनारकली बाजार में पहुँची, वहाँ उन्हें ताँगा मिला । उसमें बैठकर वे स्टेशन पहुँची। स्टेशन पर पता लगा कि जालंधर जाने वाली गाड़ी अभी-अभी रवाना हुई है। अब अगली ट्रेन प्रातः छह बजे आयेगी। विधि की विडंबना होनहार को कौन बदल सकता है ? आपने सोचा, तीन घंटे स्टेशन पर गाड़ी की प्रतीक्षा करनी है। मैं एकाकी हूँ, किसी की दृष्टि इस बैग पर पड़ गयी तो यही विपदा का कारण बन सकता है, अतः उस बैग को स्टेशन पर ही एक ओर फैंक दिया । अपरिग्रह व्रत की आराधिका के लिये यह कोई आश्चर्यकारक घटना नहीं थी । उन्हें तो मात्र ट्रेन की प्रतीक्षा थी उसकी इंतजार

शूरवीर कभी शेखी नहीं बघारते, वे अपने पौरुष को कार्यो से दिखाते है।

में तीन घंटे, तीन युग के समान लग रहे थे। फिर भी न तो रात्रि के अंधेरे से वे भयभीत थीं, न नीरव सन्नाटे से । कहा भी है -

" वही हकदार है किनारों के ।
जो बदल दे बहाव धारों के । "

आखिर जालंधर जाने वाली गाड़ी आई तो कौशल्या जी की साँस में साँस आई। स्टेशन पर अनेकों यात्री उतरे, अनेकों चढ़े। चढ़ने व उतरने वाले यात्रियों से अपने को बचाती हुई वे एक डिब्बे में चढ़कर सीट पर बैठ गईं। समय की क्या बलिहारी, कि जो कन्या दिन में कभी अकेली नहीं निकली वही आज रात्रि के सघन अंधकार में निकल पड़ी और प्रातः के धुंधलके में उसने अपनी दृष्टि दो सौ मील दूर जलांधर पर टिका दी।

खिड़की से बाहर की धरती गोल गोल नजर आ रही थी। जैसे समय का चक्र घूम रहा हो। समय के उस प्रवाह में वह कन्या किस प्रकार रात में अकेली पैदल ही सड़कों को पार करती, अकेली ही तांगे में सवार हो चली आईं। वह सब एक सपने सा लगता था। किंतु वह स्वपन नहीं एक यथार्थ था।

जालधंर स्टेशन पर उतरकर वे स्थानक में पहुँच गयीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने राहत की साँस ली। कौशल्या जी ने यह सिद्ध कर दिखाया कि **अगर मन में लक्ष्य के प्रति सच्ची लगन हो , त्याग हो, प्रबल इच्छा शक्ति व दृढ़ विश्वास हो तो कुछ भी असंभव नहीं होता ।**

दूसरी बात, प्रयत्नपूर्वक प्राप्त हुई वस्तु का महत्व अधिक होता है। उसे संभाल कर रखने की चाह स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। बिना किसी विशेष प्रयत्न के प्राप्त वस्तु के प्रति उतना ज्यादा लगाव नहीं होता। वह तो जैसे अनायास प्राप्त होती है उसी प्रकार अनायास ही चली भी जाती है।

Easy comes Easy goes.

- " यों आई और यों गयी।"

कठिनाइयाँ झेलकर जिस चीज की प्राप्ति हो वही स्थायी होती है। माता शिशु जैसा रत्न पाने के लिए पीड़ा सहती है। उस पीड़ा का सुपरिणाम ही माता को शिशु से जीवन पर्यन्त जोड़े रखता है।

कितनी-कितनी बाधाएँ आई थीं आप की राह में ? परिवार का मोह छोड़ा तो पिता द्वारा प्रदत्त बाधाएँ आकर खड़ी हो गयीं। वे बाधाएँ भी असीमित थीं। एक लहर तूफान भरी आती है। उसी के पीछे दूसरी लहर में उससे भी ज्यादा वेग और उफान आखिर कोई बचे भी तो केसे ? मन में अपार साहस रखकर ही आपने उन तूफानों को झेला। आज आपकी किश्ती तूफानों का सामना करती हुई जालंधर के स्थानक तक पहुँच गई। संत कबीर ने कहा है -

" यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
शीश उतारे भुई धरै, तो यामें चल आहिं।। "

संयम पथ पर कदम बढ़ाने वाले साधक को विशेष सजगता रखनी पड़ती है। एक ओर से स्वयं के माया, ममता और मोह के दुर्निवार पाशों को काटना पड़ता है, तो दूसरी आरे परिवारी जन के ममता व मोह के बंधनों को दूर करने वाले उपक्रमों से जूझना पड़ता है।

प्रवर्तनी श्री राजमतीजी की शरण में

किशोरी कन्या कौशल्या दीर्घ काल से कसौटी पर कसी जा रही थी फिर भी हताश नहीं हुई न वह अपने स्वीकृत पथ से विचलित हुई। महासती राजमती जी के श्रीचरणों में दोपहर 11 बजे पहुँची। महासतीजी को भावपूर्ण वंदन किया। वहाँ पहुँचकर वह हर तरह से आश्वस्त हो गयी ।

एक अकेली बाला को सामने देखकर महासतीजी ने परिचय पूछा। कौशल्याजी के मन में बहुत कुछ घुमड़ रहा था। भावों की उस भीड़ में जो वे व्यक्त करना चाहती थीं जैसे निकल नहीं पा रहा था। फिर भी व्यक्त तो होना ही था। भीड़ को चीरता हुआ जैसे कोई व्यक्ति आगे पहुँच ही जाता है कुछ वैसा ही प्रयास कौशल्याजी के शब्दों ने किया। विनम्रतापूर्वक उन्होंने अपना परिचय दिया। अत्यंत शालीनता से वैराग्य भावों को प्रकट किया।

महासतीजी, कौशल्या जी की विनम्रता, शालीनता से प्रभावित हुईं। उनके मन में उपजे वैराग्य भावों की प्रशंसा की और पूछा - कहाँ है तुम्हारे साथ के

वृत्ति को श्रेष्ठ बनाओ, प्रवृत्ति स्वतः श्रेष्ठ बन जाएगी।

परिजन ? " क्या वे रह पीछे छूट गए हैं ? " कहकर उन्होंने द्वार पर दृष्टि डाली। सकुचाते हुए कौशल्या जी ने कहा -

" महासतीजी वे तो मुझसे लाहौर में ही छूट गये हैं। मै तो बिल्कुल अकेली घर-बार त्याग कर आपके श्रीचरणों में चली आयी हूँ। मुझे अपने श्रीचरणों में स्थान देकर कृतार्थ करें। अब मेरे लिए एकमात्र यही स्थान इस समय शेष रह गया था । अत्यंत विकट अवस्था में अपने आत्मविश्वास का दीप प्रज्वलित कर मैं यहाँ तक पहुँची हूँ, पीछे छोड़ आई हूँ केवल एक पत्र।"

बालिका के इस कथन से जहाँ एक ओर महासतीजी आश्र्चर्यचकित हुई वहाँ परिवार से बिना अनुमति लिये इस प्रकार आने की बात पर वे चिंतित भी हो गई। सोचने लगीं कि प्रातः से ही बालिका को न पाकर परिवार के लोग परेशान हो रहे होगें। खोजबीन कर रहे होगें। अतः कन्या यहाँ सकुशल पहुँच गयी है, यह सूचना उन्हें शीघ्र देनी चाहिए।

महासती जी ने उसी समय संघ प्रमुख लाला अमरनाथ जी (किताबों वाले) को बुलावाकर सारी स्थिति समझाई और उन्हें लाहौर समाचार देने के लिए कहा।

कौशल्याजी तो महासतीजी की सेवा में पहुँचकर आश्वस्त हो गयीं थीं। वे सोच रही थीं कि अब उनका अभीष्ट मिल गया। लेकिन, उधर लाहौर में जब सबेरा हुआ और बहुत देर तक " छल्लों " की आवाज नहीं सुनाई दी और न वह कमरे से बाहर निकली तो माँ को चिन्ता हुई कि क्या बात है ? जिससे भी पूछा सबने अनभिज्ञता बतलाई। सखियों के घर जाकर पूछा तो उनसे भी कोई संकेत नहीं मिला। धर्मस्थल के अतिरिक्त वह कहीं भी कदम नहीं रखती ऐसा सबकों पूर्ण विश्वास था। उसके स्वाध्याय कक्ष में जाकर देखा वहाँ पर उसका सामायिक का सामान भी नहीं था। कौशल्या की सर्वत्र खोज की जाने लगी, परंतु कौशल्या वहाँ होती तो दिखाई देती, वह तो दो सौ कि. मी. दूर जालधंर में बैठी हुई थी।

" हेरत हेरत हे सखि रह्या कबीरा हिराय ।
बूंद समानी समंद में, सो कत हेरी जाय॥ "

जब बूँद समग्रता के साथ लहर का रूप धारण कर नदी के माध्यम से समुद्र में पहुँच जाती है तो उसका समर्पणभाव प्रबल हो जाता है। वहाँ पहुँचकर वह यही

जिसके पास सत्य है, वह अकेला होता हुआ भी बहुमत में है -
डगलस

महसूस करती है कि जहाँ उसे पहुँचना था वहाँ पहुँच गयी है। यह उसकी यात्रा की इति है। इति शुभम्, ' इति' सबसे अधिक शुभ होती है। क्योंकि 'इति' आदि का चरम होती है। उसमें पूर्णता का आनंद समाविष्ट है।

माता का संकल्प

कौशल्या जी की चारो ओर ढूँढ़ मची हुई थी, तभी बहन सुमित्रा को एक मुड़ा हुआ पर्चा दिखाई दिया । देखा, तो वह कौशल्या जी के हाथ से लिखा गया पत्र था। उसे सबने पढ़ा। इससे यह निश्चित हो गया कि वह चली गई है। लेकिन कहाँ गयी, किस दिशा में गई, कौन से गाँव-नगर में उसे ढूँढा जाए, अब सबको यह नई चिंता सवार हुई। माँ की तो आँखो से धारोधार अश्रु बह रहे थे। वह अपने पति को ही उलाहना देती हुई कह रही थी कि -

"आपने ही मेरी छल्लों को घर से भागने के लिए मजबूर किया। भला कोई भी समझदार व्यक्ति किसी की अधिकारी वृति तले कैसे रह सकता है ? आपके कठोर व्यवहार से उसका मन टूट सा गया था। कभी भी आपने उसकी भावनाओं पर गहराई से विचार नहीं किया। उससे सीधे ढंग से कभी बात नहीं की । जब भी उसने दीक्षा की आज्ञा के लिए अनुनय किया आपने डाँट से उसका जवाब दिया। मैं अपनी बेटी को अच्छी तरह जानती हूँ। अगर उसकी भावनाओं को दबाया नहीं जाता तो शायद वह भागती नहीं। अब जब तक वह वापिस नहीं आयेगी मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगी। यह मेरा अटूट संकल्प है।"

माता तारा देवी के इस संकल्प पर सब चौंक उठे। सबने उन्हें समझाया कि वे परेशान न हों। पर संतान की जरा सी पीड़ा से बेचैन हो जाने वाली माँ इतने बड़े हादसे को कैसे सह सकती थी ? पता नहीं छल्लो कहाँ होगी, किस हाल में होगी, सोच-सोचकर माँ तारा लगातार रोती चली जा रही थी। कोई भी सान्त्वना का बोल उसे चुप नहीं करा पा रहा था।

पत्नी के उपालंभपूर्ण वचनों को सुनकर लाला जी को भी भारी खेद हुआ। छल्लो ऐसा कदम उठा लेगी इसकी उनको कल्पना भी नहीं थी। यह अनचाहे ही हो गया। खैर, अब तो आगे की सोचनी है, कि उसे कहाँ ढूँढ़े ? छल्लो की त्याग

कल उठने की आशा में सोया हुआ कोई भी आज तक नही जाग सका। - नलिन

भावनाओं से यद्यपि सब परिचित थे। अतः आश्वस्त भी थे। सबकी जुबाँ पर एक ही बात थी कि वह कहीं संत समागम में ही गयी होगी । फिर भी खोज तो जरूरी थी।

इसी ढूँढ़ में ढूँढ़

अपने अपने नजरिए से हर कोई सुझाव दे रहा था। अपने अपने अनुमान को सभी व्यक्त कर रहे थे। लालाजी के जँवाई लाला रिखबदास जी ने भी अपना अनुमान बतलाया कि **"यदि वह रात्रि को निकली है, तो अवश्य ही महासती मोहनदेवी जी महाराज के पास अंबाला गयी होगी। रात्रि ३ बजे एक गाड़ी अंबाला जाती है।"** रिखबदास जी की इस बात पर सभी को विश्वास हो गया। इसी विश्वास के आधार पर लाला रिखबदास जी एवं भागिनेय वीर कुमारजी अंबाला जाने के लिए रवाना हुए। रेल में बैठे ही दोनों ने विचार किया, मार्ग में जालधंर पड़ता है। वहाँ प्रवर्तिनी राजमती जी महाराज विराजमान हैं। चलो, वहाँ भी देखते चले।

इधर उन दोनों के रवाना होने के बाद जालंधर से अमरनाथ जी के द्वारा सूचना प्राप्त हुई कि उनकी सुपुत्री सकुशल जालधंर में है। सूचना ने सभी को निश्चिंत कर दिया। अब उसे समझा-बुझाकर वापस घर लाने की चर्चा होने लगी। यह तो तय था कि दीक्षा पर लगाये जा रहे अंकुश की ही यह प्रतिक्रिया थी। लाला खैरातीलाल जी अब नये सिरे से इस विषय पर विचार कर रहे थे। अतः लाला माणकचंद जी, लाला खजांची शाहजी, लाला बनारसीदास जी, लाला खैरातीलाल जी आदि जालधंर पहुँचे। वहीं रिखबदास जी और वीरकुमार जी भी मिल गए।

कौशल्या जी परम श्रद्धेया महासती प्रवर्तिनी राजमतिजी म० के सन्निकट बैठी थीं उनके आँखो में निर्भयता एवं दृढ़ता थी। आने वाले खुश थे मानो उन्होंने कोई गढ़ जीत लिया हो।

जाना है सिद्धों के देश

लाला माणकशाहजी आपके ताऊ लगते थे और समाज में भी अग्रगण्य थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम बात छेड़ी -

---

शुद्ध हृदय से निकला हुआ वचन कभी निष्फल नही होता । - म० गांधी

"कौशल्या ! जो हो गया सो हो गया, अब घर लौट चलो, इसी में तुम्हारी और परिवार की भलाई है।"

कौशल्या जी बड़ी कठिनाई से मोह ममता के पाश को तोड़कर घर से निकली थी। पुनः उसी जाल-जंजाल में केसे बधँती ? बोली -

" ताऊजी। अब मेरा घर, सारा संसार है। वह घर मेरे लिए एक उपाधि थी। अब मैं अपने सही स्थान पर आ गयीं हूँ। मेरी भावना को देखते हुए आप लोग मुझे यहीं आज्ञा प्रदान करने की कृपा करें ।"

पुनः ताऊ जी बोले - "बेटी ! मैं भी तो जानूँ कि आखिर तुमको उस घर में क्या तकलीफ है ? जिस घर में तुम जन्मी, पली, पुसी, खेली-कूदी, बड़ी हुई, वही घर आज एकाएक तुमको बंधन लग रहा है। मेरी तो समझ से बाहर की बात है यह।"

ताऊजी द्वारा मोह में खींचने के प्रयास को असफल करती कौशल्या जी बोलीं-" ताऊजी ! जब तक मैंने अपने असली घर को नहीं देखा था। तब तक मैं भी उसी घर को अपना घर समझती थी। लेकिन जब भ्रम के पर्दे टूटे तो मुझे अपना असली घर नजर आया -

"काहे को ऊँच बनाऊँ बसेरा।
साढ़े तीन हाथ घर मेरा ॥"

साढ़े तीन हाथ का यह शरीर ही मेरा असली घर है, जिसमें आत्मा निवास करती है। मुझे उस घर से अधिक इस आत्मा रूपी गृह-स्वामी की चिंता है जो अज्ञान के अँधेरे में भटक रहा है। मैं अब इसे अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना चाहती हूँ। असत् से सत् की ओर ले जाना चाहती हूँ, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाना चाहती हूँ। और इसी के लिए आपसे विनम्र आज्ञा चाहती हूँ।"

ताऊजी नरम पड़े - "तुम्हारे विचार अत्युत्तम हैं बेटी ! पर अभी दीक्षा के लिए पूरी उम्र पड़ी हैं, कभी भी दीक्षा ले सकती हो। इतनी जल्दी क्या है ? अभी तो घर चलो। पिता ने भी ताऊजी की बात दोहराई ।

कौशल्या जी बोलीं - कल किसने देखा है पिताश्री ! शास्त्रकार कहते हैं-

अपने गुप्त से गुप्त विचार भी पवित्र रखो।

" नित्यं सन्निहितो मृत्युः ।
कर्तव्यो धर्म संचयः ॥ "

मृत्यु को सिर पर खड़ी समझकर धर्म मार्ग को शीघ्र अपना लेना चाहिए। अतः मैं आपसे शीघ्र आज्ञा की अपेक्षा रखती हूँ। उम्र पर न जाइए। बड़े-बड़े महापुरूष छोटी उम्र में ही अपने लक्ष्य की ओर बढ़ चुके थे। गजसुकुमार और एवंता कुमार की गुणगाथा हम इसीलिए तो गाते आ रहें हैं। सच पूछें, तो शैशव अवस्था में ही अच्छे या बुरे संस्कारों का निर्माण हो जाता है। और वे ही संस्कार जीवन भर के लिए स्थिर हो जाते हैं।"

कौशल्या का एक-एक तर्क वजनी था। उसकी कोई काट नहीं थी । सभी उसके इन वचनों से प्रभावित थे। ऐसी सुसंस्कारी आत्मा के लिए वे बाधा स्वरूप नहीं बनना चाहते थे। पर अपनी ओर से वे निंरतर प्रयास कर रहे थे। ताऊजी ने वैरागी जीवन की कठिनाईयाँ बतलाई तो पिता ने परिजनों के मोह-बंधन का जिक्र किया। किन्तु कहा भी है -

"चटक न छाँडत घटत हू, सज्जन नेह गंभीर ।
फीको परै न वरू फटे, रंग्यो चोल रंग चीर॥"

मजीठीये के रंग में रंगा हुआ वस्त्र फट भले ही जाए पर उसका रंग कभी फीका नहीं पड़ सकता । इसी प्रकार जिस आत्मा को एक बार सही दृष्टि प्राप्त हो जाती है तो उस आत्मा को विरक्ति के भाव से कोई हटा नहीं सकता ।

कौशल्या जी ने कहा -**"आप मेरे लिए संरक्षण की खोज कर रहें हैं जिनके पल्ले बाँधकर निश्चिंत हो सकें, पर धर्म की शरण से बढ़कर कोई शरण नहीं हो सकता। दूसरी बात, आपको जब किसी खूंटे से मुझे बाँधना ही है, तो वह खूंटा धर्म का ही क्यों न हो, इससे बाँधकर आप पूर्णतः निश्चिंत हो सकते हैं।"**

सबने अपने-अपने पैंतरे आजमा लिये पर कौशल्या उनके तर्क-बाणों को अपने संवेग-बाणों से निरस्त कर रही थी। उसके बाण रामबाण के समान अकाट्य थे। अंततः ताऊजी व पिताजी को दीक्षा की आज्ञा प्रदान करनी पड़ी, उन्होंने गद्गद् कंठ से कहा-

अगर हृदय में सच्चाई है तो उसका असर अपने आप लोगों पर पड़ेगा। - म० गाँधी

"बेटी ! हम तेरी प्रज्ञा से प्रभावित हैं। जो जागृति तूने पाई है, वह हम सबको मुग्ध करती हैं। हमारे कुल का यह सौभाग्य है कि तुझ जैसी कन्या रत्न को हमने पाया। हम तुझे दीक्षा से नहीं रोकेंगे, पर इस समय तुम घर से बिना कहे आयी हो, यह बात हमारी तुम्हारी शान के खिलाफ है। तुम एक बार हमारे साथ चलो । तुम्हारी वैराग्य भावना इसी प्रकार दृढ़ रही तो हम कुछ समय के बाद महासतीजी के चरणों में स्वयं छोड़ देंगे।"

कौशल्या जी कुछ कहती इससे पूर्व ही रिखबदासजी बोल उठे- "मुझ पर विश्वास रख कौशल्या ! यदि तेरे पिताजी इसके लिए ननुनच करेंगे तो उनको मनाने का जिम्मा मेरा रहेगा। अभी तो तूँ एक बार घर चल। घर में परिवार के सब लोग परेशान हो रहे हैं। तुम्हारी माताजी ने तो अन्न का भी त्याग कर दिया है। एक बार घर चलकर उनके मन की व्यथा दूर कर दो, फिर प्रेम से हम सब तुम्हें आज्ञा दे देंगे।

ताऊजी और बहनोई के विश्वासोत्पादक वचनों को सुनकर कौशल्या विचार मग्न हो गई। महासतीजी की ओर देखा। वे मूक द्रष्टा बनी अगले पल की प्रतीक्षा कर रही थी।

कौशल्या जी माँ के वात्सल्यभाव से पूर्ण परिचित थीं। वे जानती थीं कि माँ से मोह नहीं छूटा है मैंने ही मोह छोड़ा है। यदि मैं नहीं गयी तो माँ रो-रोकर पागल हो जाएगी। मैं ही उसका निमित्त बनूँगी। फिर भी उन्होंने मिले हुए आश्वासनों को पक्का करने की गरज से कहा -

"आप पिताश्री से कहें कि मेरे विवाह का वे नाहक प्रयास न करें । यदि उन्होंने मेरे साथ इस विषय में जबरदस्ती की तो मुझे पुनः वही कदम उठाना पड़ेगा जो आपकी शान के खिलाफ हो।" यह सुनकर ताऊजी ने विश्वास दिलाया-

" भला गजराज को कच्चे सूत में कौन कब तक बाँधकर रख सकता है, जो आत्मा मुक्ति के लिए छटपटा रही हो उसे हम कब तक अपनी इच्छा से बाँधकर रख सकेंगे ? कौशल्या ! तुम निश्चिंत रहो, यदि तुम्हारी विवाह की इच्छा नहीं है तो इस विषय में हम तुम्हारे साथ जबरदस्ती नहीं करेंगे । यह हमारा वचन है।"

भेद तो सारी दुनियाँ ही जानती है, और देखती है पर गुरु भेद में अभेद के दर्शन कराकर अभेद का भेद बताते हैं।

ताऊजी के वचन से कौशल्या आश्वस्त हो गयी । शादी न करने का वचन तथा दो महीने में दीक्षा-पथ पर जाने की अनुमति मिल जाने पर उन्होंने सोचा, अब मुझे भी घर न जाने का हठाग्रह छोड़ देना चाहिए।

कौशल्या जी ने आशाभरी नजरों से प्रवर्तिनी श्री राजमतीजी की ओर देखा। तो वे बोलीं-

"कौशल्या ! इसमें कोई संदेह नहीं, कि तुम जैसी वैरागी-बाला अगर श्रमणी संघ में जुड़ जाए तो श्रमणी समाज के गौरव में अभिवृद्धि होगी। तेरा वैदुष्य, तेरा समर्पण भाव और तेरे मन की दृढ़ता ऐसा अवलम्ब है, जो किसी भी महान साध्वी के सबसे बड़े गुण होते हैं..।

"जो परिस्थिति तुम्हारे परिवारीजन बतला रहे हैं उसमें मेरी भी सम्मति है। कम से कम एक बार तो तुम्हें परिवार के बीच में जाना ही चाहिए । इससे परिवार की शोभा बढ़ेगी और तुम्हारें तथा परिवार के विचारों में जो विभेद पड़ गया है वह भी दूर हो जाएगा........।

अतः मेरी राय तो यही है कि तुम घर जाकर परिवार के लोगों से विशेषकर तुम्हारी माताजी को खुशी प्रदान करो। तुम्हारे जाने से माँ का मन स्थिर हो जाएगा और अबकि बार वे भी दृढ़ता से तुम्हें सम्बल प्रदान कर सकेंगी।

कौशल्या ने कहा - "मन तो जाने का नहीं करता परन्तु आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करना मेरा सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। नियति को भी शायद यही मंजूर है कि मैं अभी कुछ दिन और ठहरकर विराग के पथ पर अग्रसर होऊँ। मुझे यह भी विश्वास है कि मेरा लक्ष्य मुझे प्राप्त होगा। अब तो मुझे मुक्ता ही चुनने हैं। पिताजी ! मैं आपकी खुशी का ख्याल कर एक बार पुनः घर लौटने को तैयार हूँ।" पिता की ओर उन्मुख होकर कौशल्या जी ने कहा ।

उनके ये श्रुतिमधुर शब्द सुनकर सब हर्ष विभोर हो गये । कौशल्या जी अपने अभिभावकों के साथ लाहौर लौट आईं। लौटते वक्त उन्हें किसी प्रकार का अपराध बोध नही सता रहा था। वे जैसे एक गढ़ जीतकर आईं थीं। हृदय में अपूर्व प्रसन्नता थी, कि उनके पलायन ने संयमी जीवन में प्रवेश का टिकिट दिला दिया।

परिवार में कौशल्या क्या लौटी जैसे रूका हुआ समय गति पा गया हो ।

जहाँ प्रेम नही होता वहाँ भेद का पर्दा होता है ।

सबके दिलों में खुशी की लहर दौड़ पड़ी। माँ ने गले से लगा लिया। भाई बहनों में दीदी के पास जाने की होड़ लग गयी। काकी ने मीठा उलाहना दिया तो भुआजी ने बीते दिनों का चिट्ठा खोलकर रख दिया। वातावरण में प्रसन्ता अठखेलियाँ करने लगीं। कुछ यों -

" है प्रसन्नता जीवन का अमृत हास सदा सुखदाता ।
भारी दुःख का बोझ हँसी में अनजाने बह जाता ॥ "

लाहौर पहुँचने के पश्चात् कौशल्या जी ने पाया कि स्थितियों में आश्चर्यजनक बदलाव आ गया है। पिताजी ने भी अब उनके व्रत-नियमों में किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न नहीं किया। सब जानते थे कि मुक्त गगन का यह पंछी अब उड़कर ही रहेगा। इसे रोकना हमारी शक्ति से बाहर की बात है । संसार के बंधन में अब इसे बाँधना गजराज को सूत के धागे से बाँधने के समान व्यर्थ है।

और कौशल्या जी ? वे तो घर में रहकर भी वैराग्य की प्रतिमा थीं। यौवन की चपलता का उनमें जरा भी आभास न था। वे अपने क्रिया कलापों में इतनी संयत थी कि सहज ही उनमें गांभीर्य के दर्शन होते थे। अनुराग से वे परे थीं। प्रत्येक वस्तु को देखने का उनका अपना ढंग था। एकांत में बैठकर वे सोचा करतीं -

" जन्मेव व्यर्थतां नीतं भवभोग प्रलोभिना ।
काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिंतामणिर्यथा ॥ "

-भव भव में भ्रमण करते हुए मैंने अपने अनंत जन्मों को यूँ ही गँवा दिया, अब इस जन्म को नहीं लूटने दूँगी। जन्म-जन्म का यह फेर अब उन्हें बोझ लगने लगा था।

युवाचार्य श्री का लाहौर में वर्षावास

उन्ही दिनों मुक्ति की राह दिखाने वाले परम आदरणीय महाश्रमण युवाचार्य श्री शुक्लचन्द्र जी म० का संवत् 2003 तदनुसार सन् 1946 का चातुमार्स लाहौर में हुआ । उनके पधारने से धर्म नगरी लाहौर में बच्चे, बूढ़े, नौजवान सभी में धर्म का उत्साह, लगन चरम सीमा पर पहुँच गया। प्रवचन में 'भगवती सूत्र' पर व्याख्यान होते तो ऐसा लगता भगवान महावीर का समवशरण

जिनसे महासती कौशल्या देवी जी महाराज
को वस्तु तत्व की स्वतंत्रता का बोध मिला था
महासती जी के शिक्षा गुरु
युवाचार्य पंडित रत्न श्री शुक्लचंद्र जी म०



ही लगा हुआ है। एक साथ सैकड़ों सामायिकें होतीं। कौशल्या जी प्रतिदिन प्रवचन में उपस्थित होतीं।

महामुनिराज श्री शुक्लचन्द्र जी म० के प्रवचन की शैली स्पष्ट और सरल थी। वे जब प्रवचन देते तो कठिन से कठिन विषय भी उसी समय आत्मसात् हो जाता। 'भगवती सूत्र' जैसा क्लिष्ट और तत्त्व से परिपूर्ण शास्त्र, आपको व्याख्यानों में ही स्पष्ट हो गया। आपकी किशोरबुद्धि से परे का विषय, पंचास्तिकाय भी आपके लिये सहज सरल बन गया।

आपकी धर्म जिज्ञासा प्रबल थी। जब जिज्ञासा प्रबल होती है तो ब्रह्मरंध्र सक्रिय हो उठता है, वातावरण में स्थित धर्म-विचारों को वह वैसे ही ग्रहण करना शुरू कर देता है जिस प्रकार से रेडियों की सुई वातावरण में संचरित ध्वनियों को अपनी अनुरूपता से ग्रहण कर लेती है। जहाँ से, जैसे भी ज्ञान की ज्योति आपको मिलती, उस ज्योति से आप अपने मन को अलोकित कर लेतीं।

आत्म-स्वातंत्र्य का अवबोध

युवाचार्य श्री के उपदेश को श्रवण कर आपके मन में ये विचार उठते कि **"धर्मास्तिकाय आदि छहों द्रव्य परस्पर भिन्न हैं, कोई किसी की स्वतत्रंता में बाधक नहीं बनता। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय में नहीं मिलता और अधर्मास्तिकाय भी धर्मस्तिकाय के प्रदेशों में मिलकर उसके मूल स्वभाव को परिवर्तित नहीं करता, फिर हमारा जीवास्तिकाय ही पुद्‌गल के साथ क्यों मिलता है? क्यों इसे " मेरा मेरा " कहकर उसकी स्वतंत्रता को छीनता है और क्यों स्वयं के ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणों में न रहकर पुद्‌गल के गुणों को ग्रहण करता है?**

जब ये जिज्ञासाएँ आप म० श्री के समक्ष रखतीं, तो आपकी चिन्तन-शक्ति के प्रति वे चमत्कृत हो जाते। उन्हें यह भी लगता कि अवश्य ही यह कोई मुमुक्षु आत्मा है। वे आपके मन में हिलोरे लेते रहस्यों को गहराई से समझाने लगते। जितना वे समझाते उससे कहीं अधिक सूक्ष्मता से आप ग्रहण कर लेती। पू. शुक्लचन्द्र जी म. के निरंतर सत्संग का आपके मन पर स्थायी प्रभाव पड़ा।

सहयोगिनी सखियाँ



उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकांता जी म०
अम्बाला



सती स्वर्ण कुमारी जी म० दिल्ली

आप सोचतीं "मैं भी अपनी आत्मा को पर संयोगों से हटाऊँगी। पुद्गल का एक परमाणु भी अपने से संलग्न नहीं होने दूँगी। ये वस्त्र, ये आवास, धन-दौलत सबके सब पुद्गल ही तो हैं। इन पर हमारा क्या अधिकार है, मैं पुद्गल को अपने से स्वतंत्र करूँ, न कोई किसी को परतन्त्र करें, न मैं किसी के द्वारा परतन्त्र होऊँ। यह शरीर भी पुद्गल की दी हुई वस्तु है, इस पर से भी ममत्त्व हटाऊँ ?" ऐसे ही संवेग और वैराग्य की लहरों में आप घंटों डूबती-उतराती रहती।

आपका साध्वोचित सादगीपूर्ण व्यवहार देखकर युवाचार्य श्री ने कई बार लाला जी से कहा - " यह कन्या घर में रखने की चीज नहीं है, इसे मोक्ष-मार्ग की पथिका बनना है और अनेकों का उद्धार करना है, इसे रोकना मत।"

सहयोगिनी सखियाँ



आपका मन वैराग्य के ऊँचे झूले में झूल रहा था, इसमें सहयोगी बनीं, आपकी पाँच सखियाँ।

१. "लज्जावती, जो आज उपप्रवर्तिनी स्वर्णकांताजी के नाम से सुविख्यात हैं। अम्बाला में स्थिरवास हैं।

२. श्री स्वर्णाजी, जो महासती "स्वर्णाजी" के नाम से श्री मोहन देवी जी म० व स्व० श्री हुकमदेवी जी म० के उज्जवल यश की अभिवृद्धि कर रहीं हैं। वे आजकल दिल्ली कोल्हापुर रोड़ में स्थिरवास हैं।

३. श्रीमती सौ० कौशल्याजी, जो लद्धामलजी साबुनवालों की सुपुत्री हैं। और स्यालकोट निवासी मदनलालजी की धर्म पत्नी हैं, वे लुधियाना में रहती हैं।

४. श्रीमती राजजी , आप महासती स्वर्णजी को संसारी बहन हैं। आप स्यालकोट निवासी लाला कपूरचंद जैन को ब्याही गयीं हैं। ये गुड़मण्डी वीरनगर कालोनी दिल्ली में रहती है।

५. श्रीमती प्रकाशवती जी, लौहार के नत्थुशाहजी की पुत्री थीं। आप स्यालकोट के लाला फग्गुशाहजी की पुत्रवधु थीं।

साधक पदार्थों का उपयोग करता है, उपभोग नहीं।

आप सभी ने एक साथ चार मास तक युवाचार्य श्री के व्याख्यानों का लाभ लिया । और दोपहर को नित्यप्रति एक साथ शास्त्राध्ययन हेतु जातीं। दोपहर के समय इन सभी सखियों ने महाराज श्री सेउत्तराध्ययन, दशवैकालिकके अर्थ समझे तथा नवतत्व का ज्ञान प्राप्त किया।

एकजुट होकर जब कोई क्रिया सम्पन्न की जाती है तो उसका प्रभाव गहरा होता है। एक साथ धार्मिक अध्ययन करते हुए इन सखियों के जीवन में धर्म की बातें इतनी गहराई से पैंठ गयी कि तीन तो विराग पथ पर ही बढ़ गयी तथा तीन गृहस्थ जीवन में रहकर भी धर्ममय जीवन जी रही हैं। नारी में अगर धर्मनिष्ठा प्रबल हो तो उसका परिवार निश्चित ही [redacted] होता है।

गृहत्याग की तैयारी

चातुमार्स का समय धीरे-धीरे व्यतीत हो गया। युवाचार्य श्री वर्षावास की समाप्ति के दूसरे दिन ही विहार कर गये। उनके प्रस्थान से इन जिज्ञासु कन्याओं को बड़ा खालीपन लगने लगा। धर्म के चिंतन में जो सक्रियता उस समय आई थी, बड़ी प्रबल थी। एकाएक उस पर विराम सा लग गया।

ताऊ जी आपको दो माह का कहकर घर लाए थे, पर घर में रहते आठ माह व्यतीत हो चुके थे। किसी ने ले चलने के लिए कुछ नहीं कहा। कोई कहता भी क्यों ? मोह के पर्दे में सारे वचन ओझल हो गए थे। वे सोच रहे थे कि विराग धीरे-धीरे राग में परिवर्तित हो जायेगा। तब **"भैंस भी मरी और लाठी भी न टूटी"** की तरह वैराग्य का रंग उतर जायेगा और वचन भंग का पाप भी नहीं लगेगा।

पर आप क्षण-क्षण जागृत थीं। धैर्यता से उस समय की प्रतिक्षा में थीं। जब ताऊजी स्वयं ही वचन के अनुसार व्यवस्था करेंगे। आप प्रतिक्षा ही करती रहीं और समय बीतता जा रहा था। इस धैर्यता को कायरता का पर्याय न मान लिया जाए अतः चातुर्मास के अंतिम दिवस आपने ताऊजी को याद दिलाया और पूछा -" मेरे जीवन में वह विरक्ति का क्षण तो आने का समय आपके कहे अनुसार पूर्व में ही आ

जाना चाहिए था। आप उसे भूल क्यों रहे हैं। मेरा मन संयम के पथ पर बढ़ने के लिए मचल रहा है। मुझे अब महासती जी के पास ले चलिए ।"

आपकी एकनिष्ठ वैराग्य भावना देखकर अन्ततः आपके बहनोई रिखबदास जी को अम्बाला जाने के लिए तैयार किया गया । वर्षावास पूर्ण होने के तीसरे दिन ही मृगशिर कृष्णा द्वितीया सोमवार का दिन घर से विदा होने के लिए तय किया गया।

जाने का मुहूर्त निकल जाने पर आपका मन उल्लास से भर उठा । आपके चेहरे पर आत्मिक उल्लास के चिन्ह प्रकट होने लगे । मन में अपार संतोष था कि आखिर मेरी धर्म दृढ़ता ने एक बहुत सुन्दर परिणाम दिया है।

विदा बेला

परिवार में सभी को जानकारी हो गयी थी कि कौशल्याजी अब घर से विदा होने वाली हैं। यूँ भी जालंधर से लौटकर आने के बाद सबको ऐसा लग रहा था कि आप घर में नहीं हैं। क्योंकि आप भोजन करतीं तो अनासक्त भाव से , अधिकतर मौन रहतीं। प्रातः व्याख्यान , दोपहर शास्त्रों का अध्ययन एवं रात्रि को धर्म जागरण में समय व्यतीत हो जाता। शेष समय दैनिक क्रिया-सामायिक, ध्यान, स्वाध्याय आदि में बीत जाता।

आपके सभी भाई-बहन जो उम्र में छोटे थे उन्हें भी आप समयानुसार धर्मबोध कराया करती, उन्होंने सदा ही आपको वैराग्य दशा में ही देखा । वे आपको घर छोड़कर जाने की तैयारी करते देख पूछने लगे - "जीजी ! क्या आप हमें छोड़कर चली जाओगी ? क्या आपको हमारी याद नहीं आएगी ?" उनकी सरल व स्नेहपूर्ण वाणी सुनकर आप कहतीं -

" इस संसार में देखो, मेरे कितने भाई व बहन आत्मा के बोध के बिना दुःखी हैं, वे अशांति का जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे साथ मुझे उनको भी देखना है, बोध देना है।"

यह सुन वे आपस में कहते -

सबसे बड़ा दीन दुर्बल वह है जिसका अपने ऊपर नियंत्रण नहीं।

"देखो, हम तो कितने छोटे परिवार में रहते हैं, जीजी को यहाँ से जाने पर बड़ा सारा परिवार मिलेगा। इसीलिए तो जीजी का चेहरा सौम्य है, आँखो में एक भी आँसू नहीं है। परंतु हमारा बहुत कुछ लुट रहा है, इसीलिए हम दुःखी हैं, हमारी आँखो में आँसू हैं।"

अभी तो दीदी रवाना नहीं हुई थी मगर वे अभी से यह सोचने लगे, कि दीदी का हमारे बीच रहना वैसा नहीं रहा जैसा पहले था। तब वह हमारे बीच में ही मिली-जुली रहती थी, पर अब तो वे घर में ही साध्वी की तरह हो गयी हैं। आपने उनके मन के भाव पढ़ लिये थे। अतः बोलीं - "देखो मै सारे मोह-बंधन छोड़कर जा रही हूँ, क्योंकि मेरा मन वैराग्य में ही रमता है पर तुम भी याद रखना कि अपने को किसी भी चीज में लिप्त मत रखना। धर्म को ही अपना सहारा समझना और जब भी कोई समस्या उठ खड़ी हो तो उसका हल धर्म के कथनों में ही ढूँढ़ना, तुमको अवश्य ही हल मिलेगा।

कौशल्या जी, माता तारा देवी की आँखो की तारा थीं, पिता की आशाओं की केन्द्र थीं। अन्य परिजनों के सुख-दुःख की साथी थीं। सब आपको अपना आत्मीय मानते थे। विदा करते हुए सबको पीड़ा हो रही थी। कौशल्या जी सबकी आकांक्षाओं की केन्द्र थीं। सबका हृदय वेदना से फटा जा रहा था। भाई, बहन, चाचा, चाची आदि के साथ ही माता, पिता, बुआ की आँखे भी नम थीं। परिवार की हर इकाई आपके वियोग में दुःखी थी।

आपने माँ से आशीर्वाद लिया, पिता को नमन करके जैसे ही क्षमायाचना की मानो एक रूका हुआ प्रवाह सहसा गतिमान हो गया हो, चट्टान से निर्झर फूट पड़ा हो, इस प्रकार पिता की आँखो से आँसुओं की झड़ी लग गई। वे कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं थे।

आप चलने लगी तो माँ ने एक बार फिर सजल नेत्रों से अपनी लाड़ली छल्लो को देखा, मानो वह ममता की मूर्ति अपनी सारी ममता उसके हृदय में उँड़ेलना चाहती हो। उसका कलेजे का टुकड़ा आज उससे दूर जा रहा था।

तारा देवी, अश्रु से पगी, अपनी बेटी को निहार-निहार कर उद्विग्न हो रही थी। उन्हें यह पता था कि 'छल्लो' जिस पथ पर जा रही है वह पथ ही उसका निश्चित

अपना मूल्य समझो और विश्वास करो कि तुम संसार के सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति हो।

पथ है, पर माँ की ममता सब कुछ जानते हुए भी अपने को रोक नहीं पा रही थी। मानों वे यह कहना चाह रही हों। -

"मेरी प्यारी छल्लो, आज तू हमसे विदा ले रही है, तो हमारी आँखों से सावन भादो बरस रहा है परंतु एक तरह से यह स्वागत - भाव है। जिस पथ पर तू जा रही है हम उस पर अपने अश्रुओं से छिड़काव कर रहे हैं, उस पथ को निर्मल कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि तू ऐसी साधना करे कि अपने कुल की कीर्ति-पताका अत्युच्च गगन-मंडल में फहराने लगे। तू धर्म की अपूर्व प्रभावना करे ......।" यह भाव लाते हुए माँ ने पल्लू से अश्रु पौंछे, पर पौंछने पर भी वे रूकने वाले कहाँ थे ? वे तो बार-बार अपनी प्यारी बिटिया से मिलने के लिए हृदय से उछल उछलकर बाहर आ रहे थे। पिता उस समय ऐसे निश्चेष्ट हो रहे थे, मानो उनके हृदय की धड़कन बंद हो गई हो, भाई-बहन आश्चर्य से आँखे ऊपर कर कभी माँ को देखते तो कभी पिताजी को। कौशल्या जी अपने बहनोई के साथ ट्रेन में बैठ चुकी थी।

गाड़ी के डिब्बे आगे से आगे सरकते चले जा रहे थे। उसको जाते देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो गाड़ी उनकी अमूल्य धरोहर को लेकर चली जा रही है। सभी उस डिब्बे पर नजरें टिकाए हुए थे जिसमें कौशल्या जी थी । और उसे वे तब तक देखते रहे जब तक देख पाना उनके लिए संभव था। अंततः सभी भारी मन से घर पहुँचे। सर्वस्व छीन जाने पर जैसे कोई उदास हो जाता है। इस प्रकार सब उदासीन से दिखाई देने लगे।

माता-पिता की अन्तर्व्यथा

पिता का हृदय तो इतना व्यथित था कि कौशल्या के जाते ही उन्होंने खाट पकड़ ली । उनके मन को गहरा आघात लगा था। बेटी वियोग की अपेक्षा उन्हें इस बात की पीड़ा अधिक थी कि उन्होंने अपनी अधिकारी वृति से बेटी को कदम-कदम पर कैसी पीड़ा पहुँचाई थी ? कितने-कितने कष्ट दिये थे एक मुमुक्षु आत्मा को ? आज वे सब दृश्य उनकी आँखों में रह-रहकर उभर रहे थे । वे बार बार यही सोच रहे थे -

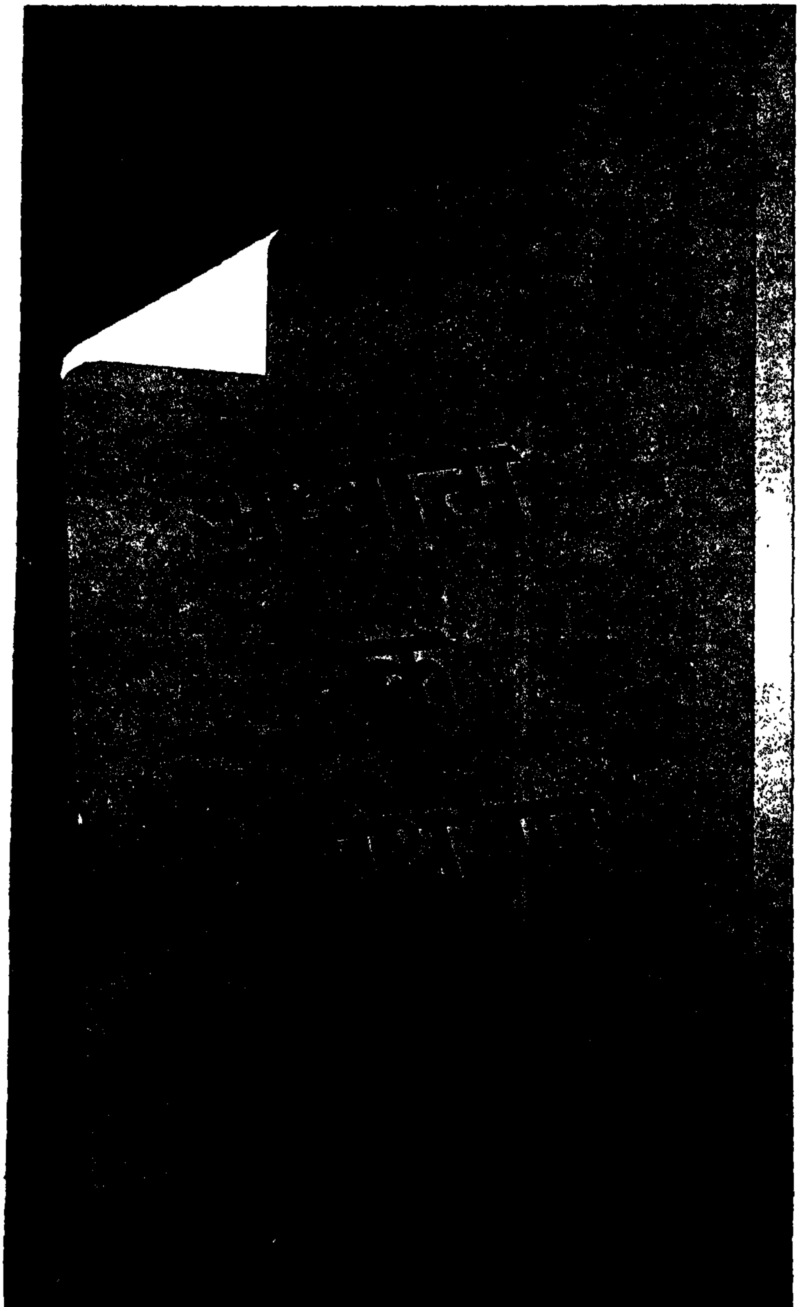
"मैंने उसके साथ बहुत ज्यादती की। उसके नियमों को भंग कराने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी, फिर भी उसने कभी कोई शिकायत नहीं की। कितनी ही बार उसके प्रासुक पानी पर रोक लगा दी, वह जेठ-वैशाख की गर्मी में दिन भर प्यासी रह जाती। फिर भी उसने कुछ नहीं कहा। मैं जब भी उसकी भावनाओं पर कुठाराघात करता वह दुगुने उत्साह से उसे सहन करती थी। नियमों के प्रति कितनी दृढ़ता थी, उसमें ? वह कितनी सहनशील कन्या थी ....?"

पिता सोचते ही जाते और अथाह पीड़ा से भर जाते। सोचने का उनका क्रम चलता ही रहा - "..........संयम के प्रति उसके मन में कितनी उत्कृष्ट भावना थी। मैं उसकी भावना को समझ नहीं पाया इसीलिए इतना निर्मम हो गया था। वह हीरा थी, हीरा। मैं उसका मोल नहीं समझ पा रहा था। जो व्यक्ति हीरे को काँच का टुकड़ा समझे। उसकी मूर्खता का क्या कहना............ ?

कौशल्या जी की माँ तो जैसे बावली ही हो गयी थी अपनी पुत्री के वियोग में हर जगह उनको अपनी छल्लो दिखती थी। जड़-चैतन्य सभी में उनकी छल्लो स्थित थी। कभी कपड़े उठाकर कहती - "ये कपड़े मेरी छल्लो ने खुद सीये थे। इस शाल पर कितनी सुंदर कढ़ाई की थी, मेरी छल्लो ने। इस साड़ी पर उसी के हाथ के सलमे सितारे जड़े हैं।" कभी पुस्तकों की अलमारी खोलकर पुस्तकों की झाड़-पोंछ करती कहती -" मेरी छल्लो सारा दिन इन्हीं पुस्तकों में तन्मय रहती थी।"

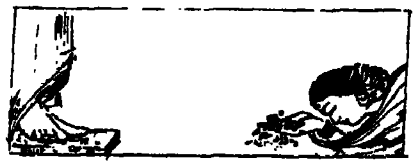
कौशल्याजी जहाँ बैठकर सामायिक करती थी, वह कमरा अब माँ का साधना-कक्ष बन गया था। छल्लो के संस्पर्श से दीप्त एक-एक स्थल माँ की अमिट स्मृति बन गये थे। छल्लो ने यहाँ रहकर जिन भावों को उच्चता प्रदान की, वे सभी माता की यादों में उभर रहे थे। छल्लो की सहनशीलता, धैर्यता, गंभीरता की याद कर माता का चेहरा आँसुओ से भीग जाता था। बेटी के प्रति उनका ये बावलापन उन्हें सचमुच ही बावला बना गया। वे स्मृतियाँ ही संजोती रही। पर कभी भी उतना साहस, उतनी क्षमता नहीं जुटा सकी कि बेटी से मिलने अम्बाला जाती। ये स्मृतियाँ मात्र ही उनके हृदय की धड़कन थी। उनमें ही उन्हें जीवन का रस मिल रहा था। घने स्मृति - वन में बेटी को खोज-खोज कर पा लेने की आशा को वे जीवंत कर रही थीं।

मन को समान रखे वही महान है।



अध्यात्म के पथ पर

गुरू चरणों में



कौशल्या जी अपने बहनोई के साथ महासती श्री मोहनदेवी जी म० के श्रीचरणों में पहुँची। आप जैसी धीर, गंभीर, गुणों की खान शिष्या को पाकर महासतीजी अत्यन्त प्रफुल्लित हुई। परन्तु प्रकट रूप में उन्होंने आपको साधना जीवन की कठिनाईयाँ बताई और जब आपने अपना दृढ़ निश्चय पुनः दोहराया तो महासतीजी को यह आभास हो गया कि कौशल्या जी आगे जाकर एक महान साधिका सिद्ध होंगी, क्योंकि आप 17 वर्ष की आयु में अत्यंत परिपक्व साधिका लगने लगी थीं।

वस्तुतः साधुत्व की राह उन्हें कठिन लगती है जो लक्ष्य को नहीं वरन् पथ की दुरूहता को विचारों मे संजोते हैं। लक्ष्य पर पहुँचने की भावना जिसमें हो, काँटों की सेज भी उनके लिए फूलों का बिछौना बन जाती है। उसी की यात्रा सुगम होती है जो मन पर उसका बोझ लेकर नहीं चलता। आपने भी अपने आपको पूरी तौर पर यात्रा की सक्रियता, अनवरतता में सक्षमता से स्वयं को जोड़ लिया था।

जिस समय आप अम्बाला महासती जी के पास पहुँची, चातुर्मास संपन्न हो चुका था। साध्वीमंडल ने साध्वाचार के नियम के अनुसार विहार की तैयारी कर ली थी। चातुर्मास काल को छोड़कर साधुओं का यह नियम रहता है कि वे "चरैवेति-चरैवेति" की उक्ति को जीवन में अपनाकर निरन्तर विहार करते रहें। इससे साधुता की मर्यादा बनी रहती है। क्षेत्र की आसक्ति और भक्तगणों से आसक्ति की भावना टूटती हैं। बंधन में ही दुःख है और सकुंचित होकर रहने में दोष है, किंतु

भोग को भक्ति में मिला देने से भोग 'योग' हो जाता है।

विस्तार में विकास है, परितृप्ति है। साधु कदम- कदम चलकर जब एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाता हैं तो "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना परिपुष्ट होती है। वह मैत्री और प्रेम की भावना को विस्तृत कर अपनी निराकुलता, त्याग व आत्मा के वैभव को प्राणिमात्र में वितरित करता हुआ चलता है। समस्त जीव सृष्टि के साथ स्नेह-सौहार्द व अपनत्व जागृत करने का खुला उपक्रम साधक दशा में रहकर विहारचर्या करते हुए ही किया जा सकता है। कहा भी है -

" सन्तों की यात्रा आनंद सम्प्राप्ति की यात्रा है।
दुःखी मानवता के लिए योग्य दवा की मात्रा है।
जहाँ जहाँ पड़ते हैं सत्पुरूषों के चरण,
वहीं बनता है तीर्थधाम, यह संस्कृति की छात्रा है। "

संत विहार कर, जिस क्षेत्र में पहुँचते हैं वहाँ एक अपूर्व आनंद की सृष्टि होती है, और जहाँ से वे विहार करते हैं एक रिक्तता का अनुभव होता है। परन्तु यह रिक्तता ही तृषा को जगाती है और उसी के कारण पुनः प्रतीक्षा का परिवेश उभरता है। संयोग-वियोग का यह क्रम, आनंद और पीड़ा का यह उपक्रम जीवन को एक संतुलित अवस्था का उपहार देता है।

महासती मोहनदेवी जी म० पाद विहार का आनंद लेती हुई अम्बाला से राजपुरा, शम्भू आदि अनेक क्षेत्रों को पावन करती हुईपटियालापधारीं। कौशल्याजी को तब तक अम्बाला में भुआ के घर रहना पड़ा, जब महासती जी पटियाला पहुँच गई तो आप भी अम्बाला से महासतीजी के पास पटियाला आ गईं।

पटियाला में धर्मोद्योत ☆

पटियाला राजा महाराजाओं का नगर कहा जाता है। यह प्राचीन 'पेप्सु' राज्य की राजधानी के रूप में रहा है। पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी के लगभग "बाबा-आलासिंह" नामक सिक्ख राजा ने इस नगर को बसाया था। आज यह शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र है। कॉलेज और शिक्षा संस्थानों की श्रृंखला यहाँ की विद्याभिरूचि को प्रकट करते हैं। प्राकृतिक वैभव से भी यह नगर समृद्ध है। स्थान-स्थान पर उद्यानों के कारण नगर की शोभा में अभिवृद्धि होती है।

मूर्ख को पानी में उल्टेपन का और अज्ञानी को आत्मा में शरीर का अध्यास होता है।

धार्मिक दृष्टि से भी पटियाला अग्रणी रहा है। महाप्राण मुनिवर श्री मायारामजी म० की यह दीक्षाभूमि है। जैन धर्म दिवाकर, श्रमण-संघ के प्रथम आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी म० की दीक्षा का सौभाग्य भी पटियाला जिले के ही "छत्त-बनूड़" गाँव को मिला था। धर्म की विभूतियों के संस्पर्श से , उनके जीवन के विशिष्ट अवसरों से भूमि की पावनता में अभिवृद्धि के कई आयाम जुड़ जाते हैं। सहज ही वह भूमि; जो संतजनों के किसी भी कल्याण का हेतु होती है, संयम का, उज्जवलता का सेतु बन जाती है।

संवत् 2003 में श्रद्धेय महासती श्री मोहनदेवी जी म० अपनी शिष्याओं के साथ पटियाला पधारीं। वह समय सन् 1947 का प्रारंभ था। सर्वत्र साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना फैल रही थी। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के विभाजन की गोटियाँ बिठाई जा रहीं थीं। हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे के शत्रु बनकर विनाश के भंयकर भावों से भर गये थे। ऐसे विकट समय में उस हिन्दू राज्य में यह साध्वी मंडल मानों शांतिदूत बनकर प्रवेश कर रहा था।

पटियाला पधारते ही महासती मोहनदेवी जी की सरल निर्मल और सरस वाणी सहस्त्र धाराओं में बरसने लगी। पटियालावासियों के दिल से वैर और कल्मष के भाव धुलने लगे। उनकी अमोघवाणी ने लोगों के दिलों में प्रेम और अहिंसा का विस्तार किया, द्वेष की धधकती आग को रोका। पटियाला में महासती जी का पदार्पण इतना लाभप्रद रहा कि वह क्षेत्र इस अवधि में निरापद क्षेत्र बना रहा, सब हर्षित थे।

राग पर विराग की विजय

पटियाला में आप वैराग्य अवस्था में विद्याध्ययन कर रहीं थीं । लेकिन आपका मन क्षण-क्षण संयमी जीवन प्राप्त करने को लालायित हो रहा था। उन्हीं दिनों आपके पिताश्री का अपनी बहन की अस्वस्थता की पृच्छा के लिए अम्बाला आना हुआ तो वे पटियाला आपसे मिलने आ गए। पटियाला में आपको देखकर पुनः मोह जागृत हो गया और माँ की बीमारी का बहाना करके आपको पुनः लाहौर ले आए।

ऊँचाई में पहुँचकर आकाश ही आकाश है,
गहराई में पहुँकर प्रकाश ही प्रकाश है ।

लाहौर आने के बाद आपको पता चला कि माँ की बिमारी तो एक बहाना थी। पिताश्री मोहवश झूठ बोलकर आपको वहाँ ले आए थे। आपने विचार किया, कि अब शीघ्र ही संयम के पावन पथ पर बढ़ जाना चाहिए , अन्यथा यह दमित मोह पुनः किस रूप में उभर आए, क्या पता ? दूसरी तरफ भारत के क्षितिज पर अशांति के बादल उमड़- घुमड़ कर मंडरा रहे थे, वे किस समय बरस जाएँ, देशवासियों पर कब कष्टों और संकटों का कहर ढह जाए, पता नहीं, अतः शीघ्र दीक्षा हो जाये तो अत्युत्तम रहेगा। आपने अनुनय करके पिता से कहा-"मुझे दीक्षा की आज्ञा प्रदान करें। मैं फाल्गुन मास में ही दीक्षा ले लेना चाहती हूँ।"

पिता ने कहा - " बेटी, इतनी शीघ्रता किस बात की ? मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, इस समय मैं दीक्षा महोत्सव में नहीं आ पाऊँगा। माँ का मस्तिष्क भी स्वस्थ नहीं है, वह भी दीक्षा में नहीं पहुँच पाएगी। अमृतलाल (आपके छोटे भाई) को पोलियो को बिमारी ने घेर लिया है। एक वर्ष की घोर पीड़ामय स्थिति का सामना करके भी वह रोगमुक्त नहीं हुआ है। अब कुछ पैर टिकाने में समर्थ हुआ है, उससे छोटे भाई को टी० बी० है। इन सब पीड़ाओं से थोड़ी राहत मिले तो मैं दूसरी बात सोचूँ।"

पिताश्री ने ढेर सारी समस्याओं के पहाड़ एक साथ खड़े कर दिये तो आपको लगा कि इन सबको लांघना तो बहुत ही मुश्किल है। इस तरह तो दीक्षा में न जाने कितना समय लग जाये। अतः आपने कहा - "पिताश्री ! आपका कहना यथार्थ है। आपने जो अस्वस्थता की स्थितियाँ मेरे समक्ष रखीं, वे आज की तो हैं नहीं। आपका व माताजी का स्वास्थ्य तो पहले से ही अस्वस्थ है। देश की स्थिति भी चिंताजनक है। शुभ कार्य जितना शीघ्र हो जाये, उचित है।"

पिता ने समझाते हुए कहा -"बेटी ! तुम्हारी भावना अत्युत्तम है, फिर भी हमारे घर में यह प्रथम दीक्षा होने जा रही है, उसमें भी हम लोग न पहुँच सकें, तो दीक्षा का आनंद ही क्या आएगा ? तूँ वर्ष दो वर्ष और रूक जा, फिर हम तेरी धूमधाम से दीक्षा करेंगे।"

कौशल्याजी को तो असंयमी जीवन का एक-एक क्षण एक-एक युग की तरह प्रतीत हो रहा था, फिर भला दो वर्ष रुक जाना उनके लिए कहाँ संभव था? उन्होंने कहा-"पिताजी ! दीक्षा तो आत्म-कल्याण का मार्ग हैं, इस मार्ग पर उद्यत

अनाज के कण, समय के क्षण और लगनशील मन तीनों है महान धन।

हुआ मेरा मन अब चिरकाल तक ठहरने की स्थिति में नहीं है। आप भले ही न पधार सकें, पर मुझे आज्ञा प्रदान कर दीजिए। आत्म-कल्याण हेतु उन्मुख हुई मेरी आत्मा धूमधाम की अपेक्षा नहीं रखती। अतः आपसे मेरी विनम्र विनती है, कि मुझे दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर, जिनशासन की प्रभावना करने में सहयोगी बनें।"

पिताश्री ने कौशल्याजी के वैराग्य को अंतिम श्रेणी तक परख लिया था, उन्होंने अब और अधिक बाधा डालना उचित नहीं समझा, अतः मौखिक आज्ञा प्रदान करते हुए बोले - "कौशल्या ! तू तो जिस दिन पैदा हुई थी, उसी दिन से धर्म को समर्पित हो चुकी थी, पर मेरा मोह-विह्वल मन तुझे संसार में बांधे रखने का व्यर्थ प्रयास करता रहा, अब तेरे वैराग्योत्पादक वचनों को सुनकर मैं चिरकालीन मोह-निद्रा से जागृत हो गया हूँ। उस मंगलमय महामार्ग पर मैं तो अपनी जिन्दगी में बढ़ नहीं सकूंगा। लेकिन मैं तुझे उस मार्ग पर बढ़ने की सहर्ष आज्ञा देता हूँ। बेटी ! तू मेरे कलेजे का टुकड़ा है, इस मार्ग पर चलती हुई सदा आनंद का अनुभव करना। यदि एक बार भी तेरा मन व्यथित हुआ या शिथिल हुआ तो मेरे मन को कभी शांति नहीं मिलेगी। जाओ बेटी। तुम्हारा मार्ग शुभमय हो, मंगलमय हो ...." कहते हुए खैरातीलाल जी फूट पड़े।"

आठ दिन लाहौर में रहकर आप पुनः महासती जी के पास पटियाला आ गईं। उस समय आपका रोम-रोम प्रफुल्लित हो रहा था, पिता के चट्टान से दिल को आपने वैराग्य की अनवरत लहरों से नम्रीभूत कर दिया था, राग पर विराग की विजय के ये क्षण आप में अपूर्व आत्मबल का संचार कर रहे थे।

सब ओर से आज्ञा

"दीक्षा की आज्ञा मिल गयी है," यह बात सर्वत्र हवा की तरह फैल गई। पटियाला के प्रमुख श्रावकों ने यह निर्णय लिया कि इस सुयोग्य कन्या का दीक्षा महोत्सव पटियाला क्षेत्र में ही हो। वे मानते थे और जानते भी थे कि कन्या की दीक्षा से संघ का गौरव बढ़ेगा। पटियाला का नाम चमक उठेगा, अतः महासती मोहनदेवी जी के चरणों में अपने यहाँ दीक्षा महोत्सव करने की विनती की। महासतीजी ने संघ की भावनाओं का आदर करते हुए दीक्षा की स्वीकृति दे दी। दीक्षा के लिए

मुहूर्त निकलवाया गया, तो चैत्र कृष्णा पंचमी मंगलवार का शुभ दिन दीक्षा के लिए तय हुआ। अब आप संयमी जीवन की परीक्षा देने के लिए स्वयं आचार्य श्री आत्माराम जी म० के सम्मुख लुधियाना में प्रस्तुत हुए। उस समय युवाचार्य श्री शुक्लचंद्रजी म० भी वहीं पर विराजमान थे। कौशल्याजी को आचार्य श्री कुछ पूछें उससे पूर्व ही युवाचार्य श्री ने आपश्री का विस्तृत परिचय दे दिया। आप श्री के अध्ययन, वैराग्य, स्वभाव आदि की जानकारी दी।

आचार्य श्री से सहर्ष आज्ञा प्राप्त कर आप जालंधर में विराजित प्रवर्तिनी श्री राजमती जी म० के पास गईं और उनसे विनम्र आज्ञा प्राप्त की। माता-पिता की आज्ञा तो उसी दिन मिल चुकी थी जिस दिन उन्होंने अपनी प्यारी छल्लो को विदा किया था, तथापि श्री संघ ने जब उन्हें पत्र द्वारा विनती की और आपका भी पत्र गया तो उन्होंने शुभाशीर्वाद के साथ आज्ञा-पत्र भेज दिया। पिता ने अपनी प्रिय पुत्री के लिये अपने स्नेहसिक्त ह्रदय को जड़ लेखनी से पत्र में उंड़ेलते हुए लिखा -

"हमारे कलेजे का टुकड़ा छल्लो ! तू हमारी हृदय ममता की केन्द्र बिन्दु है। पर तेरा निश्चय भी पाषाण सा अचल है, यह जानकर ही हम दीक्षा की अनुमति प्रदान कर रहे हैं। तेरा हिया हमारा हिया है। अब हम तेरी राह में बाधक नहीं बनेंगे । तुझे साधना में सुख है तो हमें तेरे सुख में सुख है। हमारी अभिलाषा यही है कि अपनी वंदनीया गुरूणी जी की सेवा तन-मन से करना। सेवा बहुत कठिन कार्य है, यह सुयोग नगर की हलचल पूर्ण दुनियाँ से दूर रहकर एकांत में योग साधना करने वाले साधक के लिये अत्यंत दुष्कर है, लेकिन तू सेवा को ही आत्म-साधना समझना और उससे बचे समय में अपने आत्म-मन्दिर में ज्ञान का दीप प्रज्जवलित करना ।"

उक्त पंक्तियाँ लिखते-लिखते पिता खैरातीलाल जी का वज्र हृदय मोम बनकर पिघल उठा। आँखो से ममता के दो अश्रुबिन्दु ढुलक कर पत्र पर आ गिरे। उन्होंने पत्र बन्द किया और सेवक के हाथ पटियाला भिजवा दिया। एक पत्र संघ के नाम से लिख दिया।

दीक्षा का अर्थ है - देह को छोड़कर आत्मा की खोज ।

पिता के पत्र में उनका हृदय प्रकट हुआ था। ममता, सीख और ज्ञान के बोल एक साथ पत्र में प्रकट हुए थे। एक तरह से यह पत्र एक दस्तावेज ही था। एक साधिका की दृढ़ता के आगे पिता ने एक तरह से समर्पण कर दिया था। मोह पर विराग की विजय का प्रतीक था यह पत्र। कुल मिलाकर पत्र भावना से परिपूर्ण था।

माता-पिता का आज्ञा पत्र प्राप्त होते ही आपका मन वैराग्य की पावन लहरों में डूबने उतराने लगा। माता-पिता के प्रति आप कृतज्ञता के भावों से भर उठे। उनकी अभिलाषा व अंतिम इच्छा को आपने अपने हृदय-पट पर अंकित कर लिया। 'सेवा ही मेरी साधना है' इस संकल्प को दृढ़ निश्चय के साथ आपने मन ही मन कई बार दोहराया।

स्वागतम् ! शुभ मंगलम् !

सब ओर से आज्ञा आते ही पटियाला निवासी दीक्षोत्सव की तैयारियों में जुट गए। दीक्षोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चतुर्विध श्री संघ के पास स्थान-स्थान पर निमंत्रण पत्र भेजे जाने लगे। समग्र जैन समाज में उत्साह की अनुपम लहर दौड़ गई।

दीक्षा देवी के दिव्य दर्शन को लालायित विरक्ता कौशल्याजी का घर-घर में स्वागत व अभिनंदन आयोजित होने लगा। स्नेह भोजों का ताँता सा बंध गया। प्रत्येक परिवार कौशल्याजी का स्वागत आयोजन करने में जी जान से जुटा हुआ था। रात्रि को गीतों के कार्यक्रम जोर शोर से संपन्न होते। कभी कोई टोली आती, कभी कोई मण्डली। पन्द्रह दिनों तक गीतों का अभूतपूर्व कार्यक्रम चला। गीतों में बहुधा अध्यात्म के स्वर होते, विराग की महिमा होती तो कुछ-कुछ रागियों के द्वारा गाये जाने के कारण राग की गंध भी मिली होती। दोनों पक्षों का विभेद स्पष्ट होता जाता। गीतों की लय में दीक्षार्थिनी जैसे बहती चली जाती। एक प्रवाह में तिर रही नाव की नायिका के रूप में वह सबकी दर्शनीय थी। सांसारिकता की लहरों में, धर्म की नाव और आस्था की पतवार लेकर वह मुक्ति की ओर अग्रसर हो रही थी। सारे तूफान थम चुके थे, लहरों का आलोड़न-विलोड़न अब अनुकूल हो चुका था।

कौशल्याजी को कोई नये-नये वस्त्रों से सुशोभित करता, कोई गहनों से। सब अभिभावक के पद पर स्थित होने को समुत्सुक थे, न किसी पर कोई बंधन था, न ही नियंत्रण। कौशल्या जी उन सबकी व्यर्थता को जानती हुई भी सब कुछ धारण कर रही थीं और कमल-दल पर दमकते जल-बिन्दुओं की तरह निर्लिप्त भाव से उन्हें ग्रहण कर रहीं थीं। मन इन सभी प्रपंचो से दूर किसी ज्योतिर्मय सत्य को अपलक निहार रहा था। क्योंकि जिसे संयम रूपी विशुद्ध धन और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह रूपी महान अलंकरणों को प्राप्त करने की कामना हो, उसको ये निष्प्राण वस्त्राभूषण केसे तृप्त करते ? आपके लिये ये सब भार रूप ही थे। पर आप "सदा समभावी अष्टमी के चन्द्रमा" की तरह थीं, जिनके समत्वभाव में पहनने या पहनने का भाव ही समाप्त हो चुका था। पहनने वाला जड़ शरीर था, पहनाने वाले थे संसारी मोही प्राणी, और पहनाए जा रहे थे जड़ पदार्थ। जड़ ही लेने वाला, जड़ ही देने वाला और जड़ ही वस्तु दी जाने वाली। उन सबके मध्य वह वीर बाला चैतन्य का एक ज्योतिर्पुञ्ज पृथक् ही चमक रही थी। जो पहनाया जा रहा था वह पहन रही थी, जो खिलाया जा रहा था, वह खा रही थी, लेकिन थी वह अन्तर में पूर्ण निर्लिप्त।

हर कोई जानता था कि ये आभरण अब केवल अंतिम बार की क्रिया के रूप में है। जैसे कोई व्यर्थ-वस्तु कूड़े में फेंकने से पहले बुहार कर एक स्थान पर इकट्ठी की जाती है और फिर उसे बटोरकर फैंक दिया जाता है, कुछ इसी तरह इन वस्त्राभूषणों से प्रगट हो रहा था, जिन्हें एक साथ त्यागकर उन्हें विराग के पथ पर बढ़ना था। अपूर्व त्याग के पूर्व यह प्रतीक रूप त्याग था। प्रत्येक जन उन्हें बड़े स्नेह से निहार रहा था, अनेकों को विस्मय था कि इस छोटी उम्र में इतने उत्कृष्ट भाव ? मोह, ममत्व, इच्छा को परवान चढ़ाने के दिनों में ये एकदम विपरीत भाव त्याग की महिमा ही तो दर्शाते हैं। सत्य है, भावों की उच्चता के लिए उम्र कोई बाधा नहीं होती और जब उच्च भाव प्रकट हो जाते हैं तो बाधाओं का अस्तित्व ही नहीं रहता। वस्तुतः मानव, प्रकृति की सबसे अनूठी कृति है। मानव में एक

दृष्टि दृश्य से मुक्त हो, दृष्टा पर आ जाए तो 'ध्यान', दृष्टि दृश्य से बंधी हो, वह है 'विचार' ।

ओर भावों का उत्ताल आवेग है तो दूसरी ओर दृढ़ता की अडिग चट्टान भी है। एक ओर ऊहापोह है तो दूसरी ओर स्वस्थ निर्णय शक्ति।

दीक्षा का मांगल्योत्सव

चैत्र कृष्णा पंचमी मंगलवार सम्वत् २००३ का मंगलमय दिनविरक्ता कौशल्या के जीवन में पूर्ण मांगल्य लेकर प्रकट हुआ। पटियाला के गली - कूचे सजने- धजने लगे। विरक्ता को दिव्य वस्त्रालंकारों से सुसज्जित किया गया। अंतिम बार उसे सांसारिक रूप में संवारा गया। हाथों में मेंहदी के मांडने थे, उत्कृष्ट वेश सज्जा थी।

पटियाला के राजा जैन धर्म से बहुत प्रभावित थे। जैन संतो एवं साध्वियों के प्रति उनके मन में बड़ा आदर भाव था, यही कारण था कि उन्होंने अपने राज्य में नौ चौधरी प्रमुख श्रेष्ठियों को चुना था, उनमें सात चौधरी जैन समाज के थे।

सिक्ख राजा को ज्ञात हुआ कि मेरे नगर में एक वीर कन्या संसार के समस्त भोगों को छोड़कर महावीर के मार्ग का अनुसरण कर रही है, तो उसने अपनी ओर से, विरक्ता के लिए "शाही पालकी" भेजी, राजकीय बैंड व जुलूस की शोभा वृद्धि के लिए अन्य साजो सामान प्रदान किये। राजा द्वारा प्रेषित शाही पालकी को उठाने के लिए 16 व्यक्तियों को भेजा। इस पालकी पर स्थितप्रज्ञ सी बैठी विरक्ता कौशल्याजी उदयाचल पर स्थित सूर्य के समान सुशोभित हो रही थी। नगाड़े, नफीरी, बैण्ड आदि नानाविध वाद्य यन्त्रों की ध्वनि प्रतिध्वनित होकर धरती और आकाश में व्याप्त हो गयी। झण्डे, झण्डियाँ, बेनर, छत्र, चंवर लेकर अनेकों स्वयंसेवक शोभा यात्रा में प्रारंभ से ही उपस्थित हो गए थे। पालकी के पीछे रंग-बिरंगे परिधानों से सुसज्जित महिलाएँ मंगलगान गाती चल रही थी, अवनि अम्बर उल्लास से परिपूर्ण थे। बच्चे, बूढ़े, नौजवान, महिलायें, युवतियाँ सभी इस जुलूस में सम्मिलित थे। सभी एक ही दिशा में बढ़ते चले जा रहे थे, सभी में अपूर्व उत्साह था। स्थानीय व बाहर से आए अनेक धर्म श्रद्धालुओं से जुलूस की शोभा बहुगुणित हो चुकी थी। इतने विशाल जुलूस को देखने के लिए मानों इन्द्र को अपने दो नयन

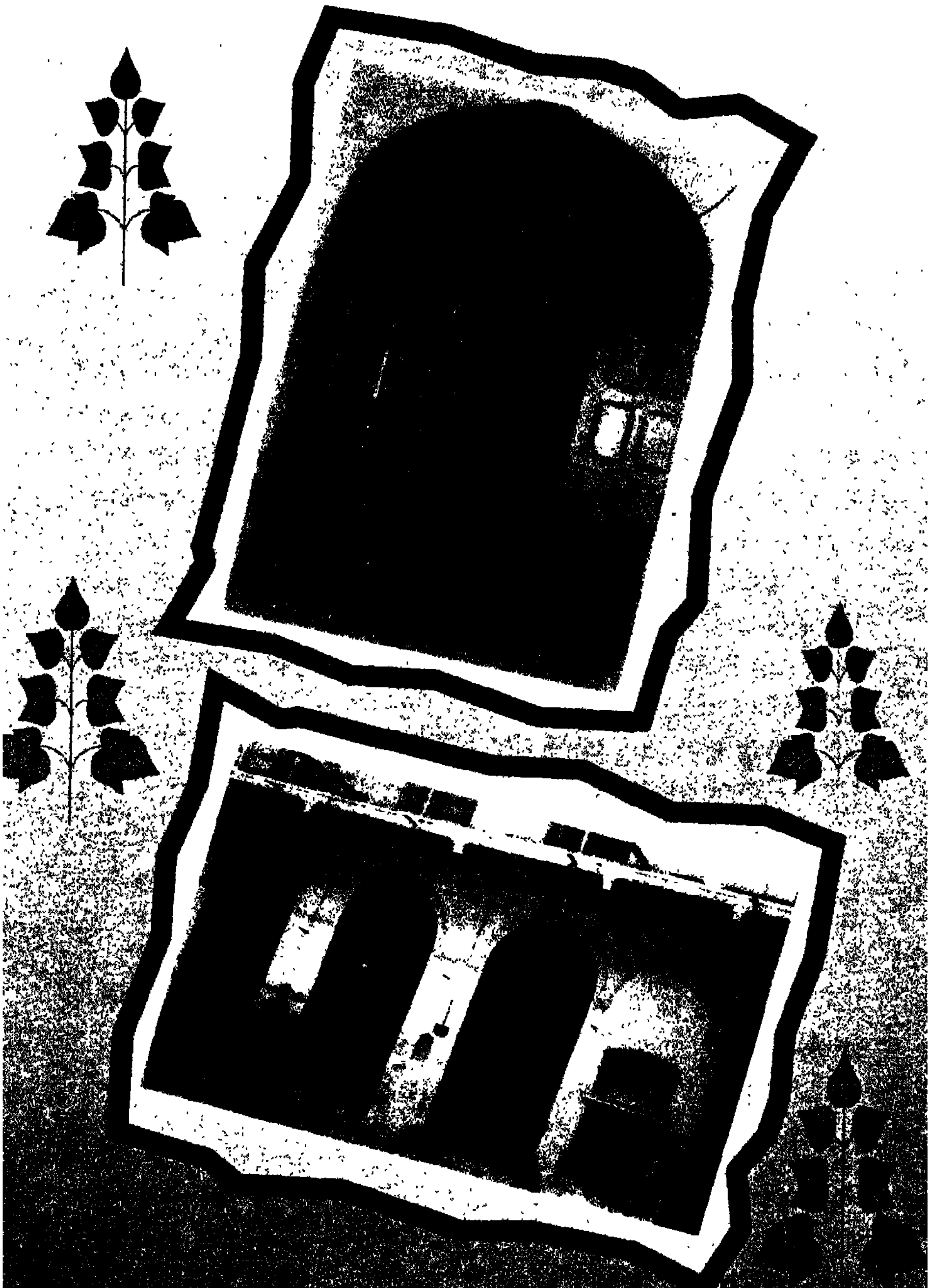
अपर्याप्त लगने लगे थे। अतः उसने अपने सहस्त्र नयन एक साथ खोल दिए। उन सहस्त्र नयनों से विरक्ता कौशल्याजी की छवि को निहार कर उसके हृदय से हर्ष के अणु छलककर पृथ्वी पर गिरने लगे। धीरे-धीरे बूंदो ने अजस्त्र जलधारा का रूप ले लिया। मूसलाधार वर्षा होने लगी। यद्यपि प्रकट रूप में यह एक व्यवधान ही था पर प्रकृति के इस मांगल्य अवदान को बिना किसी ननुनच के स्वीकारा गया। वर्षा का प्रवाह, मन के उत्साह का प्रतीक बन गया। राग को धुलते और विराग को उभरते देखा गया, अब जुलूस भी पूर्व निर्धारित दीक्षा पांडाल की ओर न जाकर "लाला अछरूमल जी जैन" के विशाल भवन की ओर बढ़ गया। अनायास ही उस विशाल भवन को दीक्षा का प्रत्यक्षदर्शी होने का सौभाग्य मिल गया।

मन की मन में रह गई

आज अगर दीक्षा महोत्सव में भाग नहीं ले सके, तो वे थे, विरक्ता कौशल्याजी के माता-पिता, भाई-बहन आदि परिवारी जन। पिताजी व माताजी तो अस्वस्थता के कारण आ ही नहीं सकते थे, वे केवल दूर बैठे ही कल्पना की आँखो से दीक्षा का मांगल्योत्सव निहार रहे थे। पर भाई भी पोलियो से ग्रस्त था, उससे छोटा भाई टी० बी० की बीमारी से संत्रस्त था, एक भाई जो अभी छोटा ही था, उसे दुकान के मुनीम के साथ भेजने का विचार किया, लेकिन वह भी पूर्ण नहीं हो सका। उन्हें टिकिट ही उपलब्ध नहीं हुई। देश-विभाजन की संकटपूर्ण स्थिति में सभी अपने को असहाय व आपद्ग्रस्त अनुभव कर रह थे, स्थान-स्थान पर बम विस्फोट हो रहे थे, लाईनें कट गई थीं सब ओर आंतक व्याप्त था, लाहौर तो विशेष रूप से विभाजन की विभीषिका के भयंकर परिणामों को भोग रहा था। देश की ऐसी भयावह स्थिति में उन्हें मन-मसोस कर रुकना पड़ा, परिवार का कोई भी सदस्य लाहौर से पटियाला नहीं पहुँच सका । अम्बाला से भुआ का परिवार ही प्रतिनिधि बनकर पहुँच पाया, उन्हीं को लाला खैरातीलाल जी ने दीक्षा महोत्सव पर उदार दिल से खर्च करने की जिम्मेदारी सौंप दी थी।

मै-भाव' मिटता है, तब 'मै-सत्ता' मिलती है।

अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी की दीक्षा का साक्षी
लाला अच्छरूमल जी की कोठी (पटियाला)



दीक्षा स्थल का दृश्य

दीक्षा स्थल पर एक विशाल पाट पर श्रद्धेय श्री खजानचंद्र जी म० के सुशिष्य **ध्यानयोगी मंगल-मूर्ति, महासंत श्री फूलचंद्र जी म० " श्रमण " तपस्वी श्री लालचन्द जी म०** अपने शिष्य परिवार के साथ विराजमान थे । दूसरी ओर **ज्ञानयोगिनी तपोनिष्ठा, संयममूर्ति महासती मोहनदेवीजी म०,** श्री सोमादेवीजी म०, श्री रोशनमतीजी म०, श्री जैनमतीजी म०, श्री हुकुमदेवीजी म०, श्री केसरदेवीजी म०, श्री राजेश्वरीजी म० ठाणा 7 विराजमान थीं।

संत जनों से ही तो दीक्षा स्थल की शोभा थी। आज उनवेद्ध मण्डल में एक और शुभ वृद्धि हो रही थी। कौशल्याजी नवीन पर्याय से जुड़कर जिनशासन में चार चाँद लगाने वाली थी। विशाल समुदाय की चहचहाट में प्रसन्नता की ध्वनि उभर रही थी।

संत जनों के समक्ष एक ओर श्रावक समुदाय और दूसरी ओर श्राविका समुदाय अपलक नेत्रों से मंडप की ओर निहार रहा था। सभी की दृष्टि दिव्य परिधान धारण किये दीक्षार्थिनी की ओर लगी हुई थी। कोई उसके माता-पिता के विषय में प्रश्न करता हुआ पूछ रहा था -

"यह कन्या कहाँ की है ?"

"लाहौर की है" दूसरे ने जवाब दिया।

"किसकी कन्या है यह ?" पहले ने फिर प्रश्न किया।

लाहौर में "हीरालाल गंगाराम फर्म" है न, उसी के मालिक खैरातीलाल जी की कन्या है।"

"अरे ! वे तो बहुत बड़े सेठ हैं, लखपति हैं।"

"हाँ सेठ भी हैं, साथ ही बहुत उदार भी हैं। देखते नहीं, इस दीक्षा के आयोजन का सारा खर्चा उनकी ओर से ही हो रहा है।"

"अच्छा ! कहाँ हैं लाला खैरातीलालजी ?"

सब संग्रह, सब परिग्रह 'मैं' को भरते है। ज्ञान 'मैं' को मिटा देता है।

हाँ, वे यहाँ नहीं आ पाये हैं, सुना है, उनकी तबियत ठीक नहीं है। अपनी कन्या को दीक्षा देते हुए वे नहीं देख सकेंगे। उन्होंने आशीर्वाद पत्र भिजवाया है। वे आ जाते तो भी बेटी की दीक्षा नहीं देख पाते, इस दृश्य को देखकर अचेत हो जाते।"

"सचमुच, यह मोहकर्म की विचित्रिता है।"

हाँ भाई ! तभी देखो न ? माता-पिता के नहीं आने से सारे दीक्षा कृत्य करने का लाभ लाला अछरूमलजी एवं उनकी धर्मपत्नी को मिल गया है। वे आज कितने प्रसन्नचित्त हैं, उन्हें दीक्षार्थिनी के धर्म माता-पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके भी5 लड़के और5 लड़कियाँ हैं और कौशल्याजी के भी5 भाई एवं5 बहनों का विशाल परिवार है। दोनों परिवारों में केसी अद्‌भुत समानता है।

"सचमुच, ऐसी गुणवती बेटी मिलना सौभाग्य की बात है।"

ऐसे ही अनेक मुख अनेक संवाद चल रहे थे। दीक्षार्थिनी इन सबसे अनभिज्ञ अपना संक्षिप्त किन्तु सारपूर्ण वक्तव्य उपस्थित जनसमूह के समक्ष प्रगट कर रही थी- "..........चाहे कितने ही संकटों एवं कष्टों का सामना क्यों न करना पड़े मैं संयम व्रत के पालन में कभी शिथिलता नहीं आने दूंगी। आज से मन, वचन, कर्म से आत्म-कल्याण तथा चतुर्विध श्रीसंघ की उन्नति ही मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य होगा। पूज्य गुरूणीजी महाराज के चरण-कमलों की चंचरिका बनकर मैं भव सागर को पार करने में सदैव उद्यमरत रहूँगी। इस लक्ष्य पर उत्तरोत्तर प्रगति करती जाऊँ यही मुझे आशीर्वाद दीजिए। ...."

" मैं न पीछे हटूँगी कदम बढ़ाकर।
अगर दम भी लूँगी तो मंजिल पे जाकर॥"

अपना वक्तव्य पूर्ण कर उसने सर्व उपस्थित जन की ओर देखा, फिर हाथ जोड़कर गुरू-गुरूणी को नमन किया।

उसके चेहरे के तेज को देखकर और उसके अन्तर्हृदय से निःसृत ओजपूर्ण वाणी को सुनकर सभी के हृदय खिल उठे, कइयों की आँखों से अश्रु टपक पड़े, कई लोग धन्य-धन्य कह उठे और कुछ की जबान पर शब्द मंडराने लगे-

अलिप्त व्यक्ति दर्पण की भाँति होता है।

"लड़का से लड़की भली जो कुलवंती होय।
वो उजवारे एक को, यह उजवारे दोय॥"

दीक्षार्थिनी ने जब समस्त श्रीसंघ से अंतिम प्रणाम करते हुए क्षमायाचना की, तब तो हजारों हस्त संपुट ऊपर की ओर उठकर कमलाकार हो गए! ऐसा लगने लगा मानों इस जन-सरोवर में हजारों कमल एक साथ खिल उठे हों। जयघोषों से सारा मंडप गूँज उठा। उसके बाद वे वस्त्र परिवर्तन के लिए चली गयीं। जैसे कोई देवी वरदान देकर अदृश्य हो गई हो।

उस बीच के खालीपन को दिव्यवाणी से भर देने का समय आ गया। दीक्षार्थिनी की प्रतीक्षा में लोगों के श्रुतिपट दीक्षा की महिमा से अलंकृत होना चाहते थे। सर्व उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं तथा साधु-साध्वियों को उपदेश सुनने के लिए लालायित देखकर अध्यात्म योगी पूज्य प्रवर श्री फूलचन्द जी म० "श्रमण" ने अपने उपदेशामृत की रसवर्षा प्रारंभ की।

दीक्षा ?

बंधुओ! आज बड़े हर्ष और मंगल का अवसर है, आप लोग इतने बड़े परिमाण में इस दीक्षोत्सव में सम्मिलित हुए हैं। संभवतः आप लोग यह जानने के लिए समुत्सुक होंगे कि दीक्षा क्या है? दीक्षा क्यों दी जाती है ? दीक्षा से क्या लाभ हैं ?

दीक्षा का अर्थ है - अध्यात्म का अभ्युदय । इसमें त्रिकरण, त्रियोग से हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म तथा परिग्रह का पूर्णतया परित्याग करके निखिल सृष्टि के जीवों के साथ मैत्री भाव स्थापित किया जाता है और पाँचों इंद्रियों के विषयों का निग्रह कर आत्म-साधना में प्रवृत्ति की जाती है। दीक्षा अव्याबाध सुख प्राप्ति का राजमार्ग है, विश्व का वशीकरण मंत्र है। दीक्षा मानसिक दुःखों का अंत है, मोह रूपी पर्वत को भेदने वाला वज्र है।

दीक्षा जीव मात्र के लिए करूणा की सुरसरि धारा है, मुक्ति लक्ष्य पाने का प्रयास है, दीक्षा। दीक्षा जीव मात्र को अभयदान दिलाने वाली दानशाला है, जीव का चरम व परम पुरुषार्थ है। दीक्षा समस्त जप-साधना और तप-साधना

का मूल है। दीक्षा ग्रहण किये बिना किये गये समस्त साधना संबंधी क्रिया कलाप संवर्द्धित एवं विकसित नहीं हो पाते हैं।

बंधुओं! आप पुण्यशाली हैं। आप इस दीक्षार्थिनी बहन को देख रहे हैं, इसके मन में वैराग्य की प्रबल लालसा है। यह वैराग्य भावना सहसा जागृत नहीं हो गयी, वस्तुतः यह तो पूर्व जन्म के पुण्य संस्कारों के कारण उद्‌बुद्ध हुई है, यही कारण है कि इस कन्या के विरक्ति के बीज शैशव में ही फूट निकले थे। यह ऊर्ध्वगामी आत्मा है। आज यह अपने प्राप्य को पा रही है। धर्म के उज्जवल स्वरूप के दृष्टा बनना अपने आप में महान उपलब्धि है। इस दृष्टि से आज का यह दिन महान है।

यद्यपि माता-पिता ने इसके वैराग्य अंकुरों को नष्ट करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। सब तरह से विघ्न उपस्थित किये गये, डराया गया, धमकाया गया, चुपचाप सगाई कर दी, शादी की तैयारियाँ शुरू कर दी। लेकिन इसके हृदय में ज्ञान और वैराग्य की जो ज्योति एक बार जागृत हो गयी वह लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं बुझ सकी।

बंधुओ। मोह का परित्याग अत्यावश्यक है। मोह किसी के भी प्रति अपना अधिकार जगाता है। उसमें बाधा पड़ने पर व्यक्ति क्रूर हो जाता है। एक तरह से यह साधक की दृढ़ता ही की परीक्षा का क्षण होता है। प्रसव पीड़ा पाकर जिस प्रकार माता उपहार स्वरूप संतान पाती है उसी तरह परीक्षणों से गुजरकर साधक आत्मायें मुक्ति का वरदान प्राप्त करती हैं।

बंधुओं! संसार में सुख है ही कहाँ? सच्चा सुख तो वीतरागता में है। उस वीतरागता की प्राप्ति के लिए ही यह दीक्षा है। मानव जीवन के अनमोल क्षणों को वीतरागता की प्राप्ति में ही लगाना चाहिए -

"रात दिवस जो बीत रहे हैं पुन लौट नहीं आने को।
निज पुरुषार्थ जगा ले मानव! नारायण बन जाने को।"

अतः सांसारिक भोग-विलासों से उदासीन होकर आत्म-कल्याण की ओर उन्मुख होने में ही मनुष्य का सच्चा कल्याण है। भोग-विलास के द्वारा मनुष्य अपने कल्याण के द्वार स्वयं बंद कर देता है। जो रास्ते कहीं नहीं ले जाते जिन रास्तों के

संयम का पथ रेल का पथ है, जरा भी असावधानी हुई, कि दुर्घटना घटी।

द्वारा भटकाव ही मिलता है, ऐसे रास्तों को त्यागकर त्याग का सही रास्ता अपनाने में ही मानव जीवन की श्रेष्ठता है।

इस प्रकार श्री "**श्रमणजी**" महाराज ने धीर, गंभीर और प्रभावोत्पादक वाणी में दीक्षा का अर्थ दीक्षा का महत्व, दीक्षा की आयोजना, दीक्षार्थी की योग्यता, व्रत पालन आदि पर बड़ा मार्मिक प्रवचन दिया। उस प्रवचन से उपस्थित श्रोताओं की समस्त जिज्ञासाओं का समाधान हो गया। महासती मोहनदेवीजी महाराज ने भी दीक्षा एवं दीक्षार्थिनी के सम्बन्ध में प्रेरक प्रवचन दिया। अनेकों ने गीतों के माध्यम से अपने भाव व्यक्त किये, तो कइयों ने मूक बनकर ही हार्दिक मंगल-कामनाएँ प्रेषित की।

प्रवचन श्रवण कर वातावरण में अध्यात्मिकता का रंग और गहरा हो गया। संत जनों के प्रति श्रावक-श्रविकाओं के मन में श्रद्धा का भाव पुष्ट और दृढ़ हो गया। अब वे अपने आपको इस अवसर पर उपस्थित पाकर बड़ा गौरव महसूस कर रहे थे। संतजनों का परिसंग कितना अनुपम होता है यह अनुभव होने लगा। संयम की उत्कृष्टता उनके समक्ष स्पष्ट हो गयी थी।

दीक्षा देवी का अवतरण

इधर विरक्ति-वधू को वरने के लिए समुत्सुक दीक्षार्थिनी ने अपने समस्त वस्त्राभूषणों को सबके समक्ष उतारना प्रारंभ किया।उस समय वह अनित्य भावना से वासित चक्रवर्ती भरत की अनुकृति सी प्रतीत होने लगी। जैसे सर्प केंचुली को भार रूप समझकर सहर्ष उसका त्याग कर देता है, उसी प्रकार दीक्षार्थिनी ने वस्त्राभूषण का परित्याग कर दिया। जब उनकी सघन चिक्कन सर्प सी लहराती लम्बी केशराशि को उतारा जा रहा था तो वे यह सोच रही थी कि मोहराशि छूट रही है पर अनेक मोहमूढ़ प्राणियों की आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। विरक्ता बहन ने स्वयं अपने हाथों से केसर के रंग से अनुरंजित वस्त्रों को धारण किया। चमकते-दमकते वस्त्रों व आभूषणों के स्थान पर शुभ्र वस्त्र आ गये।

नवदीक्षिता के परिचय स्वरूप केसर का रंग मात्र वस्त्रों पर रहता है। यह एक प्रकार से सीमा रेखा का प्रतीक है। एक छोर छूटता है और दूसरा छोर थाम लिया

साधु के वस्त्र, रजोहरण आदि 'उपकरण' है, 'अधिकरण' नही।

जाता है। छोर निकट आकर भी परे हो जाते हैं। पर्याय के बदलने के साथ ही भावनाओं में पूर्ण रूप से परिवर्तन आ जाता है, पूरा का पूरा परिवेश ही बदल जाता है। यही वस्त्र-परिवर्तन का संदेश है।

इस प्रकार जिनशासन के आराधनालय में प्रवेश करने के लिए दीक्षार्थिनी कौशल्याजी ने कल्याण भावों की केसर, से सत्य, अहिंसा की छाप लगाकर श्रद्धा के स्वस्तिक से शोभित होकर मोक्षार्थ की चादर और सत्क्रिया की कोर से सुशोभित ब्रह्मचर्य के छापों वाला चोलपट्ट पहना। सिद्ध के अष्टगुणों में एकीभूत करने वाली मुखपत्ती बांधकर विरक्ति को पूर्णता देने के लिए दिव्य भावों से भरी हुई कौशल्या जी पुनः दीक्षा मण्डप पर इस प्रकार उपस्थित हुई, मानों सरोवर से निकलकर कोई सहस्त्र पत्तों वाला श्वेत कमल प्रकट हुआ हो। उनके दीक्षा मण्डप में प्रवेश करते ही सहस्त्रों कंठों से जय जयकार की ध्वनि गुंजित होने लगी।

लोग राग और विराग की अभिसंधि के इस परिदृश्य को देख कर अत्यंत चकित हो रहे थे। धर्म के मार्ग पर अग्रसर कौशल्याजी को देखकर वे यह विचार रहे थे कि सच्चा मार्ग तो यही है। लेकिन हम अपने मोह व प्रमोद के कारण इसे नहीं अपना पाते।

जय ध्वनि से गूंज रहे मण्डप में दर्शकों की आँखे दीक्षार्थिनी पर टिकी हुई थीं। वे उसकी एक-एक क्रिया को देख-देखकर विचारों में डूबे हुए थे। और अपने को भी विराग के रंग में रंगा पा रहे थे। सब मौन दृष्टा बने उस अनूठे क्षण को देख रहे थे। उनके पास उसे व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं थे, मात्र अनुभूति थी।

शुभ्र वेश में सुशोभित कौशल्याजी ने गुरूदेव एवं गुरूणी जी को भावपूर्वक त्रिकरण त्रियोग से वंदन किया। गुरूदेव ने आशीर्वाद दिया व सस्मित पूछा -**"संयम पथ पर आरूढ़ होने के लिए मनरूपी अश्व को नियंत्रण में रखने वाले आत्मा रूपी सवार को पूर्ण तैयार कर लिया है न ?"**

आपने गुरूदेव के प्रतिवचन में स्वीकृति सूचक मस्तक नमन में झुका दिया। गुरूदेव ने एक बार पुनः परिजनों एवं सकल श्रीसंघ से दीक्षा प्रदान कराने हेतु स्वीकृति माँगी। सभी ने खड़े होकर हर्ष पूर्वक दीक्षा की अनुमति प्रदान की। उनकी भावना को देखकर गुरूदेव ने दीक्षा मंत्र देने की प्रक्रिया प्रारंभ की। सब सांस रोककर गुरूदेव के मुखारविन्द से प्रकट होने वाले शब्द-अक्षतों को सुनने लगे।

साधु वह है, जो 'समाधि' में जीता है 'उपाधि' में नही।

जैसे मेघ को देखकर मयूर नृत्य करने लगते हैं, वसंत ऋतु की छटा निहारकर कोयल पंचम स्वर में कुहुकने लगती है। पूर्णमासी के चंद्रमा को देखकर सागर उससे मिलने के लिए कोसों ऊपर उछलने लगता है, उसी प्रकार गुरूदेव द्वारा "करेमि-भंते" का पाठ सुनकर आपका रोम-रोम पुलकित हो गया। अपूर्व-अपूर्व भावोल्लास से आप प्रफुल्लित हो गयीं। उसी समय आकाश से केसर की वर्षा हुई, हजारों लोगों पर केसर के छींटे पड़े, यह देखकर सभी विस्मित थे। दीक्षार्थिनी के तप-त्याग-वैराग्य के प्रति अब किसी को संदेह न रहा। यूँ भी आपकी दीक्षा गुरूणी निर्भीक वक्ता, साहस व संकल्प की धनी महासती केसरदेवी जी थीं। जिसकी गुरूणी ही 'केसर' हो, उस पर केसर-वर्षा का होना एक सामान्य घटना ही है।

जुलूस के समय जिस सूर्य को बादलों ने अपने अंक में छुपा लिया था, दीक्षा-मंत्र विधि के समय वह अपनी सहस्त्र किरणों को प्रकट कर मुक्त मन से दीक्षा महोत्सव निहारने लगा, मानो वह अपना संपूर्ण तेजस्व दीक्षार्थिनी में उंडेल रहा हो। वर्षा के बाद प्रकट होने वाले प्रकाश से वातावरण में अपार दीप्ति का समावेश हो गया था। उस तेजस्व में एक सात्विक आनंद था। उपस्थितों का मन हर्ष से भरकर द्विगुणित हो गया था।

दीक्षा मंत्र प्रदान करते ही सहस्त्रों कण्ठों से जयकारों की ध्वनि गूंजी जो अवनिअम्बर से प्रतिध्वनित हुई । वे जयकारे थे-

जैन दिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज की जय।

प्रसिद्ध वक्ता पंडित युवाचार्य श्री शुक्लचंद्र जी महाराज की जय।

जैन धर्म भूषण उपाध्याय श्री प्रेमचंद्र जी महाराज की जय।

दीक्षा प्रदाता पंडित रत्न श्री फूलचन्द्र जी महाराज "श्रमण" की जय।

प्रवर्तिनी श्री राजमती जी महाराज की जय।

ज्ञानयोगी संयमनिष्ठ महासाध्वी श्री मोहनदेवी जी महाराज की जय।

"नवदीक्षिता वैराग्यमूर्ति श्री कौशल्यादेवी जी महाराज की जय।

जैन धर्म की जय !

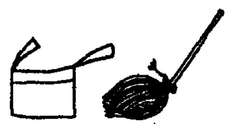
इन जयकारों के बीच नवदीक्षिता महासती श्री कौशल्याजी को साध्वी समुदाय ने अपने मध्य काष्ठ पट्टे पर विराजमान किया। एक बार पुनः तुमुल

आँख ठीक हो जाए, तो प्रकाश अपने आप अनुभव हो जाता है,
वह तो निरंतर मौजुद ही है।

जयघोष हुआ। मंगल पाठ के बाद सभा विसर्जित हो गयी। विसर्जित होती भीड़ अपने साथ सुखद आयोजन की स्मृति लेकर जा रही थी। जो इसके द्रष्टा थे उनके मस्तिष्क-पटल पर यह सारा दृश्य उट्टंकित हो गया - सच ही कहा है -

'संयम' करिश्मा नहीं साधना की संविधा है। 'संयम' जीवन को 'गंभीरता' से ग्रहण करने की विधि है। 'संयम' दुष्कर पथ पर निरन्तर चलने का नाम है। 'संयम' प्रमादो से वशीभूत लोगों को स्थिरता सौंपने का उपक्रम है। 'संयम' केवल कल्पना की उड़ान नहीं वरन् यथार्थ की धरती पर पैर टिकाने का सफल प्रयास है।

संयमी वेष का आभ्यंतर स्वरूप



नवदीक्षिता साध्वी कौशल्यादेवीजी को महासती श्री मोहनदेवीजी ने संयम और संयमी वेष का महत्त्व बताते हुए कहा - "हे कौशल्या ! आज तूने जो ज्ञान की चादर और चारित्र का चोलपट्ट पहना है उसको सदा बेदाग रखना। इसके चार कोने हैं - सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप। उन चार कोनों से ही यह चादर शोभित होंगी, इन्हीं की आराधना और साधना करके तू मुक्ति की ओर अनवरत बढ़ती जाना।

हे कौशल्ये ! इस चादर को साध्वी प्रमुखा चंदनबालाजी ने ओढ़ी और उसी को उन्होंने अपनी छत्तीस हजार अन्य साध्वियों को औढ़ाकर केवल्य लक्ष्मी को प्राप्त किया था। उसके बाद भी अनेंकों महासतियों ने इस चादर को ओढ़कर जिनशासन का गौरव बढ़ाया । आज वही चादर तुम्हें प्रदान की जा रही है। याद रखना इस चादर पर असंयम का या सांसारिक वासना का कोई काला दाग न लगने पाए। यदि कभी अनुचित प्रवृत्ति हो भी जाए तो तुरन्त तप-संयम का साबुन और ज्ञान का जल लेकर धो डालना। "

मुखपत्ती के संदर्भ में उन्होंने कहा - यह मुखपत्ती भाषा समिति की रक्षा हेतु बांधी जा रही है। इसका अर्थ है - अधिकतर मौन रहना। कार्यवश बोलना पड़े, तो कठोर, कर्कश, छेद, भेद उत्पन्न करने वाली, कलह पैदा करने वाली, हिंसा को प्रश्रय देने वाली, अप्रिय लगने वाली, निश्चयकारी अष्टभाषाओं को जिह्वा पर नहीं लाना।

भीड़ से भागना व्यर्थ है, भीड़ को ही भीतर से विसर्जित करना सार्थक है।

इसीलिए मुहँपत्ती के अष्ट पट किये गये हैं। इन अष्टपटों (आवरणों) से पृथक भाषा का प्रयोग करती हुई तुम अष्ट कर्म ग्रंथियों पर विजय प्राप्त करना और सिद्धों के अष्ट महागुणों को प्राप्त कर अनंत आत्मिक वैभव की अधिकारिणी बनना।"

तत्पश्चात् "रजोहरण" का महत्व बताते हुए महासतीजी ने शिक्षा दी - यह रजोहरण बाहर की रज को दूर करने के लिए नहीं है, वरन् अंतर् की कर्मरज को दूर करने के प्रतीक रूप में दिया जाता है। इससे अपनी आत्मा के दोष-शोधन करने में प्रवृत्त होना। आत्मा में विषय और विकारों का कचरा भर जाए तो ज्ञान के रजोहरण से तत्काल साफ कर देना। यह रजोहरण संयम का तथा त्याग का प्रतीक है। षट्काय जीवों की रक्षा करना रजोहरण का प्रमुख उद्देश्य है। इस उद्देश्य को विस्मृत करके एक कदम भी गमनागमन नहीं करना।

इसके बाद काष्ट निर्मित पात्र व झोली का महत्त्व बताते हुए कहा - "कौशल्ये! तुम भी अपनी आत्मा को ऐसा पात्र बनाना जिसमें समस्त सद्गुण भर जाए। इस दोहे का सतत स्मरण करना-

"पात्र बिना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान।
पात्र थवा सेवो सदा ब्रह्मचर्य मतिमान॥"

प्रत्येक वस्तु पात्र में ही अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सकती है। इसी प्रकार संयम को सुरक्षित रखने के लिए अपनी आत्मा को उस योग्य बनाना जो पांच महाव्रतों एवं क्षमा, निर्लोभता आदि दस यति गुणों से सुशोभित होकर शिवपुरी तक ले जा सके।

"झोली" में भिक्षु रूप समाया हुआ है। "भिक्षु" का अर्थ अन्न-पानी की भिक्षा लेने वाला भिक्षु ही नहीं वरन् यत्र-तत्र सर्वत्र प्राप्त सद्गुणों से, सद्विचारों से निरन्तर अपनी झोली भरते रहना ही भिक्षु का सही अर्थ है।

अभी तक साध्वी कौशल्या जी संयमी वेष के महत्त्व से अनभिज्ञ थीं। महासती मोहनदेवीजी से प्रत्येक वस्तु का मर्म समझकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। गुरूणी जी की प्रत्येक शिक्षा को आगे रखकर संयम-पथ पर बढ़ने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया। कदम-कदम पर सदगुणों का संग्रह और दुर्गुणों के त्याग का अभ्यास करती हुई वे आज भी उतनी ही सजग हैं, जितनी 50 वर्ष पूर्व थीं।

अपना मूल्य समझो और विश्वास करो कि तुम संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो।

बड़ी दीक्षा महोत्सव

दीप से दीप प्रज्वलित होता है। इस प्रज्वलन से ज्योति का, आलोक का विस्तार होता है। गुरु प्रदत्त ज्ञान-ज्योति से शिष्य का ज्ञान-प्रदीप ज्योतित हो उठता है। साध्वी कौशल्याजी ज्ञान के इस आलोक से जुड़ चुकी थीं। प्राप्त ज्ञान को प्रतिभा का आधार देकर वे उसे और पुष्ट तथा प्रकाश से संपन्न बना रही थी। किसी भी गुरु की यह चाह होती है कि ज्ञान की जो पूंजी उसने शिष्य को दी है, शिष्य उसे बढ़ाने में पूर्ण संलग्न रहे।

दीक्षा-आयोजन के आठवें दिन चैत्र कृष्णा द्वादशी के शुभ दिन पुनः पटियाला में बड़ी दीक्षा का कार्यक्रम था, लेकिन वातावरण ऐसा था मानो लघु दीक्षा हो रही हो। भौतिक जगत और आध्यात्मिक जगत की दृष्टि में यही तो अंतर होता है कि आध्यात्मिक जगत में जिसे लघु माना जाता है उस वेष परिवर्तन को दुनियाँ बहुत बड़ा परिवर्तन समझ बैठती है, और उसके लिए बहुत बड़ा महोत्सव होता है। जबकि वह संयमी जीवन का नन्हा सा कदम है। अध्यात्म साधक की दृष्टि में इससे भी बड़ा महत्त्व है महाव्रतारोपण का, जो एक बहुत बड़ा संकल्प है। उस समय जहाँ बाह्य जगत में हलचल कम होती है, वहीं आत्मा की अंतरंग स्थिति में महदन्तर आ जाता है, परिणामों की धारा अपूर्व गुणस्थानों पर आरोहण करने लगती है। साधक समत्व भाव की साधना के साथ ही षट्काय जीवों के प्रति भी आत्म-भाव धारण करता है। अति दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा ग्रहण करता है, आसक्ति का त्याग करता है, सामायिक चारित्र से छेदोपस्थापनीय चारित्र में प्रतिष्ठित होता है। अकिंचन श्रमण के लिए कहा है -

" उदर समाता अन्न ले, तन ही समाता चीर।
अधिक ही संग्रह ना करें, ताका नाम फकीर॥ "

सच्चा संत वही है जो शम, दम, उपशम की साधना करता हुआ संसार का अंत करता है। वह साधना स्वयं उसे तो दिव्य बनाती ही है, साथ ही जो उससे जुड़ता है, उसे भी दीप्ति प्रदान करती है। संतत्व एक परम अवस्था है। एक ऊँचाई पर पहुँच कर संत जगत में एक उद्बोधक के रूप में प्रस्तुत होता है। वह जनकल्याण के भावों से जुड़ता है।

गुरु विशाल वृक्ष है, जिस पर शिष्य रूपी लताएँ फैलती है।

योगनिष्ठ महाश्रमण श्री फूलचन्द्रजी म० "श्रमण" दीक्षा देने के बाद लुधियाना की ओर विहार कर गये। अतः दिव्यविभूति महाश्रमणी श्री मोहनदेवीजी म० ने ही नवदीक्षिता को बड़ी दीक्षा प्रदान की। उन्होंने साध्वी श्री कौशल्या जी को पाँच महाव्रतों का स्वरूप बताते हुए उनकी आत्मा को सच्चे श्रमण की श्रेणी में प्रवेश दिलाया। इस श्रेणी में पहुँचने की साध बाल्यकाल से ही आपके मन में पल रही थी। क्रमशः इस भावना को आपने दृढ़ से दृढ़तर किया था। निरन्तर उस पथ पर बढ़ते हुए कई बाधाओं को पार किया था। जब बादल छँट जाते हैं तो खुला आकाश उपलब्ध हो जाता है। अनंत आकाश में विचरण करने का अपना एक अलग ही आनंद है। यह आनंद अत्यंत पुण्य से प्राप्त होता है। उस अनुप्राप्ति के लिए विशेष क्षमता की आवश्यकता होती है। वह क्षमता साधना में विशेष रूप से तत्पर व्यक्ति को ही प्राप्त हो पाती है ।

साध्वी कौशल्याजी ने दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययनों के अनुसार अपने संयमी जीवन में दृढ़ता और समरसता लाने का निश्चय किया। उनके जीवन का दिव्य आघोष था -

" मेरे दिल की वसीअ दुनिया में
दर्द अपना भी है पराया भी
" मैं" को जब "हम" बना दिया मैंने
खुद को खोया खुद को पाया भी है। "

अपनी वैयक्तिकता को जो निर्वैयक्तिकता में बदल लेता है तो उसका सारा दंभ, सारा अहं खत्म हो जाता है। वहाँ बूँद महासागर बन जाती है। सब कुछ पाने के लिये सब कुछ खोना पड़ता है। सर्व सिद्धियों का मूलमंत्र है - समर्पण।

यद्यपि संयम पथ को काँटों से भरा कहा गया है। अनेक दुरूह परिषहों से सम्पृक्त बताते हुए संयमी जीवन को अति दुष्कर माना है किन्तु जिसके हृदय में तीव्र वैराग्य भावना, संसार से विरक्ति और संयमी जीवन के प्रति पूर्ण आस्था का निर्माण हो चुका हो उनके लिए यह कंटकाकीर्ण पथ, पुण्य-पथ बन जाता है। श्रमण का हर चरण आनंद की अनुभूति कराता हुआ आगे बढ़ता है। और काँटे फूल बनकर उसकी अगवानी करते हैं। संत की ओर से कहा भी है -

---

सत्य के पक्ष में खड़े होओ, न कि सत्य को अपने पक्ष में खड़ा करो।

**"कदम-कदम पर काँटे बिछे मेरे लिए तो वे फूल हैं।
खुद-ब-खुद हँसता हुआ उसी राह से गुजरता हूँ।"**

प्रथम वर्षावास पटियाला में

साध्वी कौशल्यादेवीजी का संयम के प्रति सात्विक उत्साह था। बड़ी दीक्षा के साथ ही आपने संयम साधिका का पूर्ण स्वरूप ग्रहण कर लिया। संयम पथ पर अग्रसर होने के बाद आपके प्रथम पड़ाव का गौरव मिला पटियाला नगर को, जहाँ आप वैराग्य के शिखर पर समारूढ़ होकर संयम पथ पर अग्रसर हुई थीं।

पटियाला चातुर्मास में गुरूणीजी के सान्निध्य में आप सतत ज्ञानाराधना, वाचना, पृच्छना, पर्यटना, और अनुप्रेक्षा में लगे रहते। गुरू चरणों में समर्पित होकर आप प्रतिसमय शास्त्र के इस वचन को आगे करके चलते रहे -

**"वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहइ॥"**

- उत्तरा०, अध्ययन 11, गाथा 14

अर्थात् अपने मन, वचन, काया को वश में करके जो हमेशा गुरू की आत्मा के समीप निवास करता है, अपने श्रेष्ठ कर्म और प्रिय वचनों से सबको प्रसन्न रखता है, वही सुशिक्षा पाने का अधिकारी होता है।

आपकी बुद्धि, ग्रहण शक्ति और स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि एक बार जो बात समझ लेते, वह मन में पैठ जाती, उसे फिर भूलते नहीं। प्रारंभ में अनेकों थोकड़े, साधु गुणमाला, बाल बत्तीसी, देवाधिदेव रचना आदि का अध्ययन किया हुआ था, उत्तराध्ययन सूत्र व दशवैकालिक सूत्र भी युवाचार्य श्री शुक्लचन्द्रजी म० से अर्थ के रूप में ग्रहण किया हुआ था। अब आप इन्हें कंठस्थ करने लगे। चूंकि उसका भाव समझ लिया था इसलिए कंठस्थ करते समय यह लगा ही नहीं कि यह महज तोता-रटन है। एक-एक शब्द के उच्चारते ही उसका अर्थ भी अनुगामी हो जाता, सब कुछ बिल्कुल स्पष्ट हो जाता। कहा भी है - **विद्या कंठ की और पैसा गांठ का** ही समय पर काम आता है। अतः आपने अपना अधिकतम समय याद करने में और सीखे हुए ज्ञान के पुनरावर्तन

करने में लगाया। जैसे-जैसे पुनरावृत्ति होती वैसे-वैसे शब्द जैसे मस्तिष्क में अंकित हो जाते। इस तरह से अंकित शब्द ही समय के अनुसार अपना स्थान किसी दृष्टांत अथवा विचार को व्यक्त करने के समय वाक्यों में उभर आते है।

ज्ञाननिष्ठ तपोमूर्ति महासती श्री मोहनदेवीजी म० आपकी इस ज्ञान साधना, मौन उपासना, स्वेच्छया प्रेरित वैराग्य और विनम्र स्वभाव से बहुत प्रभावित होते थे। वे उस समय भी अपनी साध्वियों को उदाहरण देकर साधु जीवन की उज्ज्वलता समझाते थे और कहते थे कि – कौशल्याजी की ज्ञानाराधना व वैराग्य बड़ा ही उच्चकोटि का है, जिन शासन ऐसी ही साध्वियों से सदा गौरवान्वित रहेगा।"

गुरू का ज्ञान सागर : शिष्य की डुबकी

"जहाँ आदेश है वहाँ अपील नहीं
जहाँ समर्पण है, वहाँ संशय नहीं"

संयम ग्रहण करते ही आपने स्वयं को गुरु चरणों में सर्वतोभावेन समर्पित कर दिया। अब आपका एक ही लक्ष्य था -

"अरिहत मेरे आदर्श, गुरूदेव मेरे आराध्य
स्वाध्याय मेरे नयन, संयम मेरा श्वास
मर्यादा मेरी शान, ध्यान मेरा बल,
अनशन मेरा आहार, रस विजय मेरा रस
परिषह मेरा सम्बल, प्रायश्चित्त मेरी औषधि
विनय व सेवा मेरा व्यायाम, साधुत्त्व मेरा जीवन।
समाधि मेरा मरण, जिनशासन की प्रतिष्ठा मेरी शान॥"

और इस प्रतिष्ठा यात्रा पर आप सहर्ष चल पड़ीं। गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिए आपका कण-कण जुट गया। क्योंकि गुरु की कृपा दृष्टि प्राप्त होने पर सब कुछ सुलभ हो जाता है। दिव्य हो जाता है, गुरू कृपा से बुद्धि बढ़ती है, निर्मलता

या तो हम एक को निन्याणवें में मिला दें, या निन्याणवें को एक में। तात्पर्य पूर्णता से है।

बढ़ती है, स्वाध्याय के प्रति संलग्नता बढ़ती है। गुरुकृपा से विषयों की रूचि घटती है, आत्मतत्व की अभिरूचि बढ़ती है। गुरू कृपा से शोक संताप तिरोहित होते हैं और प्रसन्नता की अनुभूति होने लगती है। गुरु कृपा से समता का महासागर हिलोरें लेने लगता है और ममता की सरिता सूखने लगती है। कहा भी है -

"गुरु के बिना अधमगति होई।
भला बुरा चिन्हें न कोई॥
नाव बिना केवट का कर ही
गुरु बिन नहीं जन को भव तरहीं॥ "

शिष्य के लिए गुरू का वात्सल्य जीवनदायिनी शक्ति के समान है। उसके बिना शिष्यत्व पनपता ही नहीं, और न ही वह फलदायी हो सकता है। शिष्य की योग्यता गुरु के वात्सल्य को पाकर धन्य हो जाती है और गुरु का वात्सल्य शिष्य की योग्यता पाकर कृत्कृत्य हो जाता है।

आप गुरु-शिष्य की इस अनुपमेयता से जुड़ती चली जा रही थीं। समर्पण के पश्चात् यों भी भावों में उच्चता आ जाती है। स्वतः ही सहज रूप से दुर्भाव खत्म हो जाते हैं। फिर आप में तो आरम्भ से ही कुशलता थी, प्रखरता थी और परिमलता थी।

यद्यपि आप गृहवास में भी ज्ञान संपन्न थीं पर गुरू-ज्ञान की किरणों का सान्निध्य पाकर पूर्व पठित ज्ञान और समृद्ध हो गया। आप ज्ञान का एक ऐसा आगार बन गईं, जहाँ सबकी जिज्ञासाओं का समाधान होने लगा। आपके मन का वातायन श्रद्धा सुगंध से परिपूर्ण धर्म वाटिका की ओर खुला था। अतः आपके सान्निध्य में आने वाला हर व्यक्ति धर्म की ओर अनायास आकृष्ट हो जाता। जो भी आपकी साधना को देखता धन्य-धन्य कह उठता।

गुरु के प्रति शिष्य आकृष्ट हो, यह सहज है, किन्तु जब शिष्य के प्रति गुरु आकृष्ट हो तो यह विशेष बात बन जाती है। श्रद्धेया केसरदेवी जी म० के पास दीक्षित होकर तथा उनका सान्निध्य पाकर आपको जो प्रसन्नता हुई थी वह विशेष आश्चर्य की बात नहीं थीं, किन्तु आपको शिष्य के रूप में प्राप्त कर केसरदेवी जी म० को जो प्रसन्नता हुई, वह अवर्णनीय है। ऐसी शिष्या को पाकर उनका रोम-रोम

महापुरुष अपने दुख से दुखी नहीं होते पर - दुख से द्रवित होते हैं।

हर्षोत्फुल्ल हो गया। जिस शिष्य से गुरु प्रसन्न हो उठता है उसके समक्ष अपना संपूर्ण ज्ञान खजाना खोलकर रख देता है।

दीक्षा लेने के एक वर्ष में ही श्री मोहनदेवीजी म० से आपने उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, उपासकदशांग सूत्र, अन्तकृद्दशांग सूत्र, अनुत्तरौपपातिक दशा सूत्र और दशाश्रुतस्कंध इन षट् शास्त्रों का अध्ययन कर लिया और उसके बाद तो क्रमशः तीस शास्त्रों का अध्ययन किया। "ज्ञानकंठा और दाम अण्टा" इस राजस्थानी कहावत को आपने सम्यक् रूप से अपने जीवन में चरितार्थ किया। अतः बत्तीस आगमों का गहन अध्ययन चिन्तन-मनन करने के साथ-साथ संस्कृत व्याकरण, प्राकृत व्याकरण, लघु सिद्धांत कौमुदी, सन्मति तर्क, प्रमाण मीमांसा, स्याद्वादमंजरी, सप्तभंगी तरंगिणी, विशेषावश्यक भाष्य आदि भाष्य ग्रंथ, टीका ग्रंथ का भी अध्ययन किया।

शनैः शनैः आपने श्वेताम्बर ग्रंथो के साथ-साथ दिगम्बर ग्रंथों का भी खूब गहन पारायण किया। दिगम्बर ग्रंथों में समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, अष्टपाहुड, पंचास्तिकाय, मोक्षमार्ग आदि का विशेष रूप से अध्ययन किया। स्वधर्म का अध्ययन करने के पश्चात् गीता, रामायण, महाभारत, ऋग्वेद, काव्य, छंद, व्याकरण आदि का विस्तृत ज्ञान अर्जित किया। इतना ज्ञान अर्जित कर लेने के बाद भी आपका ज्ञान कभी मस्तिष्क के लिए बोझस्वरूप नहीं बना न वाग्विलास का सर्जक।

विभिन्न धर्मों के ज्ञान से ही तो अनेकांत पुष्ट होता है तथा एक भाव यह भी रहता है कि जहाँ से जो भी अच्छा मिले उसे ग्रहण करो। तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञान एकांगी नहीं रहता, उसमें पूर्णता का समावेश होता है । और तत्त्व के द्वार उद्घाटित होते हैं।

आप जितना भी अध्ययन नित्यप्रति करती थीं, जागते बैठते आपका चिंतन जीवन के प्रति चलता रहता। स्वयं के ज्ञान से स्वयं के जीवन का निरीक्षण-परीक्षण करती रहतीं। रात्रि के नीरव वातावरण में आप स्व-चिंतन के द्वारा ज्ञान का प्रकाश आलोकित करतीं और उस प्रकाश में अपनी त्रुटियों को देखती इस प्रकार स्वयं के ज्ञान से स्वयं के दोषों को देखकर स्वयं ही उनके परित्याग की वृत्ति ने आपको "सद्गुणों की निधि" बना दिया।

गुरु 'पारधी' नही 'पारखी' होता है।

"अप्प दीवो भव" शास्त्र की सूक्ति को आपने अपने जीवन व्यवहार में ढाल दिया। आप स्वयं आत्म प्रदीप बनी हैं तभी हजारों-हजारों दीपक आपकी ज्योति से प्रदीप्त हो रहे हैं। दीपक से दीपक जब जल उठते हैं तो घने अंधेरे टल जाते हैं।

बीज एक : संपोषक अनेक

बीज प्रारंभ में छोटा होता है, पर उसमें अनंत विकास की संभावनाएं छुपी रहती हैं। उस विकास में अनेक तत्वों का योगदान होता है। अनेकों के योगदान को वह बीज कृतज्ञतापूर्वक ग्रहण करता है और एक दिन विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। परम श्रद्धेया कौशल्याजी म० वस्तुतः एक विशाल वृक्ष हैं । ऐसा वृक्ष जिसकी छाया में अनेकों पथिक शांति की अनुभूति करते हैं, उनके सद्गुण फलों का रसास्वादन कर प्रशंसा करते नहीं अघातें, उस छाया में परम परितोष प्राप्त करते हैं।

कड़ी धूप में एक हल्की सी छाँव भी बड़ी राहत देती है, ऐसे में अगर घनी छाँव मिल जाए तो आनंद का अतिरेक हो जाता है। यह छाँव माता के आँचल के समान स्नेहमयी होती है जो किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रखती । अगर कोई अपेक्षा है भी तो, अपनी संतान के कल्याण की। संत जन भी श्रावकों के प्रति ऐसा ही कल्याणभाव रखते हैं। महासती श्री कौशल्या देवी जी आज जैन श्रमणी जगत की विशाल-वृक्ष हैं। उनकी छाया में प्रत्येक प्राणी शीतलता का अनुभव करता है।

वे स्वयं अपने विकास में अनेक संतों तथा साधकों के सहयोग का समय-समय पर कृतज्ञता पूर्वक उल्लेख करना नहीं भूलती। आप कहती हैं कि **"मेरे जीवन के सृजन में अनेकों का मूक तो अनेकों का मुखर सहयोग मिलता रहा है।"**

सीखने और सिखाने का एक सिलसिला होता है। हर व्यक्ति पहले सीखता है फिर सिखाने योग्य बनता है। शिष्य बने बिना कौन गुरु बन पाया है ? शिष्य की यही सार्थकता है कि वह गुरु के द्वारा प्रदत्त ज्ञान को आत्मसात कर अपने समय के अनुरूप वाणी दे।

महासती कौशल्यादेवी जी अपने विकास में सर्वप्रथम गुरु अपनी तपोमयी वात्सल्यमूर्ति माँ "तारादेवी" को मानती हैं। जिन्होंने सर्वप्रथम सुसंस्कारों का बीज वपन किया, और व्रत, नियम अनुष्ठानों में कदम-दर-कदम साथ रहीं। यद्यपि परिवार

साधुओं के लिए चाहे कुटिया हो या आलीशान महल एक धर्मशाला के समान होता है।

के और लोग, जो इर्दगिर्द स्थित रहते हैं वे भी किसी न किसी रूप में सहयोगी बनते ही हैं, किंतु उन सबसे कब, कितना किससे पाया, उसका विश्लेषण करना सहज नहीं है। उनके प्रति आप कृतज्ञता प्रकट करती रहती हैं।

प्रत्यक्ष उपकार के रूप में आप सबसे बड़ा उपकार "श्री केसरदेवीजी म०" का मानती हैं जिनसे संयम की राह मिली। इसलिए आप उनके प्रति सर्वतोभावेन समर्पित होकर चलती हैं। जो पथ पर बढ़ने के लिए दृष्टि प्रदान करे उसका उपकार सर्वोपरि होता ही है। गुरु के प्रति आपकी समर्पणता और गुरु की आप पर अपूर्व विश्वसनीयता के लिए शब्द प्रमाण पर्याप्त है, जो केसरदेवीजी महाराज समय-समय पर कहा करती हैं -

"मुझे एक ही हीरा मिला है, जो अनमोल है "कोशी" का पाकर मैं कृतार्थ हो गयी हूँ।"

इसी प्रकार उपकार के रूप में आपप्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्रजी म० को, शेरे पंजाब मंत्री श्री प्रेमचंद जी म०, महासती श्री मोहनदेवीजी म०, महासती श्री सुन्दरीदेवीजी को बहुत महत्व देती हैं। इन सबके द्वारा आपमें धार्मिकता का बीज सिंचित किया गया।

सत्साहित्य में सर्वाधिक बोधप्रद आपको श्रीमद् जवाहिराचार्य एवं उपाध्याय श्री अमरमुनिजी का साहित्य लगता। इनको आप परोक्ष उपकारक मानती हैं। इन विभूतियों के सुलझे हुए, स्पष्ट और गहन तात्त्विक विवेचन आपकी मनीषा को जागृत कर देते थे। जिज्ञासायें स्वयं ही अपना समाधान पा लेती। जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० का कथा साहित्य आपको अत्यंत प्रेरणादायी लगता। उनके द्वारा विरचित रामायण से आपको अनेक प्रेरणायें मिलती, आप विह्वल हो जाती। रामायण के छोटे बड़े सर्व चरित्रों से आपने उनकी विशेषतायें अपने जीवन में ग्रहण की। सत्साहित्य कितना प्रभावी होता है, यह इसका प्रमाण है। आप इस संदर्भ में कहती हैं -

रामायण पढ़कर मैंने कई प्रेरणायें नई प्राप्त कीं। जैसे -

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम से अनासक्ति व त्यागवृत्ति, महासती सीता से नारी जीवन का अभय से परिपूर्ण उच्च आदर्श, बंधु लक्ष्मण से सेवा तथा भ्रातृप्रेम, उर्मिला से धैर्य और सहनशीलता, विभीषण से न्याय और धर्मरक्षा। हनुमान से अनन्य भक्ति, कौशल्या व सुमित्रा से अनन्य वात्सल्य, त्याग और कर्तव्य निष्ठा।

जो साधु विचरण करते हैं, उनका मानस शुद्ध रहता है। राग-द्वेष उनके हृदय में घर नहीं कर पाते।

मंगलमूर्ति महाश्रमण श्री फूलचन्द्र जी म० एवं श्रमण संघ के प्रधानमंत्री व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म० के व्याख्यानों का भी आप पर खूब प्रभाव पड़ा।

गृहस्थ साधकों में आप श्रीमद राजचन्द्र व श्रीमान फूलचंद जी मेहता उदयपुर वालों को अनेक बार स्मरण में लाकर उनका गौरवपूर्ण उल्लेख करती हैं।

इस तरह आपश्री के मन में स्थित धर्म के बीज को निरन्तर सम्पोषण मिलता रहा। समय-समय पर बीज को ऐसा खाद्य मिला कि वह बड़ा ही मृदु और गुणकारी फल दे पाया।

श्रद्धा से किसी को स्वीकार करने वाला अपनी अगाध श्रद्धानिष्ठा के कारण एक समय स्वयं श्रद्धेय बन जाता है। निरन्तर आदर वही पाता है, जिसमें वास्तविक रूप से उपकारियों के प्रति आदर का भाव होता है। संक्षेप में आपके व्यक्तित्व के विषय में यह कहा जा सकता है कि आपकी हर क्रिया, हर व्यवहार, हर कथन में संयम ही व्यक्त होता है, संयम ही आकार लेता है और संयम ही अनन्यता पाता है।

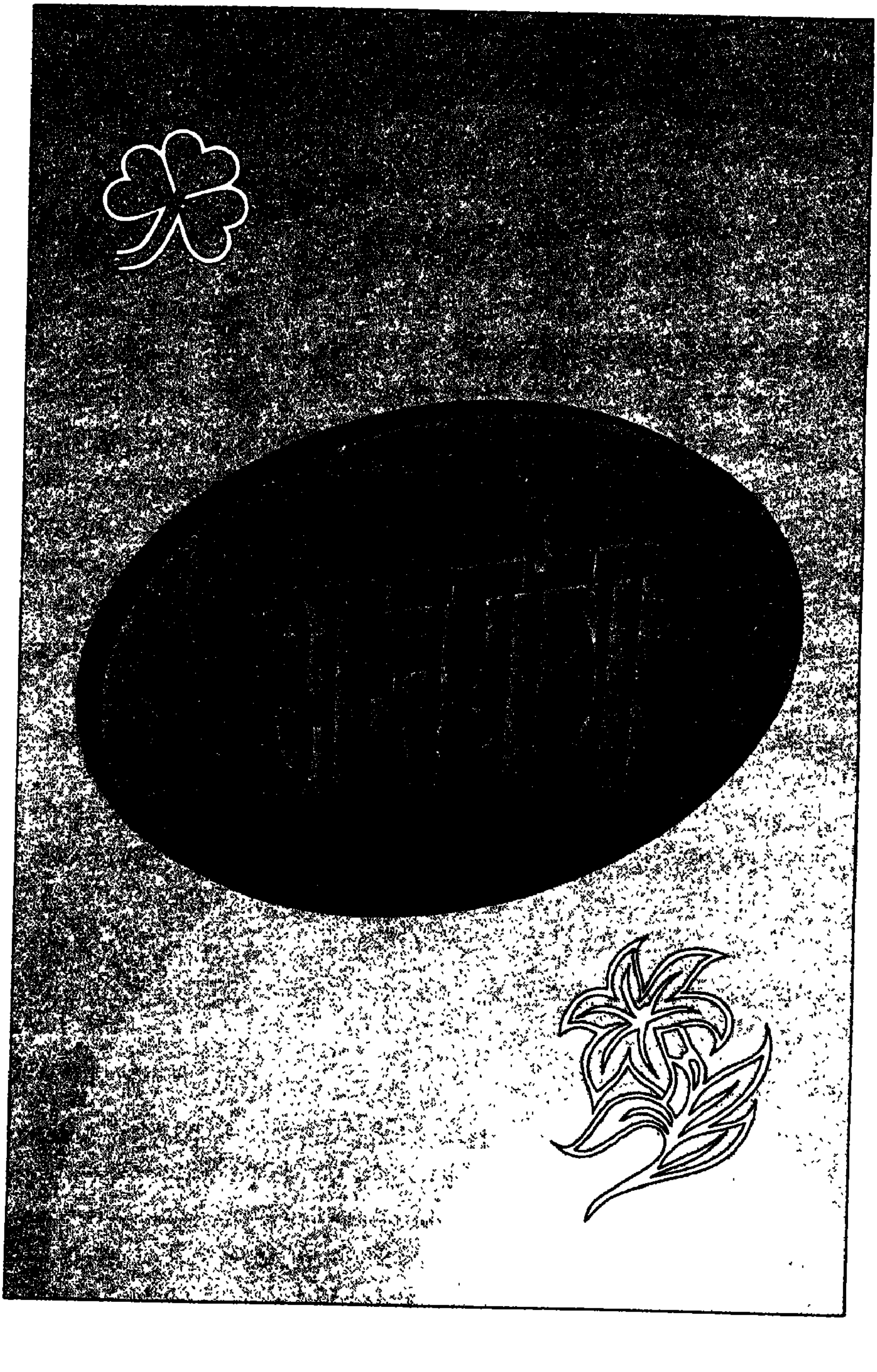
विचार-कण

तन ढकने के लिये वस्त्र जितने आवश्यक है,
जीवन निर्वाह के लिये अन्न जितना जरूरी है
मन पर अच्छे संस्कार डालने के लिये महापुरूषों के जीवन
पढ़ना उतना ही जरूरी है।

--- ..... ---

पूज्य गुरुवर्या के अक्षर दर्शन

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदम् । क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं । माध्यस्थ्य भावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव ॥ सुखे दुःखे वैरिणि बन्धुवर्गे योगे वियोगे भवने वने वा । निराकृताशेषममत्वबुद्धे ! समं मनो मेऽस्तु सदापि देव ॥ मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव । पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥ बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः । चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने! त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि ! ॥ [illegible] नैकधा [illegible] किं पुत्र कदाचन मित्रे । कृपण-कृते [illegible] कलौ हि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये ॥ शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे । साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥ यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् । लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥ काकस्य गात्रं यदि काञ्चनस्य माणिक्यरत्नं यदि चञ्चुदेशे । एकैकपक्षं ग्रथितं मणीनां तथापि काको न तु राजहंसः ॥ उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये । पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम् ॥ यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः । तथा चतुर्भिः नरः परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ॥



अन्तर्यात्रा

नन्हीं चिड़िया अनंत आकाश

प्रकाश अनंत है, आँखें अनंत को देख नहीं पाती, आकाश अनंत है, पक्षी सहस्र परों से भी उसकी असीमता नाप नहीं सकता। राहें (पृथ्वी) अनंत हैं, पैर सारी पृथ्वी पर परिभ्रमण नहीं कर सकते । इसी प्रकार महापुरुषों का व्यक्तित्व असीम होता है, उसे शब्दों की क्षुद्र परिधि में बांधा नहीं जा सकता। यूं भी किसी महान् व्यक्तित्व की महानता को प्रस्तुत करने के लिए किसी महान् व्यक्तित्व की ही अपेक्षा रहती है, तथापि अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी पूज्या कौशल्यादेवी जी महाराज के महान् व्यक्तित्व को शब्दों की सीमा में बांधने का यह प्रयास मात्र बालचेष्टा ही है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि सामान्य जन जीवन की भूमिका से महासतीजी बहुत ऊपर उठे हुए हैं। उनमें अनेकों ऐसी विशेषताएँ हैं जिनका सहज ही अन्यत्र पाया जाना कठिन है। आपका तपः पूत जीवन उस विशाल सागर के समान है जिसमें प्रतिदिन गोता लगाते रहें, तब भी नित्य नवीन मोती की प्राप्ति होती रहेगी। उन सभी मुक्ताओं का वर्णन मेरी शक्ति व सामर्थ्य से परे है, केवल कुछ ही गुण-मुक्ताओं को मैं यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ।

उत्कृष्ट त्याग-भाव

त्याग अपने आप में स्वतः ही उत्कृष्ट भाव है पर जब वह ऐसे व्यक्ति से जुड़ता है जो महान व्यक्तित्व का धनी होता है तो उस त्याग में विशिष्टता आ जाती है, वह त्याग अनुकरणीय बन जाता है। त्याग का अर्थ केवल किसी वस्तु को छोड़ना ही नहीं है वरन् उस वस्तु की आसक्ति एवं ममत्व का भी पूर्ण विसर्जन करना है।

'साधनों' को वही संभालता है, जिसके समक्ष 'साध्य' नहीं होता।

अर्थात् मैंने अमुक वस्तु का त्याग किया है ऐसा भाव भी मन में नहीं आता, तभी वह त्याग, त्याग की कोटि में आता है।

पूज्या कौशल्यादेवीजी म० उत्कृष्ट त्यागी हैं। बचपन से ही आत्मतत्त्व की स्वतंत्रता पर दृढ़ आस्थावान होने के कारण पदार्थ के प्रति आसक्ति या मोहभाव आप में किंचित् भी झलकता प्रतीत नहीं होता। आप किसी भी वस्तु से सहज ही अपने को अलग कर लेती हैं। पदार्थ की आसक्ति या उसमें मेरेपन की भावना या अधिकार जताने की भावना से आप सदा दूर रही हैं, यहाँ तक कि आप अपनी शिष्या परिवार के प्रति भी उतनी ही सहज हैं, कभी उन पर भी अधिकार की भावना नहीं रखी। अतः आदेश की भाषा में उन्हें कुछ नहीं कहतीं। जब भी कुछ कहना हो तो सलाह के रूप में अथवा सुझाव के रूप में अपनी बात कहती हैं।

आदेश निर्देश में लगभग अहंभाव छिपा रहता है। जहाँ आदेश की अवज्ञा हुई, अवहेलना हुई कि उसी क्षण अन्तर में बैठा अहंभाव का अजगर मुँह फाड़कर फुंकारने लगता है। आप न तो आदेश देती हैं, न अवज्ञा होने का दुःख उठाती है। इन सबके पीछे आप विचार-अनासक्ति काम करती है। अपने विचारों को किसी पर थोपना या अपनी बात मनवाना और न मानने पर क्रोध करना आपके स्वभाव में ही नहीं है। सारे संघर्ष, सारे फिसाद के पीछे अहं भाव ही प्रमुख है, इसी से राग भी उपजता है और द्वेष भी। इसी से पीड़ायें भी उभरती हैं और ममत्व भी जागृत होता है। इन सबसे जो दूर रहे वही सच्चा संत होता है। वही ममत्व का त्याग कर सकता है।

मनुष्य पदार्थ के प्रति राग भाव छोड़कर ही महानता के दरवाजे में प्रवेश करता है, लेकिन उससे भी आगे अपने विचारों का राग छोड़ना कठिन कार्य है। मैंने महाराज श्री को जब से समझना शुरू किया है, उन्हें विचारों के प्रति भी उतना ही अनाग्राही पाया जितना पदार्थ के प्रति। आग्रह शब्द तो उनके शब्दकोष में है ही नहीं। किसी भी संदर्भ में आप सबसे पहले अपनी बात छोड़ने की तैयारी रखती है। आप भलीभाँति जानती हैं कि आग्रह से बनती बात भी बिगड़ जाती है। आग्रह भरी हठवादिता से जड़ता उत्पन्न होती है।

आप अपनी यौवनावस्था में नोटबुक में अपने विचारों का संग्रह करती रही

'त्याग' यानि सभी दुर्गुणों की हार।

हैं। गद्य और पद्य दोनों रूपों में अपने विचारों का संकलन किया था। लेकिन जैसे-जैसे कोई आपसे माँगता गया, आप उसे प्रदान करती गयीं। आज आपके पास अपने हाथों से लिखी एक भी डायरी नहीं है। यह त्याग का कितना ज्वलंत उदाहरण है, कि अपने आत्मीय विचारों का संग्रह भी आपने अपने पास नहीं रखा। अनेकों पद्य आपने रचे, अनेक दोहे, कविताएँ, गीत लिखे, लेकिन लिखने के तुरंत बाद जैसे ही किसी ने देखने के लिए माँगा, उसे दे दिया और फिर से कभी लेना तो दूर, पूछने का भी काम नहीं। अपने उल्लिखित विचारों का सहज ही दान कर देना और दान के बाद स्वयं को उससे अलग कर लेना यह आप की विशिष्टता है। आचारांग सूत्र में कहा है -

जे ममाइ अमइं जहाइ से जहाइ ममाइअं।
से हु दिट्ठभए मुणी, जस्स नत्थि ममाइअं॥

अर्थात् - वही वस्तुतः संसार भीरु साधक है जिसे किसी प्रकार का ममत्व नहीं है। जो ममत्व बुद्धि का त्याग करता है।

आप भगवान की उक्त वाणी के आदर्श रूप हैं। आपके दर्शन, आपसे चर्चा, विचार में कुछ पलों में व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है कि अपने लिए कुछ भी करने से अधिक अच्छा है कि हम जीवन को औरों के लिए समर्पित करें। अपने लिए सुख की तलाश करने से अधिक उत्तम है औरों को सुख प्रदान करें। परिणाम यह होगा कि सुख का विस्तार होगा। जिसके लिए आप समर्पण भाव से सेवा में जुटेंगे उसे सुख की प्राप्ति होगी और स्वयं आपको उन सबका मिला-जुला आनंदातिरेक उपलब्ध होगा।

महासती जी श्री कौशल्यादेवी जी म०सा० कभी भी अपने को अभिव्यक्त करने की चेष्टा नहीं करती हैं। किसी ने उनकी ओर ध्यान दिया तो ठीक, न दिया तो ठीक। कोई उनसे कुछ पा गया तो उन्हें दर्प नहीं होता और कोई खाली गया है तो दर्द नहीं होता। महासतीजी अपने व्यवहार से बिलकुल बेलाग है। वे यह भी नहीं चाहती कि कोई उनके पास विशेष अनुरक्ति लेकर आए। अपनी शिष्याओं को भी वे ऐसा ही संकेत देती हैं कि संत की पहली आवश्यकता तो आत्म-साधना ही है। समाज के प्रति संत के दायित्व को अपनी आत्म-साधना से शेष बचे समय

जो सब कुछ सहन करता है, वह भिक्षु है।

में पूर्ण तत्परता से संपन्न किया जाए, साथ ही किसी से कोई अपेक्षा या स्वार्थ न रखा जाए। यदि कोई अपेक्षा हो भी तो यही कि जो उनके सम्पर्क में आए उसका जीवन विशुद्ध बने।

सहनशीलता की खदान

महासती कौशल्याजी म० सहनशीलता की मूर्तिमंत देवी हैं। हर परिस्थिति में "समता" आपका स्वभाव बन गया है। अनेकों बार आप व्याधियों से ग्रस्त हुई है। नौ-नौ महीने तक तीव्र ज्वर का प्रकोप रहा, लेकिन उस समय भी आपका समत्व भाव उच्च कोटि का था। स्वास्थ्य के बारे में पृच्छा करने पर आप अक्सर यही कहा करती कि - **"कर्मों का उदय है वो तो भोगना ही पड़ेगा।"**

आपने मारणांतिक वेदना में भी अपनी समता को कायम रखा। कफ का दुष्प्रभाव कभी-कभी शरीर के भीतर इतना हुआ कि पूरा पात्र कफ से भर गया, कफ निकलने के समय जैसे प्राण ही बाहर आने लगते हैं, जो देखता है वह वेदना से द्रवित हो उठता है। इतनी वेदना में भी आप सदा समता के साथ प्रतिस्पर्धा करती दिखाई दीं।

यह धारणा है कि शारीरिक वेदना उतना दारुण दुःख नहीं देती है जितनी मानसिक वेदना। अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियाँ, जिम्मेदारियाँ, वातावरण, संयोग-वियोग आदि मानसिक वेदना में कारण बनते हैं। लेकिन महासतीजी इनमें भी "सम" रहने की आदि हैं। उनका कहना है - **"धर्मनिष्ठ व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होता। अगर वह दुःखी है, तो समझना चाहिए कि उसने धर्म को ठीक से समझा ही नहीं, वह धर्म करता ही नहीं।"**

"धर्म यदि व्यवहार में रम गया है तो भला उसमें किसी भी प्रकार की कलुषता उपजने का मौका ही केसे मिलेगा? धर्म को धारण करने वाला अंनत ज्योतिर्मय स्वरूप के सन्निकट जा पहुँचता है। जो सिद्धों केश्रीचरणों में स्थित है उस पर कोई आँच कैसे आ सकती है? धर्म की शरण निश्चय रूप से किसी भी शरण से महान और महत्वपूर्ण है।"

कई बार आप दुवर्चन के विषैले तीर की शिकार हुई, परन्तु मर्मभेदी वचन सुनकर भी आप सहज बनी रहती हैं, ऐसे मानो कुछ हुआ ही नहीं।

प्रत्येक मनुष्य अपने आप में एक विशाल ग्रन्थ है, यदि आप उसे पढ़ने की कला जानते हो तो।

एक बार एक आदमी आया और आपको कुछ उलजुलूल बोल गया। आपने न उस पर कोई द्वेष किया, न कोई प्रतिवाद किया। आप उसकी हर बात इस तरह शांति से सुनते रहे, जैसे गुरु की डाँट-डपट हो। वह व्यक्ति कुछ देर बोल बुलाकर चला गया। आप उसके जाने पर भी मौन ही रहे। हमने सोचा उसकी चर्चा महाराज श्री हमारे समक्ष करेंगे। पर आपने कोई चर्चा न की। हमें आश्चर्य हुआ कि उत्तेजना के इतने क्षण झेलकर भी आप समत्व भाव में स्थिर हैं। ऐसी प्रशांति साधारण साध ाक के लिए संभव नहीं है।

ऐसे अनेक अवसर आते ही रहते हैं, पर आप समता में ही मग्न रहती हैं। प्रत्येक प्रशंसात्मक या निन्दात्मक वचन ऐसे पचा लेती हैं जैसे समुद्र मोती और कंकर दोनों पचा लेता है।

आपकी समता व सहनशीलता के लिए बेंगलोर श्रीसंघ के मंत्री स्व० श्री उत्तमचंद जी रुणवाल कई बार यह बात दोहराते थे कि -"मैं अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस का मंत्री हूँ, अनेक साधु-सन्तों के परिचय में आने का मेरा काम पड़ा है पर मैंने अपने जीवन में महासती कौशल्याजी जैसी शांत, सौम्य, सहनशीलता की प्रतिमूर्ति दूसरी साध्वी नहीं देखी।"

कहा भी है -

"चंदन अपने अड़ोस-पड़ोस में सुगंध उँड़ेलता है।
और अवकर अपने आस-पास दुर्गंध धकेलता है।
पर यह सब तो निश्चित् अपना-अपना स्वभाव है,
बलिहारी उसकी है जो दोनों को समता से झेलता है।"

आपका एक ही सूत्र है - "कहना नहीं सहना सीखो।" इसी सहने की आदत के कारण आप किसी की कोई भी बात व्यक्त नहीं करतीं। कभी-कभी लगता है जैसे आप अपने को जरा भी प्रदर्शित नहीं करना चाहतीं। पर आपकी सौम्य छवि भला सुश्रावकों से छुप कहाँ पाती है ? कहा भी है -

"निगाहें काबिलों पर पड़ ही जाती हैं जमाने की।
नहीं छिपता है "अकबर" फूल पत्तों में निहा होकर।।"

आप श्री का यशस्वी जीवन वस्तुतः सहिष्णुता की पराकाष्ठा रूप है। बेबात की बात करने वालों से भी आप चिढ़ती नहीं, कइयों की बातों में विसंगतियाँ, होती

जहाँ नदी गहरी होती है, वहाँ जलप्रवाह अत्यंत शांत व गम्भीर होता है।

हैं, कई एक की बातों में स्वार्थ, पर आप सबको धैर्यता से सुनती हैं। इसके विपरीत कोई अपने मन में हीन भाव महसूस न करें, अतः हर निरर्थक लगने वाली बात में भी आप कोई न कोई तथ्य या तुक खोज ही लेती हैं।

आपके इस स्वभाव का ही परिणाम है कि आप किसी के ऊँचे-नीचे बोल से आहत नहीं होतीं। किसी के प्रति आपके मन में असम्मान की भावना नहीं उभरती। सहिष्णुता और समन्वयशीलता का सेतु बनना ही जैसे आपका उपक्रम बन गया है। आपका कहना है -"हमारा न कोई मित्र है, न कोई शत्रु। सब वही है जो हम हैं।"

आपका कहना है कि मनुष्य बहुत कुछ कान से सुनता है, और बहुत कुछ आँखों से देखता है, लेकिन सब सुना हुआ और देखा हुआ मुँह से निकालने के लिए नहीं होता। संभवतः सहनशीलता का यह पहला पाठ है। इसमें दो राय नहीं कि साधु के लिए सहनशीलता एक अनिवार्यता है। इस अनिवार्यता को आपने जीवन की सहजता बना लिया है। इस प्रकार आप बन गयी है सहनशीलता की प्रतिमूर्ति।

मितभाषिणी

महासती कौशल्यादेवीजी मितभाषी हैं, यह आपकी स्वभावगत विशेषता है। आप बोलती कम हैं, इसी कारण आपके जीवन में तेजस्विता का संचरण हो रहा है। जो व्यक्ति बहुत ज्यादा बोलता है उसके जीवन में तेजस्विता नहीं आ पाती। "बहुयं मा य आलवे" भगवान की इस अमूल्य वाणी को आपने अपने जीवन में चरितार्थ किया हुआ है।

कम बोलने से तेज सुरक्षित रहता है और माधुर्य उपजता है, इंद्रियों को विश्राम मिलता है। वाचालता प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में हर इंद्रिय पर अपना कुप्रभाव डालती है। अल्पभाषण से अशुभ पर विराम लगता है। उत्तेजना को अवसर नहीं मिलता, बौद्धिकता का घनत्व बढ़ता है, सोचने की वृत्ति में वृद्धि होती है, विचारहीनता समाप्त हो जाती है। कम बोलने से सुरुचि व्यक्त होती है। शब्द उतने ही बोलने चाहिए, जितने जरूरी हों, व्यर्थ बोलने से कोई लाभ नहीं हैं।

कम बोलने का एक प्रमुख रहस्य यह भी है कि आप सद्गुणों से परिपूर्ण है, और जो पूर्ण होता है वह अल्पभाषी ही होता है। कहा भी है -

---

बोलना एक उत्तम कला है, मौन उससे भी ऊँची कला है।

संपूर्ण कुम्भो न करोति शब्दमर्धो घटो घोषमुपैति नूनम्।
विद्वान कुलीनो न करोति गर्व, गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति॥

अर्थात्, संपूर्ण जलयुक्त कुम्भ शब्द नहीं करता, अर्धपूर्ण कुंभ ही शब्द करता है, उसी प्रकार विद्वान एवं कुलीन पुरुष अंहभाव से रहित होता है, अर्थात् कम बोलता है। गुणहीन पुरुष व्यर्थ का प्रलाप करता है।

अधिक बोलना कसैला स्वाद देता है। अतः वाचाल व्यक्ति भी किसी का वाचाल होना पंसद नहीं करता। जीवन में कटुता से बचने के लिए मितभाषी होना अच्छा है। लगातार अधिक बोल जाने से शब्दों का असर कम होता जाता है।

कम शब्दों में जो भाव प्रकट होते हैं, उनमें अधिक घनत्व होता है। यह नहीं भूलना चाहिए। कम बोला हुआ "कथन" होता है, अधिक बोला हुआ 'शोर' हो जाता है। अल्प शब्द अभिव्यक्ति को सजीव बना देते हैं, तो अधिक शब्द अविश्वसनीय प्रतीत होने लगते हैं, कभी-कभी बखेड़ा खड़ा कर देते हैं। इन सब तथ्यों और सत्यों से महासतीजी भलीभाँति परिचित हैं तभी तो वे मितभाषिणी हैं। और उनकी इस मितवादिता से अंकुरित बहुविध सद्‌गुण जीवन के अनेक क्षेत्रों में परिलक्षित होते हैं।

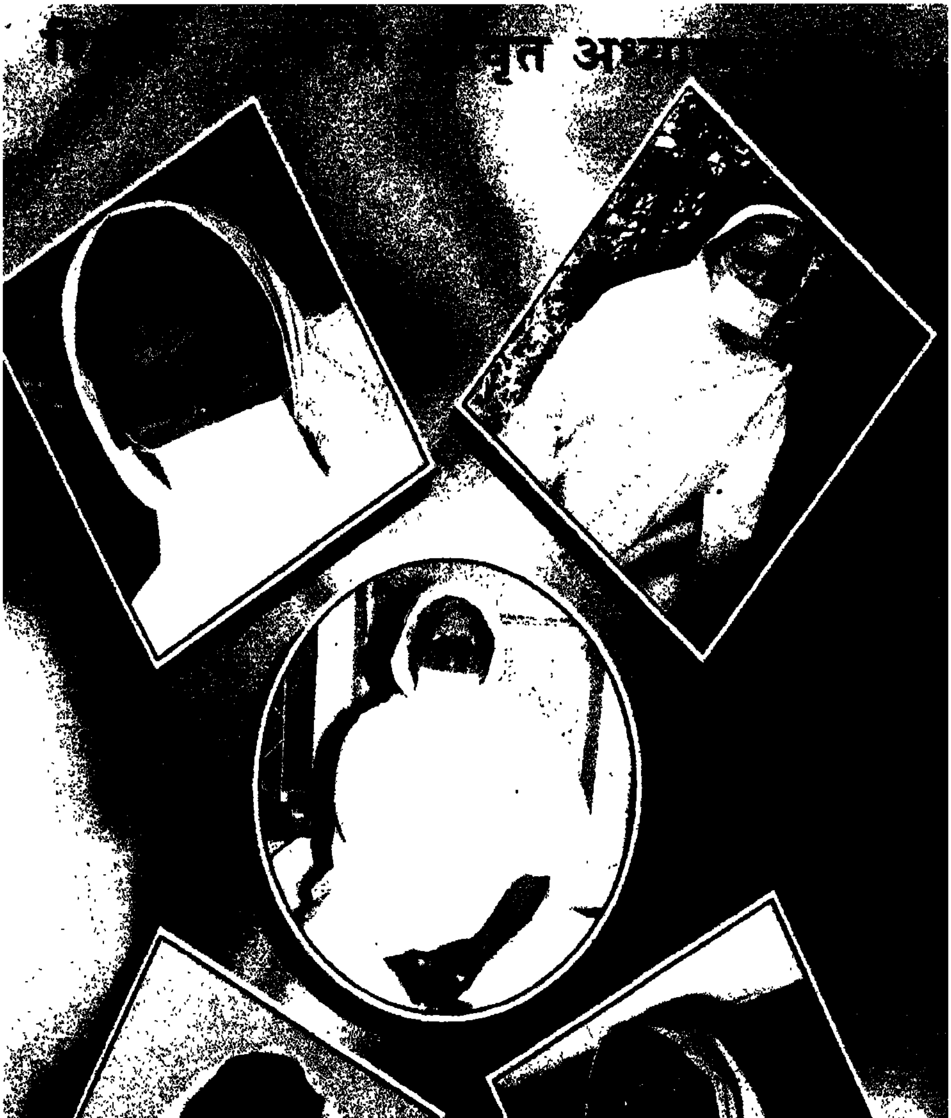
विनय की प्रतिमूर्ति

विनय सभी सद्‌गुणों की जननी है। कहा है - "Humility is Mother, Nurse root and foundation of all Virtues."

विनय वृत्ति, विद्वान की विद्वता को, धनवान् के धन को, बलवान् के बल को, रूपवान् के रूप को निखार देती है गुणी की पहचान करने के लिए मात्र एक विनय को देख लेना काफी होता है। यदि व्यक्ति में उक्त गुण हैं तो समझ लेना चाहिए कि वह सर्वगुणसंपन्न है। विनय की ही तुला पर उच्चता, नीचता, श्रेष्ठता, कनिष्ठता का माप-तोल हो जाता है। कहा भी है-

---

अगर गड्‌ढा पूरा है, तो नदी कितनी देर यहाँ-वहाँ भटकेगी?





आप जिनके करीब हैं

" जहाँ निस्पृहता है, वहीं टिकता विराग है।
निर्भयता जहाँ हैं, वहीं सत्य का चिराग है।
शिक्षा के अंचल में सद्‌गुण खोजने वालों।
जहाँ विनम्रता है वही साधना का चिराग है॥ "

महासती जी ज्ञान में श्रेष्ठ, संयम में श्रेष्ठ, तप में श्रेष्ठ होती हुई भी विनय की साकार प्रतिमा हैं। विशाल शिष्या परिवार की स्वामिनी होती हुईं भी अंह उन्हें छू भी नहीं पाया है। दीक्षा के प्रारंभ से लेकर आज पचास वर्ष की दीक्षा पर्याय होने पर भी वे अपनी गुरुणी के समक्ष उतनी ही विनम्रता के साथ प्रस्तुत होती हैं और उनकी हर आज्ञा का पालन करने के लिए सदैव तत्पर रहती हैं।

"अति परिचयादवज्ञा" की लोकोक्ति आप पर चरितार्थ नहीं होती। आपकी गुरुणी आपको कितनी ही बार याद करें, आप हर आवाज पर स्वयं उठकर जाती हैं। उत्तराध्ययन सूत्र की भाषा में कहा जाए तो "इंगियागारसंपन्ना" अर्थात् आप महान प्रज्ञावती हैं, गुरुजनों एवं पूज्यजनों के इंगित मात्र को समझकर तत्क्षण कार्य करने की क्षमता से संपन्न हैं।

यह आपके विनय का ही चरम रूप है कि पूज्यजनों के विनय में तो आपने कभी उपेक्षा की ही नहीं, परन्तु लघु साधकों के प्रति एवं गृहस्थ श्रावक-श्राविकाओं के प्रति भी किसी प्रकार का कठोर व्यवहार आप कभी नहीं करती।

" न साहूणं आसायणाए न साहूणीणं आसायणाए,
न सावयाणं आसायणाए, न सावियाणं आसायणाए,"

इस आगम वाक्य को आपने कभी विस्मृत नहीं होने दिया। मानव मात्र के प्रति आपके मन में अपार श्रद्धा है। विनय का जितना अधिक विस्तार होगा, उतना ही सामंजस्य बढ़ेगा। यह आपकी धारणा है। आप अक्सर कहती हैं, कि विनय से किसी को कोई हानि नहीं होती हैं। विनयी की सर्वत्र प्रशंसा होती है। विनय को व्यवहार में लेने से मन को प्रशांति मिलती हैं। अवज्ञा अथवा अविनय से किसी को बदला नहीं जा सकता। यह एक ऐसा गुण है जो सारे ही मार्ग को सुगम बना देता है। विनय हर प्रकार की आग को निर्मल निर्झर में बदल देता है। विनय उस दीपक के समान है जो निरन्तर आलोकमयता का प्रसार करता है।

कई साध्वियाँ आपसे दीक्षा पर्याय में कनिष्ठ होती हैं, लेकिन आप कभी

किसी की दीक्षा पर्याय नहीं पूछती, जिन्हें भी वयः स्थविर, दीक्षा स्थविर के रूप में देखती हैं, उनको स्वयं वंदना करना प्रारंभ कर देती हैं। एक बार उदयपुर में श्री चन्द्रावतीजी महाराज के साथ आपका चातुर्मास हुआ। आपसे वे दीक्षा पर्याय में एक वर्ष छोटी थी, फिर भी महासतीजी ने उन्हें वन्दन किया तो उन्होंने समझा कि कौशल्याजी हमारे से दीक्षा पर्याय में छोटी ही होंगी, अतः वंदना कर रही हैं। महासतीजी उन्हें अपने से बड़ा मानकर नित्य प्रति वंदना करती थी। यही क्रम चार मास तक जब जब भी मिले चलता ही रहा।

चातुर्मास के कुछ ही दिन शेष थे तब चन्द्रावतीजी महाराज ने सहज ही श्री केसरदेवीजी महाराज से महासती कौशल्याजी देवी जी का दीक्षा सम्वत् पूछा, तो पता लगा कि वे एक वर्ष बड़ी है। उन्हें बड़ा अजीब सा लगा, बोलीं - "चार मास से आप हमें वंदना कर रही हैं, और हम भी अज्ञान अवस्था में वन्दना लेते रहे।"

ऐसा कहकर उन्होंने महाराज श्री से बार-बार क्षमायाचना की और वंदन करने लगी। महाराज श्री ने उन्हें रोकते हुए कहा - "आप तो मेरी माता के बराबर हैं, अतः वंदनीय ही हैं।" आपकी विनम्रता देखकर वे गद्‌गद हुए बिना नहीं रहीं।

इस प्रकार आप वयः, श्रुत और दीक्षा स्थविर होने के बावजूद भी परस्पर व्यवहार में अत्यधिक उदार विचार रखती हैं। आपके इस गुण के कारण आपकी बड़ी ख्याति है। कहा भी है - "गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं" विचारों की यह उदारता आपके विनय का ही परिणाम है। आपने विनय को अपने हृदय में इस तरह धारण किया है कि जो भी आपके रान्निकट आता है, वही आपके प्रति विनय से परिपूर्ण बन जाता है। जो आप ग्रहण करती हैं, वह विनय से संलग्न हो कर, जो आप प्रदान करती हैं वह विनय से संम्पृक्त हो कर।

वस्तुतः विनय व्यक्ति का सबसे बड़ा विवेक है। अध्यात्म की ओर उन्मुख जीवों में विनय स्वतः ही उभरता है। विनय वे ही नहीं करते हैं जो भौतिक कदाग्रहों से ग्रस्त है। अविनय भाव अनेक सद्‌गुणों को निरस्त कर देता है।

विनय आत्मा का गुण है, धर्म है, और जो धर्म की शरण में होते हैं, वे सदा आनंदित रहते हैं। विनय के द्वारा ही संघर्ष टाले जाते हैं, किसी के प्रति वैमनस्य को सौमनस्य में बदला जाता है। महासती श्री कौशल्याजी महाराज इस विनय धर्म से संयुक्त होकर अनेक सद्‌गुणों की खान लगती हैं। कहा भी है -

---

सेवा में प्रेम मुख्य है, पूजा में भावना।

"विनय व्यक्ति की शोभा है उसका गुण है।
नभ का चन्द्र यही, यही तेजस्वी अरुण है।
विनय की परिधि में जो भी होता है अर्पित।
त्याग देता सहज ही जो उसमें अवगुण है ॥"

ऐसे गुण संपन्न विनय को जीवन में प्रथम स्थान देकर ही आप अपने अभीष्ट को प्राप्त कर रही हैं। यही आपकी लोकप्रियता की कुंजी है, जो आपको जन-जन का श्रद्धेय बना रही है।

सेवा की अमर साधिका

किसी ने प्रश्न किया -"प्रभु प्राप्ति के कितने मार्ग हैं?" सन्त ने कहा -"जगत में जितने अणु है, उतने ही प्रभु की प्राप्ति के मार्ग हैं, परन्तु उन सबमें "सेवा" सर्वोत्तम एवं संक्षिप्त मार्ग है।" सेवा धर्म में हर व्यक्ति प्रवेश नहीं पा सकता। सेवा कह देना बड़ा ही सरल कार्य है, पर सेवा करना उतना ही दुष्कर कार्य है। गहन वन में योग साधना करना सरल है, मासखमण का तप करके कुशाग्र भाग का भोजन सरल है पर सेवा पथ पर चलना कठिन कार्य है। सेवा का पथ गहन पथ है। कहा भी है -

"सेवा धर्मः परम गहनः योगिनामप्यगम्यः।"

सेवा वही कर सकता है जो अपने जीवन के समस्त क्षण दूसरों के लिए अर्पित कर देने की क्षमता रखता हो। जो विनय और विवेक का अभ्यासी हो। अर्पित होने की शक्ति और अहंवृत्ति को जीतने का साहस रखे वही सेवा जैसा पावन कार्य कर सकता है। सेवा वृत्ति को अपनाने वाला जीवन के अतुल आंनद से अभिषिक्त होता है। सेवा से पूर्व और सेवा के पश्चात् जिस आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है, वह स्वर्गिक सुख से भी बढ़कर है।

परम श्रद्धेया श्री कौशल्यादेवी जी महाराज सेवा को अपना परम साध्य मानती हैं, सेवा का जहाँ भी काम पड़ता है आप उसी मोर्चे पर अडिग होकर पूर्णतः डट जाती हैं और उस कार्य के सम्पन्न होने तक डटी ही रहती हैं। सेवा का कार्य करते हुए आपने कभी आलस्य प्रमाद या अशक्ति का अनुभव नहीं किया। आपका वात्सल्य और समाधि प्रदान करने की समुल्लसित विचार तरंगों से ही रोगी को

संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं। - प्रेमचंद्र

आत्मिक शांति एवं स्वस्थता प्राप्त हो जाती है। वस्तुतः दवाएँ उस समय तक निष्प्रभावी रहती हैं जब तक उनके साथ मन के उत्तम भाव नहीं जुड़ते हैं। केवल दवाओं से प्राप्त आराम स्थायी नहीं होता हैं उसके लिए मन की सबलता भी उतनी ही जरूरी है। यह एक तथ्य है कि कोई भी बीमारी आधी मृदु-व्यवहार और मिष्टवचन युक्त सेवा भाव से दूर होती है।

बड़े, छोटे सबकी सेवा दीर्घकाल तक करना और वह भी प्रसन्न मुद्रा में करना एक बहुत बड़ी बात है। सन् 1973 में बम्बई चातुर्मास के समय मेरे गले की थाईराईड ग्रंथि बढ़ गई, डॉक्टर ने ऑपरेशन की राय दी। उसके अनुसार ऑपरेशन हुआ, उस समय अन्य साध्वियों के होते हुए भी आप भीष्म ग्रीष्म में आधा किलोमीटर जाकर मेरे लिए पथ्य लाती रहीं। कभी इसमें विलम्ब हो गया हो, या अंतर पड़ गया हो मुझे याद नहीं। लगातार एक मास तक यह क्रम चलता रहा।

बम्बई घाटकोपर चातुर्मास में तो स्वयं महासतीजी को भंयकर ज्वर ने घेर लिया और कफ का प्रकोप इतना बढ़ गया कि अस्पताल में भर्ती करवाना पड़ा। रोज 103 या 104 डिग्री बुखार रहता। नौ माह तक ज्वर का उतार-चढ़ाव चलता रहा। फलस्वरूप आप काफी अशक्त हो गयीं। दुर्बलता ने आपकी देह को पूर्णतः घेर लिया किन्तु उस समय भी सेवा का अवसर आप पा ही लेतीं।

अपनी वेदना के समय तो आपकी सहनशीलता ज्यादा ही बढ़ जाती है। सेवा शुश्रूषा के लिए हर समय तैयार रहने पर भी साध्वियों को कम से कम कष्ट देने की आपकी भावना रहती है। आप स्वयं बड़ी से बड़ी पीड़ा सहकर भी सेवारत हो जाती हैं। जिस समय आप घाटकोपर बम्बई में तीव्र ज्वर से आक्रान्त थीं, उन्हीं दिनों मुझे भी टाइफाईड हो गया। मेरी रुग्णता को सुनकर आप अपना सारा दुःख दर्द भूल गयीं। आपके अन्तर का वात्सल्यभाव हिलोरें लेने लगा, उसी भाव से प्रेरित होकर आपने मुझे भी अस्पताल में अपने पास ही बुला लिया। और अपनी दीर्घकाल की रुग्णता को भूलकर दिन-रात मेरी ही परिचर्या में संलग्न हो गई। उस समय मुझे ऐसा महसूस होता था, कि आपका रोम-रोम मेरे इर्द-गिर्द मंडरा रहा हो।

कहना न होगा कि आपकी वात्सल्य वारिधि में मेरा ज्वर ज्यादा दिन नहीं टिक पाया, वह शीघ्र ही उसमें डूबकर विलीन हो गया। मेरी ही तरह आपकी सेवा,

संसार में न तुम्हारा कोई मित्र है न शत्रु। तुम्हारा अपना व्यवहार ही मित्र और शत्रु का निर्माण करता है।

शुश्रूषा, स्नेह और वात्सल्य का जिसने एक बार भी अनुभव कर लिया, वह अपने जीवन में उस प्रसंग को कभी नहीं भूल सकता।

वस्तुतः सेवा तब सेवा नहीं रहती जब उसमें प्रतिदान की अपेक्षा जुड़ जाती है। सेवा एक निस्वार्थ भाव है। सेवा पूर्णतः अन्तर्भावना है। सेवा एक प्रकार की उद्भावना है, जो मनुष्य की आंतरिक स्नेहमयता को व्यक्त करती है। महासती कौशल्या देवी जी सेवा की अमर साधिका हैं। वे सेवा को साधना मानकर सेवा कार्य में जुटती हैं। उनकी सेवा के साथ जुड़ा रहता है वात्सल्य, जो किसी की वेदना के क्षणों में हृदय की गहराईयों से फूट पड़ता है। संत तुलसीदास जी की निम्न अभिव्यक्ति महाराज श्री जी जैसी विभूति के लिए ही मानो निःसृत हुई हो। उन्होंने कहा है -

"संत हृदय नवनीत समाना, कहा कवियन पर कहीं न जाना।
निज परिताप द्रवहि नवनीता, पर परितापहिं संत पुनीता ॥ "

वस्तुतः देखा जाए तो सेवा आपका व्रत है, सेवा आपका धर्म है, सेवा ही आपका सर्वस्व है, और सेवा ही आपका परिचय है। स्नेह में स्निग्धता की तरह सेवा के साथ आपका अविनाभाव सम्बन्ध है। सेवा से आपको पृथक् करना आत्मा से चैतन्य को पृथक् करने के समान है। सेवा आपकी आत्मा की गरिमा है, उज्जवलता है। भ० महावीर ने अपनी अलौकिक देशना में सेवा साधकों को धन्यवाद देते हुए कहा है - "जे गिलाणं पडियरइ से धण्णे।"

जो ग्लान की पीड़ा हरते है वे धन्य हैं। निश्चय ही सेवानिष्ठ साधक धन्यवाद के पात्र हैं। सेवा आत्मा का अमर संगीत है जिसकी लय पर सेवानिष्ठ के हृदय का रोम-रोम थिरकता है। सेवा मानव का सबसे उत्तम संकल्प है। इस महान संकल्प पर अविरत चलती हुई आप कोटि-कोटि जनसमुदाय की श्रद्धेय भाजन बनी हैं।

हिमालय की करुणा जैसे अगणित निर्झर और नदियों के रूप में विगलित होती हैं उसी प्रकार आपकी करुणा की धारा भी सेवा के बहाने वात्सल्य, त्याग, सहिष्णुता, सद्भावना, प्रेम, मधुर वचन आदि हजारों रूपों में व्यक्त होती है। उन सबका पृथक्-पृथक् विश्लेषण करना संभव नहीं, अतः सेवा में ही इनका भी अन्तर्भाव हो जाता है।

अविरोधी व्यक्तित्व

श्रद्धेया महासती श्री कौशल्यादेवी जी म० सच्चे अर्थों में एक जीती जागती संतत्व की प्रतिमा है। आपका निखिल जीवन ही सद्‌गुणों की पुंजीभूत राशि है। ऐसा कौन सा सद्‌गुण हैं जो आपमें विद्यमान न हो ? ऐसी गुणराशि, शीतल स्वभावी, मन से प्रशान्त, मितभाषी महासती का विरोधी कौन हो सकता है ? कठोर और क्रूर हृदय वाले भी आपके प्रशंसक ही हैं। प्रतिकूल अवधारणाओं वाले व्यक्ति भी आपके प्रति अनुकूल हैं। यह आपके व्यक्तित्व की उच्चता को व्यक्त करने वाली आनंदमयी अनुभूति है।

लोगों में प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के विरूद्ध धीमी-धीमी ही सही कानाफूसी चलती ही रहती है, क्योंकि संसार एक थर्मामीटर के समान है, वह सबके गुण और दोषों का अंकन करता रहता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति के विरुद्ध कोई न कोई अंगुली उठाने वाला मिल ही जाता है, लेकिन मैंने ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं देखा जो आपसे रुष्ट हो या किसी को आपके प्रति कोई शिकायत हो। तात्कालिक रोष कभी किसी ने व्यक्त किया भी हो तो उसे फिर यह आभास हो जाता है, कि वही गलत है। आप सदृश व्यक्तित्व के प्रति कहा भी है -

"जग में वैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय।
या आपा को डारि दे, दया करे सब कोय ॥ "

जब आप सबकी हित चिंता में लगी रहती हैं, तो आपका शत्रु कौन हो सकता है? आपका हृदय-मन्दिर सदा प्रेम, मैत्री, सेवा, उदारता की उत्कृष्ट प्रतिमाओं से पूज्यनीय बना रहता हैं वात्सल्य का अविरत स्रोत सदा आपकी मनोभूमि पर लहराता रहता है। आपके पास स्नेह का ऐसा अपार भण्डार है कि दुश्मनी को स्थान ही नहीं मिलता, क्योंकि

" करूँ मैं दुश्मनी किससे, नहीं दुश्मन कोई मेरा ।
मुहब्बत ने जगह बाकी, नहीं छोड़ी अदावत की॥"

शत्रुता की भी कुछ शर्तें होती हैं, अर्थात् शत्रु वह होता है जो किसी के प्रति द्वेष रखता है, या ऐसे उपक्रम करता है जो किसी को हानि पहुँचाए या किसी के अधिकार क्षेत्र में दखलंदाजी करे। परंतु जो सबके प्रति मध्यस्थ होकर सब वृत्तियों से परे रहता है उसके प्रति किसी की भी शत्रुता किस आधार पर रह सकती है ?

व्यवहार की हो या अध्यात्म की, जटिल से जटिल बात भी 'सहजता के सूत्र' से सुलझ जाती है।

जो स्वयं ही स्नेह की दावत दे, जो प्रत्येक के प्रति स्नेह की सरिता बहाने में ही संलग्न रहे, जो बिना किसी अपेक्षा के प्रीतिदान देता रहे वह किसी की भी शत्रुता का कारण कैसे हो सकता है ?

स्थितप्रज्ञ व्यक्तित्व/निरपेक्षता से जुड़े व्यक्तित्व, सदा ही अजातशत्रु के रूप में स्थित रहे हैं। महासती श्री कौशल्यादेवीजी का भी व्यक्तित्व ऐसा ही अनुपम है। अनजाने में कभी किसी की कोई गलतफहमी रही हो तो बात और है अन्यथा जो भी आपके दर्शनों के लिए आता है, कुछ ही क्षणों में आपके व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाता है तथा अपने को कृत्कृत्य मानता है। महासती श्री कौशल्याजी म० की ये वृत्तियाँ उनके जीवन का अभिन्न अंग हैं, जो सहज रूप से उनमें अभिव्यक्त होती हैं।

सहज जीवन

आप श्री की साधना नदी के प्रवाह की तरह सहज है। न उसमें ठहराव है, न बहाव, न तनाव है, न कोई भार है। बड़े से बड़ा कार्य भी सहज में पूर्ण करने की कला आपमें विद्यमान है। प्रवचन, सम्पर्क, सेवा, धर्म क्रियाएँ, व विशाल शिष्या परिवार का उत्तरदायित्व निभाते हुए भी आप सदा सहज बनी रहती हैं। मुझे वे क्षण याद आते हैं जब आपने श्री भारिल्लजी के आग्रह से पाथर्डी बोर्ड की "जैन सिद्धान्त शास्त्री" तक की परीक्षाएँ दी। उक्त सभी जिम्मेदारियों का निवर्हन बराबर करते हुए आप कब अध्ययन में लगते हमें उसका आभास तक नहीं हुआ।

न्याय का विषय अत्यन्त जटिल और दुर्गम्य है, उसके अध्ययन हेतु आपने अपनी शिष्याओं के लिए **शोभाचन्द्रजी भारिल्ल** जैसे प्रकाण्ड पण्डितों को बुलवाकर पढ़ाया, लेकिन स्वयं कभी निश्चिन्त होकर आद्योपान्त उस विषय को पढ़ नहीं सके। परीक्षा के दिनों में भी प्रातः प्रवचन और दोपहर को परीक्षा में संलग्न होते देख हम हैरान रह जाते थे। पंडितजी दिन में जिस विषय का अध्ययन करवाते उसे आप रात्रि के समय अपनी शिष्याओं से श्रवण करते थे और उसी को स्मृति में रखकर आपने उच्च परीक्षायें दीं।

विशाल गच्छ में सेवा के सतत प्रसंग आते ही रहते हैं, हमने एक दिन भी महासतीजी को सेवा से विरत होते नहीं देखा। वे सतत जहाँ भी आवश्यकता होती है, वहीं उपलब्ध हो जाती हैं। आपकी सतत आवश्यकता सभी को रहती है, और

मन आगे भागे तो उसकी लगाम खींच लो और उसे फिर-फिर आत्मोन्मुख करो।

आप क्रम-क्रम से सभी ओर परिक्रमण करती रहती हैं। कभी-कभी तो अनेकों को एक साथ संभालना पड़ता है। कितनी भी व्यस्तता हो, जहाँ आपकी आवश्यकता होती है, वहीं आप पहुँच जाती हैं। बस, आपको किसी की तकलीफ की जानकारी भर होनी चाहिए। इस सारी प्रक्रिया में आपके चेहरे पर वही चिर परिचित सौम्यता, वही अनुद्विग्नता, वही गंभीरता, और वही वात्सल्यता नजर आती है। करने का न कोई दिखावा है न एहसास। न उसका कोई लेखा-जोखा है न कोई हिसाब किताब।

सहज जीवन में कोई उलझनें नहीं होती, कपट नहीं होता, सब कुछ सरल, निष्पाप होता है। सहज जीवन जीने वाले के व्यवहार में विशुद्धता होती है, बोलचाल में मृदुता होती है। जीवन की सहजता से कोई भी लक्ष्य प्राप्त करने में सुविधा और निश्चितता होती है। महासती कौशल्यादेवीजी के स्वभाव में सहजता अणु-अणु में समायी हुई है।

सन 1967 में डॉ. सरोज श्री जी महाराज की घोर अस्वस्थता के कारण महासती श्री कौशल्यादेवीजी को उनके साथ एक महीना दिल्ली के अमरीकन अस्पताल में रहना पड़ा, उस समय नवदीक्षिता के रूप में मैं महासतीजी के साथ ही थी। महासतीजी मुझे साथ लेकर दो किलोमीटर दूर से गोचरी-पानी लाया करते थे। रात्रि को मेरा कंठस्थ ज्ञान श्रवण करते या प्रश्नोत्तर करते थे, यह सब कुछ इतना सहज होता कि कभी कार्यभार लगता ही नहीं। इससे मुझे साध्वी जीवन में रस प्राप्त होता था। मेरा जीवन मुझे कृतार्थ होता हुआ प्रतीत होता था। महासतीजी की सहज प्रवृति का उल्लेखनीय उल्लेख मैंने प्रशंसा के बतौर नहीं किया है, वे ऐसी किसी भी प्रशंसा अनुशंसा की मोहताज नहीं हैं। मेरा उद्देश्य यह है कि उनकी यह प्रवृत्ति जो मैंने देखी है, उसे सब जानें। यह सहज प्रवृत्ति हर साधक को अध्यात्म जीवन जीने की महान शिक्षा देने वाली है।

संयमनिष्ठा

सुस्पष्ट चरित्र, व आचार निष्ठा संयमी जीवन का एक अत्यंत उज्जवल पक्ष होता है। जीवन नीति सम्पन्न हो तथा अपने लिए निर्धरित परिधि का के परिपालन करता हो, यह अत्यावश्यक है। अन्यथा जीवन में विकृति का समावेश हो जाता है। "आचार" संयम साधना का नवनीत है जिस साधना में से आचार पक्ष निकल

क्रियाकाण्ड बिना ज्ञान-ध्यान के वैसे ही उपहासास्पद है, जैसे पगड़ी पहनकर नीचे पेंट-बुशर्ट पहनना।

गया वह साधना, साधना नहीं विराधना है। इस विराधना में पड़कर साधना को भ्रष्ट करने वाले व्यक्तित्वों से समाज को हानि होती है। संत की वृत्ति में अंगर संयम ही नहीं रहे तो उसे सन्त के रूप में देखना भी एक भूल है।

श्री कौशल्याजी महाराज आचारनिष्ठ एक विशिष्ट श्रमणी हैं। वे संयम की कठोर साधना के शिखर पर समारुढ़ हैं। उनके जीवन में आचार, विचार के साथ और विचार, आचार के साथ इस प्रकार घुल मिल गया है जैसे दूध में मिश्री। संयम को उन्होंने किसी परिस्थिति के कारण विवशतावश नहीं स्वीकारा था। अपनी पूरी मनोभावना के साथ हर बाधाओं में अपनी अध्यात्म ज्योति को अक्षुण्ण रखते हुए संयम पथ की साधिका के रूप में स्वयं को प्रतिस्थापित किया था।

संसार में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो कहने को तो ऊँचे आदर्शों व सिद्धान्तों की बातें करते हैं लेकिन जब उन्हीं का आन्तरिक जीवन हम निकटता से देखें तो स्थितियाँ एकदम से विपरीत मिलती हैं। ऐसे लोग स्वयं के जीवन व्यवहार में भी अपने द्वारा स्वीकारे आदर्शों का पालन ठीक से नहीं करते। महासती जी को आंतरिक जीवन में उतना ही शुद्ध और पवित्र मैंने पाया है जितना बाह्य जीवन में। साधना को आपने अपने जीवन का अविभाज्य अंग बनाया है। यह आपकी वाणी के माध्यम से, पल-पल के व्यवहार आदि के माध्यम से परखा जा सकता है।

आपके जयपुर चातुर्मास का एक प्रसंग है - आपकी संसारपक्षीया बहन श्रीमती कांताजी पाँच वर्षों के बाद दिल्ली से आपके दर्शनार्थ आईं। दर्शन करके उन्हें तुरन्त दिल्ली जाना था। जिस समय वे आई आप प्रतिक्रमण में बैठे थे, प्रतिक्रमण अभी प्रारंभ ही किया था। बहन ने कुछ देर बात करने का आग्रह किया। परन्तु महाराज श्री तो अपनी संयम-मर्यादा को अधिक महत्त्व देते थे, अतः आपने कहा - "अगर तुम्हें बात ही करनी है तो प्रतिक्रमण के पूर्ण होने तक प्रतीक्षा करो।" यह है आप श्री की संयमनिष्ठा का एक लघुतम उदाहरण। ऐसे एक नहीं सैकड़ों उदाहरण हैं, जो आपके व्यक्तित्व को चमकाते रहते हैं।

आपका हृदय यद्यपि कुसुम से भी कोमल और नवनीत से भी अधिक नरम हैं, तथापि संयम सुरक्षा में आप व्रज से भी अधिक कठोर हैं। आप अपनी छोटी से छोटी स्खलना का कठोर प्रायश्चित स्वयं ही अंगीकार करते हैं। मर्यादा का अतिक्रमण करने

जो नाखुन चमड़ी की रक्षा नहीं करते, और बढ़ गये,
उन्हें काट देना चाहिये।

पर हमें भी प्रायश्चित देने में कभी नहीं चूकते। इसी संदर्भ में आपने एक बार मुझे सूर्योदय के पश्चात् प्रत्याख्यान करने के अपराध में चौविहारी उपवास का दण्ड दिया था। दिल की कठोरता और कोमलता का कैसा सुमेल कि मुझे तो अपराध हेतु उपवास का दण्ड दिया था पर उस दिन आपने भी उपवास किया।

आज भी आप संयम के प्रति उतनी ही जागरूक हैं। धर्मचर्चा, अध्ययन - अध्यापन, प्रार्थना, जाप आपका दैनिक कृत्य है और रात्रि का काल धर्मजागरण, ध्यान, जाप, स्वाध्याय आदि करते हुए व्यतीत करते हैं।

आंडबर से परहेज

धर्म की अगर कहीं हानि होती है तो वह आडम्बर के कारण। आडम्बर अर्थात् किसी भी व्यवहार या वस्तु को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करना। अथवा जो नहीं है, उसके होने की स्थिति दर्शाना। ऐसे बिना आधार की बातों का भेद आखिरकार खुल ही जाता है। उस स्थिति में जो दुर्दशा होती है, वह अवर्णित है। यह बात और है कि आजकल एक दूसरे की कमियों को लोग इसलिए नजर अंदाज कर देते हैं, क्योंकि वे ही कमियाँ उनमें भी होती हैं। यह आडम्बर की वृत्ति धर्म के साथ ही नहीं लगभग सभी क्षेत्रों में व्याप्त हो गयी हैं।

महासती श्री कौशल्याजी इस बात में काफी सजग हैं। धर्म के नाम पर होने वाले ढोंग और पाखण्ड को आप जरा भी पंसद नहीं करती हैं। आपका कहना है - "जहाँ दुराव, छिपाव, छल, आंडबर, आदि हैं वहाँ अधर्म है। ये दुर्गुण जहाँ भी होंगे वहाँ संयम तो क्या, संयम की छाया भी नजर नहीं आ सकती। अंतर और बाह्य शुद्धि एक ही तुला के दो पलड़े हैं, जिनमें समतोलता अति आवश्यक है।"

दीक्षा आदि धार्मिक स्थलों पर होने वाले आडंबर आपको बिल्कुल रुचिकर नहीं, ऐसे स्थानों में आप सम्मिलित होने के इच्छुक नहीं होते, जहाँ बेतहाशा धन का अपव्यय किया जा रहा हो, भले वह कार्यक्रम आपकी अपनी शिष्याओं का ही क्यों न हो। आमंत्रण पत्रिका, फोटो, वीडियो आदि के आडंबर के साथ सम्पन्न होती दीक्षा आपको प्रिय नहीं। इसी प्रकार जन्म-जयंती आदि महोत्सव पूर्वक होते हैं, तो आप उनसे अपने को अलग रखती हैं। आपका इस बारे में स्पष्ट अभिमत है कि -

---

क्षणभंगुर दुनियाँ में सत्पुरुष के वचन ही अमूल्य और अनुपम लाभ है।

"प्रदर्शन ने स्व-दर्शन की हानि कर दी है। कहाँ तो आत्मशुद्धि का संदेश देने वाला शुद्ध जिन धर्म और कहाँ ये जड़त्व का प्रदर्शन करने वाले आयोजन ? दोनों पृथक्-पृथक् दो सिरे हैं, जिन्हें आपस में मिलाने की चेष्टा करने से धर्म का स्वरूप विकृत हो जाता है।"

आप स्वयं एक महान तपस्विनी साधिका हैं, पर्व तिथियों में आयंबिल, उपवास, तेला, चोला, अठाई आदि तपस्यायें चलती ही रहती हैं। उससे भी अधिक ऊनोदरी तप तो आपके जीवन का अभिन्न अंग ही है। पूरे दिन में आप एक समय स्वल्प सा भोजन वह भी सात्विक और हल्का ग्रहण करती हैं। आप तपस्या में भी सहजता और निःसंगता की धनी हैं। सन् 1974 में पूना सम्मेलन के अवसर पर आप निरन्तर एकान्तर उपवास करीब ग्यारह मास से कर रही थीं। वर्षीतप पूर्णाहूति पर था, लेकिन तपस्या का प्रचार प्रसार न हो, इसलिए आपने वर्षीतप पूर्ण होने से पूर्व ही पारणा कर लिया। यह प्रसंग आपकी निःसंग दशा को प्रकट करता है।

जहाँ तपस्वी साधक अपने तप की पूर्णाहूति के लिए अनेक शुभ-कामनायें मँगवाता है, गुरुजनों से आशीर्वाद प्राप्त करता है, तपस्या निर्विघ्न पूर्ण होने पर संघ निकालता है, तीर्थों की यात्रा करता है, और वहाँ जाकर तप का पारणा करता हुआ आनन्दोल्लास से भर उठता है, वहाँ परम श्रद्धेया गुणों की खान महासती श्री कौशल्यादेवी जी का समय से पूर्व ही पारणा करना एक चौंका देने की घटना है। परन्तु पूजा-ख्याति की भावना से अति दूर, निःसंग और निर्लिप्त जीवन में ऐसे-ऐसे प्रसंग सहज है। मूलतः पूज्या महाराज श्री के लिए यह घटना प्रसंग कोई महत्व नहीं रखता।

प्रभावशाली प्रवचनकर्तृ

प्रवचन एक कला है, वह किसी में स्वाभाविक होती है और कइयों को यह कला अभ्यास द्वारा प्राप्त होती है। पूज्या कौशल्यादेवीजी महाराज को दीक्षा अंगीकार करते ही प्रवचन के पाट पर बिठा दिया। "गुरोराज्ञाह्यविचारणीया शिरसा मुकुटमणितुल्या धारणीया" के मंत्र को जीवन में उतारने वाली महासाध्वी ने बिना ननुनच के सहज रूप से धारा प्रवाह जो प्रवचन दिया, तो प्रथम प्रवचन में ही जनता मंत्रमुग्ध हो गई। शास्त्रानुसार अर्थ, व्याख्या और विवेचन को श्रवण कर लोग तृप्त होकर भी अतृप्त बने रहे। आपका

श्रेष्ठ व्यक्ति की तीन पहचान है- आयोजन में उदारता, कर्म में मानवीयता, तथा संपन्नता में संतुलनता।

प्रवचन सुनने की इच्छा नितप्रति बनी रहती। लोग आपके प्रवचनों की माँग करते, तो परम श्रद्धेया महासती श्री मोहनदेवीजी महाराज ने आपको ही प्रवचन का भार सौंप दिया। आपकी प्रवचन शैली इतनी सरल, सुबोध और अन्तःस्फुट होती है कि श्रोताओं के हृदय पर उसका शीघ्र असर होता है। लोगों में स्वतः ही व्रत धारण करने की भावना जागृत हो जाती है। आपश्री के उद्‌बोधन से समाज की अनेकों कुरीतियाँ कम हुई हैं और जैन शासन की प्रभावना के नित नए आयाम प्रस्थापित हुए हैं। आपकी शरण में आकर अनेक व्यक्ति दुर्व्यसनों से मुक्त बनकर धर्मपरायण बने हैं। आप श्री अपने प्रवचनों में दहेज प्रथा, जातपाँत, छूआछूत, व्यर्थ के प्रदर्शन, अशिक्षा आदि का भी खुलकर विरोध करती हैं।

आपका प्रवचन ज्ञान असीमित हैं, हर प्रवचन नवीनता लिए हुए होता है, अनुभव से मँजा हुआ होता है, आत्मा की प्रयोगशाला में भलीभाँति निरीक्षण-परीक्षण करने के पश्चात् उन सिद्धान्तों को। उपदेशों को आप श्रोता के समक्ष रखते हैं उन सब प्रवचनों का संग्रह किया जाए तो एक विशाल ग्रंथ तैयार हो सकता है, जो मानव हृदय को परिवर्तित करके रख दे। लेकिन प्रकाशन की भावना से आप कोसों दूर हैं, अपने नाम से आप श्री कोई पुस्तक छपवाने को तैयार नहीं है। मात्र अपनी शरण में आये व्यक्ति को सही मार्ग दिखाकर उस पर चलने की प्रेरणा देना ही आपका लक्ष्य है। जो भी आपकी शरण में आता है, वह खाली झोली लेकर नहीं लौटा। आपका कहना है, कि **हम श्रावकों के घरों से झोली भरकर लाते है वैसे ही जब वे हमारे द्वार पर आएँ तब हमारा कर्तव्य है, कि हम भी उनकी झोली में ज्ञान की भिक्षा डालकर लौटाएँ।**

शास्त्रवेत्ता



परम श्रद्धेया पूज्या कौशल्यादेवीजी म० जिस प्रकार अन्तरंग गुणों से सुशोभित हैं, उसी प्रकार बुद्धि के अष्ट गुणों से भी संयुक्त हैं। आपने आगमों का कई बार स्वयं अध्ययन किया है, और अपनी शिष्याओं को भी कई बार अध्यापन करवाया हैं बार-बार आगमवाणी के आवर्तन-प्रत्यावर्तन से शास्त्र के प्रत्येक मर्म का योग्य रीति से उद्‌घाटन करने की क्षमता आप में आ गई हैं। आपके प्रवचन भी शास्त्र पर आधारित, तत्वों की विवेचना करने वाले सटीक व सारगर्भित होते

हैं। आप श्री के शास्त्रज्ञान का प्रभाव श्रमण-संघीय साधु-साध्वियों पर भी पड़ा है। वे भी आपसे शास्त्रज्ञान अर्जित करने अथवा तत्वचर्चा के लिए समय-समय पर उपस्थित होते रहते हैं। लिम्बड़ी सम्प्रदाय की वरिष्ठ साध्वी श्री लीलाबाई स्वामी, गौंडल सम्प्रदाय की प्रमुख साध्वी श्री लीलमबाई स्वामी, श्री प्राणकंवरबाई स्वामी, श्री हीराबाई स्वामी, खीचन सम्प्रदाय के श्री वकील मुनि जी म०, श्री विनय कुमार जी म० आदि अनेक साधु-साध्वीवृन्द आपश्री से अपनी जिज्ञासायें प्रस्तुत कर समुचित समाधान प्राप्त करते रहे हैं। इन्होंने शास्त्र की कई उलझी हुई ग्रंथियों को महाराज श्री से सुलझवाया है।

आपके शास्त्रज्ञान की छाप महामहीम, राष्ट्र सन्त पूज्य आचार्य आंनदऋषिजी म० के हृदय पर भी गहरी अंकित थी। इसीलिए पूना सम्मेलन में आपश्री की आने की स्थिति नहीं होने पर भी आचार्य श्री ने कई बार श्री संघ के द्वारा महासतीजी का आना आवश्यक समझकर कहलवाया, कि आप जैसी शास्त्रवेत्ता विदुषी महासती का इस अवसर पर उपस्थित होना आवश्यक नहीं वरन् अत्यावश्यक है, क्योंकि विचार चर्चा करते हुए सम्मेलन में अनेक प्रश्न ऐसे उभर सकते हैं, जिन्हें सुलझाने के लिए आप जैसी शास्त्रज्ञाता महासती का होना बहुत जरूरी है। आचार्य श्री का बार-बार समाचार आने पर आप दो महासतियों की अत्यधिक अस्वस्थ अवस्था में भी पूना सम्मेलन में पहुँची।

इस प्रकार पूज्या महाराज श्री शास्त्र का गहराई से अध्ययन करके उसके गूढ़ रहस्यों को आत्मसात् किए हुए हैं।

नवनीत

ऐसी-ऐसी अनेक विशेषताओं की आकर कलकलनिनादिनी धारा के समान सतत प्रवाहमान एवं दिव्य-भव्य व्यक्तित्व की धनी, संतत्व की साकार प्रतिमा अध्यात्मयोगिनी, शांतमूर्ति श्री कौशल्यादेवीजी म० की जीवनगत अनूठी, अनंत विशेषताओं का वर्णन एवं उनकी अन्तरंग गहराईयों को छूने का यह साहस मुझ अबोध का दुस्साहस ही है। मैंने इस जीवनवृत्त में उनकी प्रत्यक्ष दृष्ट बाह्य विशेषताओं का ही लेखा जोखा प्रस्तुत किया है। ऐसा करने में मेरी सफलता कदाचित् संदिग्ध ही

है। उनकी अन्तरंग महानता तक पहुँच पाना मेरे लिए सदैव दुष्कर ही रहा है। तथापि जो संभव बन पड़ा, वह आप सबके सम्मुख प्रस्तुत किया हैं।

"आपकी इबादत के क्या कहने ?
आपकी बंदगी के क्या कहने ?
जो शमां की मानिंद हैं रोशन
आपकी जिन्दगी के क्या कहने ?"

विचार कण :

कुछ पुस्तकें हैं जिनको पढ़कर हम समय काटते हैं।

कुछ पुस्तकें हैं जिनको पढ़कर हम समझने की चेष्टा करते हैं।

कुछ पुस्तकें हैं जो जीवन का सहारा बनती है।

पुस्तक पढ़ो जब अकेले हो।

पुस्तक पढ़ो जब साथी की खोज हो।

पुस्तक पढ़ो जब तुम्हारा हृदय डूब रहा हो।

पुस्तक पढ़ो जब तुम्हारा जीवन-संसार डांवाडोल हो।

पुस्तक पढ़ो जब दुःख और पीड़ा ने तुम्हें घेरा हो।

खण्ड २

अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी

कृतित्व



आपके दिल में समाया देश का सम्मान है।
भावना में आपकी हर जीव का कल्याण है।
वाणी तेरी धार है गंगा के निर्मल नीर सी।
व्यापक विराट् उज्ज्वल व्यक्तित्व में झलक महावीर की।

अध्यात्म-वाणी

प्रवचन - महासती श्री कौशल्या देवी जी

सम्पादन - साध्वी विजय श्री 'आर्या'

सद्बोधं विदधाति हन्ति कुमतिं मिथ्यादृशं बाधते।
धत्ते धर्ममतिं तनोति परमे संवेगनिर्वेदने॥
रागादीन् विनिहन्ति नीतिममलां पुष्णाति हन्त्युत्पथं
यद्वा किं न करोति सद्गुरुमुखादभ्युद्गता
भारती॥

महान और सद्गुरु के मुख से निसृत वाणी सद्ज्ञान प्रदान करती है, दुर्मति का हरण करती है, मिथ्या विश्वासों को रोकती है, राग-द्वेष आदि विकारों को दूर करती है, सच्ची राह पर चलने का साहस प्रदान करती है संक्षेप में, सद्गुरु की वाणी क्या नहीं करती?

जिनका जीवन उदासी से, त्रास से विपत्तियों से उजड़ गया है, उनके जीवन को हरा-भरा करने के लिए शांत, शीतल झरने सी प्रतीत होगी यह अध्यात्म-वाणी।

लोकोत्तर मंत्र नवकार

महामंत्र क्या ?

विश्व के सभी मंत्रों में नवकार मंत्र सर्वश्रेष्ठ मंत्र है, यह सब मंत्रों का सार मंत्र है। संसार में जितने भी मंत्र हैं, वे इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हैं, परंतु नमस्कार मंत्र इच्छाओं का निरोध करने वाला मंत्र है। इच्छाएँ अनंत हैं, एक इच्छा के तुरंत बाद दूसरी इच्छा पैदा होती रहती है, इस प्रकार जीवन में इच्छाओं की पूर्ति होने के बाद भी इच्छाओं के उत्पन्न होने का अंत नहीं होता। नमस्कार मंत्र वह अलौकिक मंत्र है, जिसकी आराधना से इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। इच्छाओं का अंत होने के बाद ही आत्मा अपने श्रेय व प्रेय रूप शाश्वत धर्म को प्राप्त करती है।

नवकार मंत्र में अरिहंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँच परम आत्माओं को नमस्कार किया गया है, इसलिये इसे "पंच परमेष्ठी महामंत्र" कहा जाता है। "परमेष्ठी" वह है, जो विशुद्ध आत्मा है, कर्ममल से रहित है, जिन हैं और केवल ज्ञान दर्शन की धारक हैं, वे श्रेष्ठ, सर्वोच्च आत्माएँ 'परमेष्ठी' कही जाती हैं। ये किसी व्यक्ति विशेष के नाम नहीं हैं, वरन् जो आत्माएँ आध्यात्मिक भूमिका पर पहुँच गई हैं, अथवा पहुँचने की इच्छुक हैं, उनको नमस्कार किया गया है। वस्तुतः देखा जाए तो इस मंत्र में न किसी व्यक्ति विशेष का स्वीकार है, न किसी का तिरस्कार। न किसी के प्रति आग्रह बुद्धि रखकर उसे नमस्कार किया गया है न किसी के प्रति द्वेष बुद्धि रखकर उसे अपूज्य माना गया है। इसी बात को आचार्य हरिभद्र ने कहा है -

---

'णमोकार' मंत्र समस्त श्रुतज्ञान का नवनीत है।

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्य परिग्रहः॥"

अर्थात् न मुझे महावीर से राग है, न बौद्ध, कपिल आदि से द्वेष। जिसके भी वचन युक्ति-युक्त हैं, वीतरागता जिसकी आत्मा में झलकती है, उसी को मेरा नमस्कार है। इसी बात को एक अन्य श्लोक में भी बताया गया है -

"भवबीजांकुर जनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरौ जिनौ वा नमस्तस्मै॥"

अर्थात, भव-संसार रूपी बीज को पैदा करने वाले राग, द्वेष, काम, विकार आदि जिसने नष्ट कर दिया है, वह नाम से भले ही कोई हो, मैं उसको नमस्कार करता हूँ।

जैन धर्म में मोक्ष की प्राप्ति किसी विशेष लिंग या किसी विशेष वेष में नहीं मानी गई है, यहाँ गुणों को महत्व दिया गया है चाहे कोई स्त्री हो या पुरुष, चाहे वह गृहस्थ हो या स.धु. चाहे स्वलिंगी हो या अन्यलिंगी (अन्य धर्मावलम्बी) जिसने भी राग-द्वेष को जीत लिया है, वही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। जिसमें भी सिद्ध, अरिहंत आचार्य, उपाध्यायपना व साधुता है, उसी को नमस्कार किया गया है।

नमस्कार मंत्र में उदारता की यह पराकाष्ठा ही है, कि इसमें 'तीर्थंकरों' को नमस्कार हो, ऐसा भी नही कहा, वरन् 'णमो अरिहंताणं' कहा गया है, जिसमें चौंतीस अतिशय युक्त तीर्थंकर भगवान एवं चौंतीस अतिशय रहित सामान्य केवली दोनों का समान रूप से समावेश हो जाता है। क्योंकि **"तीर्थंकरत्व मुख्य नहीं है, अर्हद् भाव मुख्य है। तीर्थंकरत्व तो पुण्य प्रकृति है, किन्तु अरिहंत दशा क्षायिक भाव है। वह निर्जरा का फल है। नमस्कार आत्मा की विशुद्धता को है न कि भौतिक समृद्धि को। आत्मा की विशुद्धता की अपेक्षा तीर्थंकर एवं अरिहंत में जरा भी अंतर नहीं है। तीर्थंकर की जितनी आत्म विशुद्धि है, उतनी ही आत्म-विशुद्धि अरिहंत की भी है। न कम न ज्यादा।** इसलिये अरिहंत दशा को मुख्य मानकर अरिहंतो के नमस्कार में तीर्थंकरों को भी नमस्कार किया गया है साथ ही वर्तमान के अरिहंतों को तो नमस्कार है ही, किंतु भूतकाल में हो चुके अंनतानंत अरिहंतों को एवं भविष्य में होने वाले अनंत-अनंत अरिहंतों का समावेश भी 'णमो अरिहंताणं' पद से हो जाता है। इसी प्रकार भूत और भविष्य के अनंत-अनंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुओं का भी समझ लेना चाहिए।

नमस्कार रूपी वज्र अहंकार रूपी पर्वत का नाश करता है।

नमस्कार का आदर्श

नमस्कार मंत्र से एक और बात हमारे सामने आती है, कि जब हम अपने से महान् पुरुषों को नमस्कार करते हैं, तो उनका आदर्श हमारे सामने होता है। जो जैसा आदर्श अपने सामने लाता है, वह वैसा ही बन जाता है। श्रेष्ठ आदर्श सामने रखा जाये तो इंसान श्रेष्ठ आचरण करने लगता है और हीन आदर्श को सामने रखा जाये तो हीन बनता जाता है। हम जो बनना चाहते हैं उसे हम अपने सामने रखें। कहा भी है -

"भ्रमर इलिका ने चटकावे
ते भृंगी जग जोवे रे॥"

भृंगी-इलि एक बेइन्द्रिय जीव है, और भ्रमर चतुरिन्द्रिय। जब भ्रमर उस इलि पर निरंतर घुन-घुन की ध्वनि करता है, तो इलि भ्रमर के रूप में परिवर्तित हो जाती है। अर्थात् बेइन्द्रिय जीव चौरेन्द्रिय जीव बन जाता है। आदर्श का इतना महत्व है।

हमारे सामने कोई महाराणा प्रताप का नाम लेता है तो वीरता के भाव पैदा होते है। कोई मीरा का नाम लेता है, तो भक्ति के भाव आते है। दुर्योधन का नाम लेते ही अन्यायी, अत्याचारी का चेहरा सामने आता है और रावण का नाम लेते ही एक राक्षस की आकृति सामने आ जाती है। इसी प्रकार हम यदि अरिहंत का नाम लें तो कषायों से रहित एकदम शांत, सौम्य जिनेश्वर देव की प्रतिमा हृदय पटल पर उभर आती है। वस्तुतः जो जैसी श्रद्धा रखता है वह वैसा ही बन जाता है -

"यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।"

अर्थात् भावना के अनुसार इंसान का निर्माण होता है। एक प्राचीन कथा है, कि एक शेर के बच्चे को गडरिये ने पाल लिया, तो वह अपने आपको भेड़ ही समझने लगा। गडरिया रोज भेड़ों को जंगल में चराने ले जाता, तो शेर का बच्चा भी साथ ही जाता। भेड़ों के समान ही उसकी सारी चेष्टाएँ हो गई। एक दिन जंगल में शेर को देखा, उसकी दहाड़ सुनकर सारी भेड़ें भागनें लगीं, परन्तु वह तो शेर का बच्चा था, वह भी जोर से दहाड़ा तो उसकी दहाड़ सुनकर गडरिया भी भाग खड़ा हुआ, तब उसे अपने असली स्वरूप का ज्ञान हुआ, कि मैं भेड़ नहीं हूँ वरन् शेर हूँ, मैं सिंह की जाति का हूँ, उसी के समान मेरे अंदर भी पराक्रम है, इतने दिन मैं स्वयं को भूला बैठा था और भेड़ों के साथ रहता था, परंतु अब मैं अपनी जाति वालों के साथ रहूँगा। यह सोचकर सिंह का बच्चा अपनी जाति में मिल गया।

नमस्कार मंत्र लौकिक तथा पारलौकिक सुख को देने वाली कामधेनु है।

ठीक यही बात नमस्कार मंत्र के लिए है। हम सब आत्माएँ मूल में अर्हत् स्वरूप हैं, सिद्ध स्वरूप हैं, परंतु अनादिकालीन मोहमाया का अंधकार हमें अपने शुद्ध स्वरूप का भान नहीं होने देता। हम जड़ के संयोग से अपने आपको जड़ मानते आ रहे है। धन, शरीर, इन्द्रिय, पुत्र, परिवार ये सभी पुद्गल पदार्थ हैं। इन्हें अपना मानकर हम इन्हीं में आसक्त बने हुए हैं। परन्तु ज्योंहि हम अपने से श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ आत्माओं का चिंतन करते हैं, तो हमें अपने शुद्ध स्वरूप का भान हो उठता है। कहा भी है -

"सिद्धां जैसा जीव है, जीव सोई सिद्ध होय।
कर्म मैल का आंतरा, बूझे विरला कोय॥
कर्म पुद्गल रूप है, जीव रूप है ज्ञान।
दो मिलकर बहु रूप है, बिछड्या पद निर्वाण॥
जीव-कर्म भिन्न-भिन्न करो, मनुष्य जनम को पाय।
ज्ञानातम वैराग्य से धीरज ध्यान लगाय॥"

सिद्ध व अरिहंत की आत्मा के साथ अपनी आत्मा की तुलना करने से अपनी हीनता व उनकी श्रेष्ठता का बोध होता है, और उसके बाद अपने को श्रेष्ठ बनाने का पुरुषार्थ आत्मा में प्रगट होता है। वह सोचता है, कि

"हम तो कबहुं न निज घर आये
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये !!१!!
यह बहु भूल भई हमरी, फिर कहा काज पछताये।
"दौल" तजो अजहूँ विषयन को सद्गुरु बोध सुहाये!!२!!

आज तक हम पुदग्ल के घर में भटकते रहे, उसी को अपना मानते रहे लेकिन पंच परमेष्ठी का आदर्श अपने सामने रखने से अपने चैतन्य स्वरूप का ज्ञान होता है। पाँच इन्द्रिय के विषयों से विरक्ति हो जाती है, भौतिक पदार्थो की आसक्ति टूट जाती है।जहाँ आसक्ति नहीं, वहाँ इच्छा नहीं और जहाँ इच्छा नहीं, वहाँ इच्छा से होने वाला दुःख भी नहीं। इस प्रकार नमस्कार महामंत्र का स्मरण करने से समस्त इच्छाओं का निरोध होकर निराकुल शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

नमस्कार मंत्र के प्रत्येक अक्षर, वर्ण और शब्द में अद्भुत शक्ति है।

लोकोत्तर मंत्र

बंधुओ! नमस्कार मंत्र के बारे में एक बात और कह दूँ, कि यह नमस्कार मंत्र एक अलौकिक मंत्र है, अर्थात् यह लोकोत्तर मंत्र है, न कि लौकिक मंत्र। लौकिक मंत्र लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये होते हैं, परन्तु लोकोत्तर मंत्र लौकिक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये नहीं पढ़े जाते। लोकोत्तर मंत्र से लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि ही करनी चाहिये। वैसे भी लौकिक कार्यों की सिद्धि तो पुण्य से होती है बिना पुण्य के लौकिक सिद्धियाँ मिलने लगे तो हर कोई मंत्र का जाप कर उन सिद्धियों को प्राप्त कर ले, और ऐसा करते हुए **"कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि"** यह भगवान की वाणी मिथ्या हो जाएगी।

लौकिक सुख की प्राप्ति के लिये जो मंत्र की साधना करता है, वह 'निदान' करता है, अर्थात् **इस मंत्र का मुझे यह फल प्राप्त हो, ऐसी भावना करता है।** निदान एक प्रकार का शल्य है, पाप है, जो जिन मार्ग में कभी उपादेय नहीं हो सकता। इस प्रकार निदान करने से तो उलटे वह पाप का बंध कर लेता है।

कई लोग यह कहते सुने जाते हैं, कि सुदर्शन सेठ नवकार मंत्र के प्रभाव से अर्जुनमाली के संकट से बच गये थे। यह विचार करने की बात है। सुदर्शन सम्यकदृष्टि श्रावक थे, वे अपनी रक्षा के लिये नवकार मंत्र का जाप करें, ऐसा नहीं लगता, क्योंकि उन्हें यह ज्ञान है, कि यदि आयुष्य कर्म बलवान है, तो अर्जुनमाली जैसे हजार हत्यारे भी आ जाएँ, जो मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते और यदि आयुष्य कर्म ही क्षय हो चुका है, तो कौन बचा सकता है? वे अर्जुनमाली को एक निमित्त मानते थे, इसीलिये उन्होंने सागारी संथारा किया था, अगर उन्हें यह श्रद्धा होती कि नवकार मंत्र मुझे बचा लेगा तो वे संथारा ही क्यों स्वीकार करते ? लेकिन सुदर्शन ने अपने मारणान्तिक उपसर्ग का विचार कर सागारी संथारा धारण किया था, और उपसर्ग दूर होने पर उसे पार भी लिया था। अतः **सुदर्शन ने अर्जुनमाली से बचने के लिए नमस्कार मंत्र नहीं पढ़ा, वरन् उपसर्ग को समता से सहन करने की शक्ति प्राप्त हो इसके लिए नवकार मंत्र पढ़ा था।**

दूसरी ओर विचार करें कि नवकार मंत्र से संकट टल जाते हैं, तो बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के समय 'स्कन्दक' के 500 शिष्य 'पालक' द्वारा घाणी

जो महामंत्र का आठ करोड़, आठ लाख, आठ हजार, आठ सौ, आठ बार जाप करता है, वह शाश्वत सुखधाम मोक्ष को प्राप्त करता है।

में पील दिये गये, उनका संकट क्यों नहीं टल गया ? वे तो पंच महाव्रतधारी मुनिराज थे, उनके पास क्या नवकार मंत्र की शक्ति नहीं थी, क्या उनके पास श्रद्धा की कमी थी या भावना की कमी थी ? ऐसे-ऐसे अनेक उदाहरण शास्त्रों से भरे पड़े हैं जिन पर दैवी या मानवी उपसर्ग आये, वे उस उपसर्ग से मुक्त नहीं हुए। "गजसुकुमाल मुनि" पर क्या कम उपसर्ग आया था, "मैतार्यमुनि" की खाल खींच ली गई थी, पर उन समताधारी मुनिराजों ने संकट टालने की इच्छा से या जीवित रहने की इच्छा से कभी महामंत्र का शरणा नहीं लिया। महामंत्र का शरण इसलिये लिया जाता है, कि इस संकट में मेरा समताभाव बना रहे, मैं अपने मार्ग से च्युत न होऊँ। संकट तो उसी का टलेगा जिनका पुण्य है और आयुष्य कर्म शेष है। जिसकी आयु क्षीण नहीं हुई वे मृत्यु से बचेंगे ही चाहे नमस्कार मंत्र पढ़ा जाये या न पढ़ा जाये।

श्रीकृष्ण ने तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया था, उन्हें क्षायिक समकीत थी, अनेक देवता उनकी सेवा में थे, परंतु जब द्वारिका जली और जरा कुमार के एक ही बाण से उनकी मृत्यु हुई तब कोई भी उन्हें बचाने नहीं आया था। बंधुओ! पूर्वकृत कर्म तो भोगना ही पड़ता है, उससे बचने के लिये नमस्कार मंत्र का स्मरण नहीं करना है, वरन् स्वयं की आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये, अर्हत् और सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करने के लिये, जन से जिन बनने के लिये, एवं आये हुए संकट को समभाव से सहन करने के लिये नवकार मंत्र का स्मरण करना चाहिये।

"एसो पंच णमोक्कारो
सव्व पाव प्पणासणो।"

से भी यही बात प्रगट होती है, कि नमस्कार मंत्र पाप का नाश करने वाला है। राग-द्वेष, मोह, अज्ञान मिथ्यात्व ये सब 'पाप' हैं, और नमस्कार मंत्र इन सब पापों की निर्जरा करके आत्मिक शांति और आत्मिक आनंद को प्रगट कर देता है।

महामंत्र का फल

नमस्कार मंत्र विशेष रूप से अंहभाव को दूर करता है। आत्मा परमात्मा बनना चाहता है, किन्तु अहंभाव उसमें बाधक बनता है, जहाँ अंहभाव है वहाँ सारे दुर्गुण हैं। क्योंकि जितना अहंकारी होगा, उतना ही क्रोधी होगा। जितना अंहकारी उतना असहिष्णु/असहयोगी होगा। अंहकारी अन्य से घृणा करता है। लेकिन कट्टर

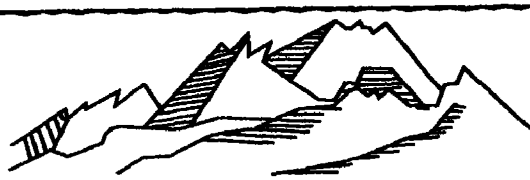
दुश्मन को भी आप हृदय से कहें - 'नमस्कार भाई !'.तो यह सुनकर पत्थर दिल भी पिघल जाता है। नमस्कार हृदय की मिट्टी को मुलायम बना देता है और मुलायम मिट्टी में बोया गया बीज अंकुर को उत्पन्न करता है। इस प्रकार नमस्कार मंत्र चार प्रकार की अशुद्धियों को दूर कर देता है -

ऐसा व्यक्ति कृतघ्न नहीं बन सकता।
ऐसा व्यक्ति स्वार्थी नहीं हो सकता।
वह सभी में अपनी आत्मा का दर्शन करता है।
वह आत्मा में परमात्मा के दर्शन करता है।

इस प्रकार नमस्कार मंत्र सब प्रकार की अशुद्धियों को, पापों को दूर करने वाला महामंत्र है। इसे रोज भक्तिपूर्वक एक सौ आठ बार पढ़ना चाहिये।

गुरू की गरिमा, शिष्य का समर्पण

गुरु की महिमा



भारतवर्ष अध्यात्म-प्रधान देश है, इस देश की मिट्टी में ऋषि-मुनियों की वाणी का उतना ही महत्त्व है जितना शरीर के लिये रोटी, पानी और हवा का। अध्यात्म-दृष्टा, अध्यात्म-उपदेष्टा सद्गुरू को श्रद्धा और आदर के साथ नमस्कार कर शिष्य कृत कृत्य हो जाता है। वह अपनी आत्मा में अपूर्व परिवर्तन महसूस कर एक अलौकिक आनंद की प्राप्ति करता है।

गुरु शिष्य के अज्ञान अंधकार का नाश कर ज्ञान चक्षु प्रदान करने वाले होते हैं, सुप्त आत्मा को जागृत करने वाले होते हैं। जैसे देह का निर्माण करने का श्रेय माता-पिता को है उसी प्रकार आत्मा का निर्माण करने वाले 'गुरु' होते हैं। देह तो इस जीव ने अंनत बार प्राप्त की है, और अनंत बार छोड़ी है, इसके निर्माण से आत्मा को किसी लाभ की प्राप्ति नहीं हुई, क्योंकि देह नश्वर है, जरा जीर्ण स्वभाव वाली है। प्राप्त देह का अवश्यम्भावी विनाश है। किंतु आत्मा में एक बार सम्यग्दर्शन की ज्योति प्रज्जवलित हो गई, तो आत्मा सदा-सदा के लिये दुःखों से मुक्त हो जाती है, गुरु, आत्मा का निर्माण करके उसे शाश्वत सुख प्रदान करने में निमित्त बनते हैं। अतः गुरु का भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। गुरु के लिये यहाँ तक कहा गया है -

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्मः तस्मै श्री गुरवेनमः॥"

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा है, क्योंकि वह शिष्य के हृदय में सम्यक्ज्ञान का निर्माण करता है। हमारे प्रत्येक के अंदर एक बहुत बड़ा संसार है। जहाँ संसार है वहाँ अच्छाई भी है और बुराई भी है। गुरु अच्छाइयों का निर्माण करता है, इसलिये '**ब्रह्मा**' है। उन अच्छाइयों को टिकाने व पालन करने वाले होने के कारण गुरु '**विष्णु**' है।

जिसने सारे जगत का शिष्य होने रूप दृष्टि का वेदन नहीं किया
वह
सद्गुरु होने योग्य नहीं है।

एवं जीवन की समस्त बुराइयों का नाश करने वाले होने के कारण गुरु 'शंकर' हैं। गुरु के समान उपकारी जीवन में और कोई नहीं हो सकता, उसे भगवान से भी ऊँची पदवी दी गई है-

"गुरु गोविंद दोनों खड़े, किसके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविंद दियो बताय।।"

गुरु भगवान के दर्शन कराता है, गुरु ही भगवान से भक्त का मिलन कराता है, अतः गुरु, गोविंद से बढ़कर है।"

शिष्य कदाचित् कितना भी ज्ञानवान बन जाये, कितना भी आगे बढ़ जाये तो भी शिष्य सदा छोटा है। जैसे बच्चा दूर की वस्तु को देखता है तो पिता के कंधे पर चढ़कर ही देख सकता है, इसी प्रकार शिष्य जो भी बना है, उसमें 'गुरु का तप' है। श्रीमद् राजचंद्र जी ने कहा है -

"जे सद्‌गुरु उपदेश थी, पाम्यो केवल ज्ञान।
गुरु रह्या छदमस्थ पण विनय करे भगवान।।"

अर्थात् शिष्य गुणस्थानों की श्रेणी चढ़ते-चढ़ते केवल ज्ञान की अवस्था तक पहुँच जाये, तब भी वह गुरु के उपकार को नहीं भूलता और अपने छदमस्थ गुरु की विनय करता है। क्योंकि शिष्य को भगवान के पद पर प्रतिष्ठित कराने वाला गुरु ही है। कहा है -

"गुरु कारीगर सारीखा, टांची वचन विचार।
पत्थर से प्रतिमा करे, पूजा लहै अपार।।"

गुरु कारीगर के समान हैं। जैसे कारीगर सामान्य पत्थर को घड़-घड़कर मूर्ति का रूप दे देता है, वही मूर्ति अनेकों की पूजा का पात्र बन जाती है, इसी प्रकार गुरु शिष्य के जीवन का निर्माण करता हुआ उसे परमात्मा का पद प्रदान करा देता है, ऐसे उपकारी गुरु का पद देवता तो क्या साक्षात् परमेश्वर के समान है। इसलिये कहा है -

"गुरु भज गुरु भज गुरु भज मनवा
गुरु भज्यां गुणधन पासी।
गुरु ने ध्याकर गुरु ने पाकर
तूं खुद गुरु सम बन जासी।। टेर।।

करोड़ ज्ञानियों का एक विकल्प होता है और
एक अज्ञानी के करोड़ विकल्प । - श्रीमद्

महाविदेह अरिहंत बिराजे, इण भव तो नहीं मिलपासी
गुरुदेव की कृपा होय तो, तूँ खुद अरिहंत बन जासी॥१॥
सिद्ध प्रभु हैं सिद्धशिला पर, कुण देख्या देखण जासी?
गुरुदेव की शरण लहै तो, सिद्ध शिला दौड़ी आसी॥२॥
प्रभु रुठ्याँ ने गुरु ठौर हैं, झट सुं मारग बतलासी।
गुरु रुठ्या नहीं ठौर जगत में, गुरु तुठ्या प्रभु मिल जासी॥३॥
गुरु तात गुरु भ्रात जगत में, ऊँ देव अरिहंत जो ध्यासी।
इणभव ऋद्धि सिद्धि पग-पग पावे, परभव शिवसुख वरतासी॥४॥
गुरु निर्ग्रंथ मिलिया पुन्य योगे, यो अवसर फिर कद आसी।
भक्त पकड़ ले चरण गुरु के, बिन तार्‌याँ नहीं तिर पासी॥५॥

वस्तुतः अध्यात्म-साधना में गुरु का पद बहुत ऊँचा है, अन्य कोई भी पद इसकी समानता नहीं कर सकता। एक अन्य उदाहरण से इसे समझिये, कि जब घर में अंधकार होता है, तो कोई वस्तु दिखाई नहीं देती, जबकि सभी वस्तुएँ घर में ही मौजूद हैं फिर भी अंधकार में उन वस्तुओं का हमे ज्ञान नहीं होता, लेकिन ज्योंही बटन दबाया जाता है, तो प्रकाश में सभी वस्तुएँ नजर आने लगती हैं। वस्तुएँ तो पहले भी वहीं थी, लेकिन नजर नहीं आ रही थी, अब प्रकाश के कारण नजर आने लगी हैं। गुरु जीवन-मन्दिर को प्रकाशित करने का काम करते हैं, हमें अपने चैतन्य स्वरूप का और उसमें रही हुई अनंत निधि का ज्ञान होने लगता है। गुरु के प्रकाशक धर्म को लेकर ही 'गुरु' शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है, कि 'गु' शब्द अंधकार का वाचक हैं और 'रू' शब्द विनाश का। अर्थात् गुरु वह है, जो अंधकार का नाश करता है।-

'गुकारस्त्वंधकारः स्याद्, 'रू' कारस्तन्निरोधकः'

गुरु कौन?

आज के युग में गुरु बहुत सस्ते हो रहे हैं। गुरु का पद बहुत ऊँचा है, तो उसका कर्त्तव्य भी उतना ही ऊँचा है। 'गुरु' वह है जो स्वयं आत्मज्ञानी और समदर्शी होता है, ज्ञान और क्रिया का जिनमें सुन्दर समन्वय होता है। पाँच महाव्रत तथा

अष्ट प्रवचन माता से युक्त होता है, निर्ग्रंथ (अन्तर-बाह्य परिग्रह से रहित) है वही 'गुरु' है, एक दोहे में गुरु का लक्षण बताया है -

"आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदयप्रयोग।
अपूर्ववाणी परमश्रुत, सद्‌गुरु लक्षण योग्य॥

गुरु का प्रथम लक्षण है - **आत्मज्ञान**। जिस आत्मा में ज्ञान के साथ-साथ वैराग्य बढ़ता है वह सम्यग्दृष्टि साधक गुरु है। जिसके ज्ञान के साथ-साथ अंहकार बढ़ता है, वह मिथ्यादृष्टि साधक गुरु पद के योग्य नहीं है। अतः गुरु आत्मज्ञानी होता है।

गुरु का दूसरा लक्षण है - **'समदर्शिता'**, अर्थात् वह सबको आत्मदृष्टि से देखता है, वह नरक, तिर्यंच आदि पर्यायों को, ऊँच-नीच आदि गोत्र को सुरूप व कुरूप शरीर को, धनवान एवं निर्धन आदि अवस्थाओं को नहीं देखता, वरन् सबमें समान रूप से स्थित चेतन्य आत्मा को देखता है, वह गुरु है।

गुरु का तीसरा लक्षण है - **सहज जीवन**। जो हर अवस्था में, हर परिस्थिति में हर व्यक्ति और हर वस्तु में सहज रूप से रहता है, मन को राग व द्वेष से मुक्त रखता है, वह गुरु पद का अधिकारी है।

गुरु का चौथा लक्षण है - **अपूर्व वाणी से सम्पन्न**। उसकी वाणी आत्मशुद्धि-कारक होती है, अतः श्रोता को ऐसा प्रतीत होने लगता है, कि ऐसी आत्मा का हित करने वाली वाणी हमने कहीं भी नहीं सुनी।

गुरु का पाँचवा गुण है-**परमश्रुतवान होना**। अर्थात् वह शास्त्रों का जानकार होता है, भगवान की वाणी के अर्थ को, अभिप्राय को समझने वाला होता है।

ऐसा गुरु ही संसार-समुद्र से स्वयं तिरता है और दूसरों को तार सकता है। गुरु की महानता उसकी ऊँची जाति या कुल से नहीं है, रूप और ऐश्वर्य से नहीं है, किसी विशेष संप्रदाय से नहीं है, वरन् उसकी महत्ता मात्र **'गुण'** से हैं। उसके रत्नत्रय - ज्ञान, दर्शन, चारित्र से हैं। **'गु'** अर्थात् गुणों में **'रु'** अर्थात् रुचि रखता हो वही **'गुरु'** है। ऐसे गुरु जहाँ भी कहीं हों, जिस किसी भी सम्प्रदाय के हों, उनके सामने मस्तक झुक जाना चाहिये।

जिसकी अन्तरंग मोहग्रंथि चली गई वही परमात्मा हैं।

शिष्य का समर्पण गुरु के प्रति

अपने महान उपकारी गुरुदेव के प्रति झुकना साधक जीवन की बहुत बड़ी क्रिया है। अपने अभिमान को त्यागकर गद्गद् हृदय से शिष्य अपने गुरु के चरणों में झुकता है, तभी उसकी आत्मा में ज्ञान की अलौकिक ज्योति प्रगट होती है।

नमस्कार करते समय शिष्य को यह सोचना चाहिये कि मैंने अपना सर्वस्व गुरु के चरणों में अर्पित कर दिया है। मेरा मन, वाणी और शरीर तीनों गुरु को समर्पित है। अब मेरे मन पर गुरु का अधिकार है, वे जो सोचेंगे वही मेरे विचार होंगे। गुरु की वाणी के अनुसार ही मेरे वचन होंगे, एवं गुरु जो निर्देश करेंगे उसी के अनुसार मेरा शरीर क्रिया करेगा। यही वास्तव में श्रेष्ठ वंदना हैं एक कहानी प्रसिद्ध है –

एक गुरु और शिष्य थे। शिष्य बड़ा सरल और विनयवान था। एक बार रात्रि के समय शिष्य सो रहा था और गुरु स्वाध्याय कर रहे थे, कि इतनी सी देर में गुरु ने देखा, कि एक काला नागराज जल्दी-जल्दी सरकता हुआ शिष्य की ओर बढ़ रहा था। गुरु ने नागराज से पूछा -

"नागराज ! आज तुम इतनी जल्दी कहाँ जा रहे हो?"

नाग ने कहा - "मैं तुम्हारे शिष्य के कलेजे का खून पीने जा रहा हूँ।"

गुरु ने उसका मानव-वाणी में स्पष्ट वचन सुनकर पुनः पूछा - 'तुम कितना खून पिओगे ?'

सर्प ने कहा - 'केवल एक तोला' गुरु ने फिर मधुर वचनों से कहा - 'अच्छा! तुम्हें खून ही पीना है न, तो लो मैं अभी जाकर लाता हूँ, तुम यहीं ठहरो।'

गुरु के ऐसा कहने से सर्प वहीं ठहर गया। गुरु ने अपने पास से चाकू निकाला और शिष्य की छाती पर जा बैठे। शिष्य ने एकदम भयभीत होकर आँखे खोली, तो देखा, कि उसी के गुरु उसकी छाती पर बैठे हैं, यह देखकर शिष्य ने तुरंत आँखे बंद कर लीं, और निश्चिंत होकर सो गया। गुरु ने चाकू से शिष्य के कलेजे को चीरा ओर एक तोला खून निकालकर सर्प के सामने रख दिया। कहा - 'नागराज! यह मेरे शिष्य के कलेजे का खून है, आप इसे पीकर तृप्त हो जाइये।'

क्रिया ही कर्म, उपयोग ही धर्म, परिणाम ही बंध भ्रम ही मिथ्यात्व, ब्रह्म ही आत्मा और शंका ही शल्य है। - श्रीमद् राजचंद्र

सर्प खून पीकर चला गया। पीछे से गुरुजी ने मरहम पट्टी द्वारा घाव को दूर किया। शिष्य कुछ ही दिनों में बिल्कुल ठीक हो गया। लेकिन उसने अपने गुरु से कभी नहीं पूछा, कि आप मेरी छाती पर क्यों बैठे ? मेरा कलेजा क्यों चीरा ?

एक दिन गुरु-शिष्य दोनों बाहर घूमने गये। मौका देखकर गुरु ने शिष्य से पूछा-

'वत्स ! उस दिन जब मैं तुम्हारी छाती पर बैठा, तब तुमने मुझे देखकर आँखे क्यों बंद कर लीं। और जब मैंने तुम्हारा खून निकाला तब तुमने एक शब्द भी क्यों नहीं कहा?'

शिष्य ने बड़ी नम्रता से कहा - **'गुरुदेव! जब मैंने आँखे खोलीं तो देखा, कि आप बैठे हुए हैं, तब मैंने सोचा, कि गुरु के सामने किस बात का भय ? मैंने तो आपको सर्वस्व समर्पण कर दिया, आप जो चाहे कर सकते हैं। और मुझे विश्वास है, कि आप मेरा अहित कभी नहीं सोचेंगे। बस, यही कुछ सोचकर मैंने कुछ नहीं कहा।'**

गुरु शिष्य की नम्रता और समर्पण भाव से गद्‌गद्‌ हो गये। उन्होंने शिष्य को छाती से लगाकर कहा -

'वत्स ! तुम्हारे जैसे शिष्य को पाकर मैं गौरवान्वित हूँ। साधना में तुम मेरे से भी आगे बढ़ गये हो।'

हाँ, तो जब भी गुरु के चरणों में नमस्कार किया जाये, तब यह सोचना चाहिये, कि मैंने अपना सर्वस्व गुरु को अर्पित कर दिया है अब मेरा कुछ नहीं है - श्रीमद्‌ राजचंद्र जी के शब्दों में -

"आ देहादि आज थी, वर्तो गुरु आधीन।
दास दास हुं दास छुं आप प्रभु नो दीन।।"

जब तक देहात्मबुद्धि दूर नहीं होती, तब तक सम्यक्त्व नहीं होता।

गुरु वंदन से लाभ

उत्तराध्ययन सूत्र के 29वें अध्ययन में भगवान महावीर से प्रश्न किया - **"वंदणएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?"**

हे भगवन् ! वंदना करने से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ? उत्तर में वीर प्रभु ने कहा -

"वंदणएणं जीवे नीयागोयं कम्मं खवेइ, उच्चागोयं कम्मं निबंधइ।
सोहग्गं च णं अपडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ। दाहिणभावं च जणयइ।"

वंदन करने से जीव नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है, उच्चगोत्र कर्म का बंध करता हैं फिर वह अप्रतिहत अर्थात् अखण्ड सौभाग्य को तथा आज्ञा प्रतिफल (जिसकी आज्ञा बिना आनाकानी के मनुष्य सहर्ष स्वीकार करने लगता है) एवं दाक्षिण्य भाव को (सभी का प्रीतिपात्र अर्थात् लोकप्रिय) प्राप्त करता है।

भगवान महावीर के उपर्युक्त कथन के प्रमाण हैं - सम्राट श्रेणिक। जिन्होंने विधि सहित भक्तिभाव पूर्वक मुनियों को वंदन करके छः नरक के इकट्ठे किये हुए पापकर्म नष्ट कर डाले थे। यह ऐतिहासिक घटना वंदना के महत्त्व को प्रगट करने वाली है।

इस प्रकार वंदना अपने धर्म की बुनियादी एवं आवश्यक चर्या है। यह केवल औपचारिकता नहीं है, वरन् हृदय की अनंत श्रद्धा का सहज प्रकट रूप है। जो सद्गुरु का सान्निध्य प्राप्त होने पर हृदय से उद्बुद्ध होती है।

* * * * * *

... श्री आनंद ऋषि जी महाराज की जन्म जयंति पर उन्हीं के सान्निध्य में
... रोड में श्रद्धा-भावना के पुष्प अर्पित करती हुई महासती कौशल्या देवी जी



सम्यक्त्व : भव-भ्रमण पर विराम

सम्यक्त्व का महत्त्व

अनादिकालीन दुःखों की परंपरा से मुक्ति प्राप्त करने के लिये सम्यक्त्व पहली भूमिका है। सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना न श्रावक बना जा सकता है, न साधु। त्याग-वैराग्य, तप-जप, नियम-व्रत आदि जितनी भी साधनाएँ हैं, उन सबकी नींव सम्यक्त्व है। यदि मूल में सम्यक्त्व नहीं है, तो अन्य सारी क्रियाएँ केवल देह दमन या देह तपन हैं, उन्हें धर्म नहीं कह सकते, वे संसार चक्र को घटा नहीं सकती।

जैसे बिना अंक के लाखों, करोड़ों बिन्दियाँ लगा दी जाएँ तो उनका अर्थशास्त्र में कोई महत्त्व नहीं होता, वे सब शून्य कहलाती हैं, इसी प्रकार सम्यक्त्व के बिना सभी साधनाएँ शून्य की कोटि में आती हैं। जैसे शून्य के आगे 1 का अंक लिख दिया जाये तो शून्य का मूल्य दस गुना बढ़ जाता है, इसी प्रकार एक सम्यक्त्व के प्राप्त होने के बाद छोटी से छोटी साधना का भी महत्व बढ़ जाता है।

भगवती सूत्र में तामली तापस का वर्णन आता है। वह महातपस्वी बेले-बेले तप करता था और पारणे में बचा-खुचा आहार गृहस्थ के घर से भिक्षा में लेकर आता वह भी रूखा-सुखा आंयबिल का आहार 21 बार पानी में धोकर ग्रहण करता था। इस प्रकार की कठोर तपस्या उसने साठ हजार वर्ष तक की।

गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया, कि **"भगवन्! इतनी कठोर साधना करने वाला तामली तापस मरकर कहाँ गया? कौन से देवलोक का देव बना?"** तो भगवान ने उत्तर दिया, कि **"वह ईशान देवलोक का इन्द्र बना है।"**

सुनकर गौतम स्वामी को महान् आश्चर्य हुआ, क्योंकि उतने तप में तो सात जीव मोक्ष में जा सकते थे, परंतु तामली तापस मात्र ईशानेन्द्र बना? वस्तुतः उसने श्रम तो बहुत किया लेकिन सम्यक्त्व पूर्वक श्रम नहीं किया, उसका सारा तप अज्ञान तप था, अतः उसका तप सार्थक नहीं हुआ। उस तप से उसे जितना लाभ होना चाहिये उतना लाभ नहीं हुआ। उत्तराध्ययन सूत्र के नौवें अध्ययन में यही बात कही है -

---

जहाँ सर्वोत्कृष्ट शुद्धि वहाँ सर्वोत्कृष्ट सिद्धि । - श्रीमद्

"मासे मासे उ जो बालो, कुसग्गेण तु भुंजए।
न सो सुअक्खाय धम्मस्स, कल्लं अग्घइ सोलसिं॥"

अर्थात् मासखमण की तपस्या करके पारणे में कुशाग्र जितना आहार लेते हुए भी बाल तपस्वी सुआख्यात जिन धर्म की सौलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं कर सकता। सम्यक्त्व के बिना ज्ञान सम्यक्ज्ञान नहीं हैं, तो चारित्र सम्यक्चारित्र केसे हो सकता है? भगवान ने कहा है -

"नांदसणिस्स नाणं
नाणेण विणा न हुंति चरण-गुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो,
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं॥"

अर्थात् सम्यक्त्वहीन को ज्ञान नहीं होता, ज्ञानहीन को चरित्र नहीं होता, चारित्रहीन को मोक्ष नहीं होता, और मोक्ष हीन को निर्वाण पद नहीं मिल सकता। इस प्रकार सम्यक् दर्शन को मुक्ति महल में पहुँचने के लिये पहली पंक्ति कहा गया है।

सम्यक्त्व का स्वरूप

प्रश्न होता है,कि सम्यक्त्व किसे कहते हैं ? यह केसे प्रगट होता है ? उत्तर है, कि सही दृष्टि को सम्यक् दर्शन कहते हैं, सत्य प्रतीति को सम्यक् दर्शन कहते हैं। इसे समझने के चार मुख्य आधार हैं -

(१) सुदेव, सुगुरु एवं सुधर्म पर दृढ़ श्रद्धा होना।

(२) जीव, अजीव आदि तत्त्वों में हेय को हेय, ज्ञेय को ज्ञेय और उपादेय को उपादेयरूप से यथार्थ समझकर श्रद्धा करना।

(३) स्व और पर का भेद ज्ञान होना।

(४) शरीर, इन्द्रिय, कर्म आदि से पृथक् केवल आत्मा की अनुभूति होना।

ये चारों एक-दूसरे के पूरक हैं। एक का श्रद्धान होने पर शेष सबकी श्रद्धा हो जाती हैं।

श्रद्धाविहीन आत्मा केवड़े की बालो जैसा है, जो उसमें रहकर भी गंधहीन होता है।

संक्षेप में, सम्यक्‌दर्शन का सीधा-सादा अर्थ लिया जाये, तो वह है '**विवेक दृष्टि**' **सत्य-असत्य का विवेक होना ही सम्यक्त्व है।**

शास्त्रों में सम्यक्‌ दर्शन के अनेक भेद बताये गये हैं। उनमें मुख्य रूप से दो भेद प्रसिद्ध हैं - निश्चय सम्यक्त्व और व्यवहार सम्यक्त्व। आध्यात्मिक गुणों का विकास होते-होते आत्मा में एक प्रकार से ऐसी निर्मलता आती है, जो मिथ्यात्व की अवस्था में कभी प्राप्त नहीं हुई थी। उस समय जो ज्ञेय अर्थात्‌ जीवादि तत्त्वों को तात्त्विक रूप से जानने की और हेय अर्थात्‌ छोड़ने योग्य हिंसा असत्य आदि पापों को त्यागने की और उपादेय अर्थात्‌ ग्रहण करने योग्य व्रत - नियम आदि को ग्रहण करने की अभिरुचि होती है वह **निश्चय सम्यक्त्व है।**

यह सम्यक्त्व अनन्तानुबंधी क्रोध, मान माया, लोभ और दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृति - मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय इन सात प्रकृतियों का क्षय, क्षयोपशम या उपशम होता है, तब प्राप्त होती है। क्षायिक, क्षायोपशिमक और औपशमिक इन तीन सम्यक्त्वों में क्षायिक सम्यक्त्व सबसे अधिक निर्मल होती है। एक बार उत्पन्न होने के बाद फिर उसका नाश नहीं होता है। जबकि औपशमिक और क्षायोपशिमक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होकर फिर नष्ट हो जाती है। लेकिन सम्यग्दर्शन चूंकि आत्मा की परम निर्मल अवस्था का नाम है, अतः एक बार जिसे अन्तर्मुहुर्त के लिये भी सम्यक्त्व प्राप्त हो जाती है वह संसार को परिमित कर डालता है, और अधिक से अधिक अर्द्धपुद्‌गलपरावर्त काल तक ही संसार में परिभ्रमण करता है।

व्यवहार, सम्यक्त्व श्रद्धा प्रधान होती है। कुदेव, कुगुरु और कुधर्म को छोड़कर सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर दृढ़ श्रद्धा रखना **व्यवहार सम्यक्त्व** है। व्यवहार सम्यक्त्व, एक प्रकार से निश्चय सम्यक्त्व का ही बाह्य रूप है। निश्चय सम्यक्त्व अन्तरंग की चीज है, अतः वह मात्र अनुभूति-गम्य है परंतु व्यवहार सम्यक्त्व की भूमिका श्रद्धा पर है, इसलिये वह बाह्य दृष्टि से भी समझी और जानी जा सकती है।

सामायिक ग्रहण करने से पूर्व साधक प्रतिज्ञा करता हुआ कहता है कि -

"अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिण-पण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं॥"

राग-द्वेष को जीतने वाले अरिहंत प्रभु मेरे देव हैं। जीवन पर्यन्त संयम की साधना करने वाले सच्चे श्रेष्ठ साधु मेरे गुरु हैं। श्री जिनेश्वर देव का बताया हुआ अहिंसा, सत्य आदि ही मेरा धर्म है। देव, गुरु और धर्म पर श्रद्धा स्वरूप सम्यक्त्व व्रत मैंने जीवन-पर्यन्त के लिये ग्रहण किया है।

यहाँ शास्त्रकारों ने व्यवहार सम्यक्त्व का वर्णन किया है, कि किसे देव मानना, किसको गुरु मानना और किसको धर्म मानना ? अतः साधक प्रतिज्ञा करता है, कि अरिहंत मेरे देव हैं, सच्चे साधु मेरे गुरु हैं और जिन प्ररूपित सच्चा धर्म ही मेरा धर्म है।

आत्म-विजेता अरिहंत देव

जिन शासन आध्यात्मिक भावना प्रधान धर्म है, अतः यहाँ स्वर्ग के भोग-विलासी देवों को देव नहीं माना, किंतु उसी देव को देव माना गया है जिसने राग-द्वेष आदि विभाव भावों को जीत लिया है, जो 18 दूषण रहित हैं, जिसने चार घाती कर्मों का नाश कर दिया है, और दर्शन, ज्ञान, चारित्र के पूर्ण विकास पर पहुँच गया है। केवल ज्ञान केवल दर्शन के द्वारा भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल और तीनों लोक के सभी द्रव्यों को तथा उनकी हर क्षण परिवर्तित होने वाली सभी पर्यायों को प्रत्यक्ष जानता है और देखता है, ऐसे अरिहंत को 'देव' माना गया है।

'अरि' का अर्थ शत्रु है, और 'हन्त' का अर्थ है - मारना। अर्थात् शत्रु को मारने वाला अरिहंत है। यह शत्रु बाहर में नहीं वरन् अन्तरंग में है। बाहर के शत्रुओं से युद्ध करते हुए तो अंनतकाल बीत गया, परंतु उससे हमारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। अनेक चक्रवर्ती और वासुदेव हुए, तीन खंड या छः खंड पर जिनका एक छत्र स्वतंत्र साम्राज्य था, तब भी जिसने आन्तरिक शत्रुओं पर विजय नहीं पाई, वे नरक में पराधीन बनकर गये।

एक कहानी है, कि एक राजा था, उसके लड़के का नाम था जीत सिंह। बड़ा होकर जब वह राजा बना तो उसने अपने पराक्रम से अनेक देशों पर विजय प्राप्त कर ली, इससे उसका शरीर अभिमान से तन गया। एक बार उसने मंत्री को बुलाकर कहा-

"मंत्री ! मैंने अपने राज्य के आसपास के सब देशों पर विजय प्राप्त कर ली है। अतः मेरा नाम आज से 'सर्वजीत' हो।

बीज छोटा सा हो, पर यदि धरती को समर्पित हो गया तो वह अपना सपूर्ण खजाना उसके लिये खोल देती हैं।

मंत्री ने उसके आदेश का पालन किया और सारे नगर में घोषणा करवा दी, कि "राजा जीतसिंह को अब से सभी 'सम्राट सर्वजीतसिंह जी' कहें। जो उनका पुराना नाम लेगा उसे फांसी पर चढ़ा दिया जायेगा।"

राजघोषणा को सुनकर सभी बड़े-बड़े राजा, सामंत आदि नगर के प्रतिष्ठित लोग 'सम्राट् सर्वजीत' को बधाई देने आये। सभी लोग 'सम्राट् सर्वजीतसिंह की जय हो' के नारे लगाने लगे। विविध भेंट और उपहार की वस्तुओं से राजा का खजाना भर गया।

एक दिन सर्वजीत सिंह माँ के पास गया। माँ ने प्यार से कहा - "मेरे बेटे जीतू! आओ ! तुम्हारा स्वागत है।"

राजा ने कहा - "माँ! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारा बेटा 'जीतू' अब जीतू नहीं रहा, वह 'सर्वजीत' बन चुका है, आप मुझे सर्वजीत कहो।"

माँ ने कहा - "बेटा ! अभी तुमने क्या जीता? कुछ भी तो नहीं, बाहर के शत्रुओं की तरफ तो तुम्हारी नजर गई अतः उन पर विजय प्राप्त कर ली, परंतु अंदर के जो शत्रु तुम्हें हर समय परेशान कर रखते हैं, उनकी तरफ तुम्हारा ध्यान ही नहीं है। मैं तो तुम्हें सर्वजीत तभी कहूँगी जब तुम अपने अंदर के शत्रुओं को भी जीत लोगे।"

जीतसिंह ने पूछा - "माँ ! वे अंदर के शत्रु कौन से हैं, और उन्हें केसे जीता जा सकता है? तू मुझे उपाय बता, मैं उनको भी जीतकर सर्वजीत बनाना चाहता हूँ।"

माँ ने कहा -"बेटा ! अंदर के शत्रु हैं - काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या आदि। उन शत्रुओं को जीतने के लिये संसार की मोह-माया को छोड़कर, जंगल में एकान्त साधना की जाती है। पाँच इन्द्रियाँ एवं मन को वश में किया जाता है। जिस दिन तेरी आत्मा में राग या द्वेष का एक अंश मात्र भी नहीं रहेगा, उसी दिन तू सर्वजीत बन जायेगा।"

माँ की बात सर्वजीत के हृदय में तीर का सा काम कर गई। वह जंगलों में गया, और ध्यान-साधना शुरू की। परिणाम इतने ऊपर चढ़े कि एक दिन उसे केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट हो गया। जब माँ को पता चला तो वह दर्शन करने

सत्पुरुष के अन्तःकरण ने जिसका आचरण किया अथवा जिसे कहा, वह 'धर्म' है।

गई और कहा - **"बेटा! अब मैं तुम्हें सर्वजीत कहती हूँ। मुझे तुम्हारे पर गर्व है, कि तुमने मेरी बात पूरी की।"**

माँ सर्वजीत को नमस्कार कर रही थी, परंतु सर्वजीत को अब कोई इच्छा ही शेष नहीं रह गई थी। माँ दर्शन करके चली गई।

हाँ तो बाह्य शत्रुओं को जीतना कठिन नहीं है, कठिन है, अंदर के शत्रुओं को जीतना। इसीलिये भगवान ने गौतम से कहा -

"अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पणामेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए॥"

अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिये। बाहर के युद्ध से क्या प्रयोजन? आत्मा से आत्मा को जीतने वाला ही इस लोक व परलोक में सुखी होता है।

जिस प्रकार काँटों से बचने के लिए सारी पृथ्वी को चमड़े से मँढ़ना अज्ञानतापूर्ण हैं, उसी प्रकार शत्रुओं से विजय प्राप्त करने के लिये बाह्य शत्रुओं से युद्ध करना भी अज्ञानतापूर्ण है। जैसे पाँवों में जूता पहन लेने से सारी पृथ्वी चर्म से आवृत्त हो जाती है। इसी प्रकार अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त कर लेने से सारे संसार पर विजय प्राप्त हो जाती हैं।

जिस प्रकार मूल का नाश होने से शाखा-प्रशाखाएँ सब नष्ट हो जाती है, इसी प्रकार आत्मा को जीत लेने पर सभी कुछ स्वतः जीत लिया जाता है। इस प्रकार जिन्होंने आंतरिक शत्रुओं/वैभाविक परिणति का पूर्ण त्याग कर दिया वे वीतराग भगवान 'अरिहंत' कहलाते हैं। अरिहंत हुए बिना वीतरागता हो ही नहीं सकती। और वीतरागता हुए बिना सर्वज्ञ सर्वदर्शीपना प्रकट नहीं हो सकता। इनमें कार्यकारण भाव है। अतः अरिहंत को अपना उपास्य देव माना गया है।

निर्ग्रन्थ साधु गुरु

गुरु उसे माना गया है, जो सुसाधु है। सुसाधु का अर्थ है - जिसे त्याग की कसौटी पर परख लिया गया है। जो सत्पुरुष स्वयं तिरता है, दूसरों को तिराता है, स्वयं ग्रंथियों से रहित है - क्रोध, मान, माया, मिथ्यात्व आदि की गांठे जिसकी

देह और देहार्थ ममत्व, यह मिथ्यात्व का लक्षण है। सम्यक् नेत्र प्राप्त करके आप चाहे जिस धर्मशास्त्र का विचार करे; तो भी आत्महित ही होगा। - श्रीमद् राजचंद्र

अन्तरात्मा में नहीं है, वही दूसरों का सच्चा मार्गदर्शक बन सकता है।

देव और गुरु में भेद नहीं है, मात्र पर्याय की पूर्णता-अपूर्णता का अंतर हैं 'गुरु' वही है जिसे देवत्व के स्वरूप का अनुभव है, वे उसे प्रकट करने में लीन है। वह द्वादशी के चंद्रमा के समान पूर्ण बनने की स्थिति में हैं उसे 13वें गुणस्थान का अनुभव है, मुक्ति का अनुभव करता है, परन्तु अभी वहाँ पहुँचा नहीं है। वह मुक्ति को मार्ग जानता हैं और अनेक जीवों को मोक्ष प्राप्त कराने में निमित्त बनता है।

ऐसा गुरु बाह्य दृष्टि से पाँच महाव्रत का पालन करता है, सब पर समभाव रखता है, पूर्ण ब्रह्मचारी होता है, रुपये-पैसे का, रेल-मोटर आदि किसी अवलम्बन का उपयोग नहीं करता, वह सच्चा गुरु है।

सत्य धर्म

सच्चा धर्म उसे माना गया है, जो अरिहंत भगवान द्वारा उपदिष्ट हो, जिससे अन्तःकरण की शुद्धि हो, वासनाओं का क्षय हो, आत्म-गुणों का विकास हो ओर आत्मा पर से कर्म का आवरण दूर हो ऐसा धर्म अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, संतोष, क्षमा आदि है।

आजकल कई लोग कुसंस्कारों से प्रेरित होकर देवी-देवताओं को बलि चढ़ाने के लिये हिंसा करते है, और उसे धर्म मानते हैं। उन्हें यह सोचना चाहिये, कि क्या देवता भी कभी मांसभक्षण करते हैं? यदि नहीं, तो उनके लिये किसी प्राणी के प्यारे प्राणों की घात करना कहाँ तक उचित है? फिर हिंसा और धर्म आपस मे विरोधी हैं। जहाँ हिंसा हैं, वहाँ धर्म कोई नहीं मानता, तो फिर यहाँ हिंसा करके धर्म क्यों मानते हैं ?

वस्तुतः जीवन में देव, गुरु का महत्त्व होते हुए भी अन्त में सत्य एवं तथ्य का निर्णय बुद्धि ही कर सकती हैं। अतः बुद्धि से मिथ्या क्रियाकांडों को छोड़कर सम्यक् क्रिया को अपनाना ही धर्म है।

इस प्रकार अरिहंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु एवं सत्योपदिष्ट धर्म पर अनन्य श्रद्धा रखना व्यवहार सम्यक्त्व है। जैसे पतिव्रता स्त्री एक पति को पति के रूप में स्वीकार

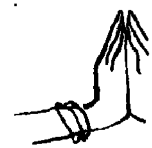
दोषों से आत्मा को अलग करना आलोचना है।

कर लेती है, तो संसार में अन्य किसी को पति की दृष्टि से नहीं देखती, इसी प्रकार अरिहंत देवादि पर दृढ़ श्रद्धा रखने वाला अन्य किसी देवादि को अपना आराध्य नहीं मानता।

एक बार जिसके मन में सच्ची श्रद्धा पैदा हो जाये तो वह सात बोलों का बंध नहीं करता। नारकी, तिर्यञ्च, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग, भवनपति, वाणव्यंतर और ज्योतिषी।

सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने के बाद आत्मा का संसार परिभ्रमण उसी प्रकार रुक जाता है, जैसे चलती हुई घड़ी की सुइयाँ चुम्बक रखते ही रुक जाती हैं। अथवा सिग्नल देखते ही चलती ट्रेन रुक जाती है उसी प्रकार आत्मा की अनन्तकाल की भटकन सम्यक्त्व प्राप्त होते ही समाप्त हो जाती है। जीव अनंतकाल से यात्रा करता चला आ रहा है, परन्तु गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँचा, क्योंकि उसे लक्ष्य का पता नहीं था, अंतः भटक रहा था। वह अंधा था अतः इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा था। यात्री को आँख चाहिये, तभी वह सही दिशा में यात्रा कर सकता है। अध्यात्म-पथ पर यात्रा करने वाले साधक को भी आँख की आवश्यकता है। वह आँख सम्यक्त्व की हैं, इस आँख को प्राप्त करके साधक स्थिर मन वाला होकर सीधा लक्ष्य की ओर चलने लगता है, इसी को सम्यक्चारित्र कहते हैं। सम्यक्त्व की पीठिका पर पाँव धरने के बाद वह अध्यात्म की भाषा में **'वीतराग देव का लघुपुत्र'** हो जाता है।

अपनी परख आप



पाप, आत्मा का बोझ

भगवान महावीर ने पापकर्मों को 'भार' कहा है। जेठ का महीना है, अनन्त आकाश मे सहस्ररश्मि सूर्य तप रहा है चिलचिलाती धूप गिर रही है, धरती आग उगल रही है। एक यात्री को जाना बहुत दूर है, मार्ग काँटेदार और झाड़-झंखाड़ों से भरा है, और सिर पर भारी भरकम पत्थर का बोझ है, ऐसी स्थिति में कोई सघन छायादार वृक्ष मिल जाये, तो वह यात्री उसके नीचे अपना भार उतारकर कितना आनंद अनुभव करता है ? उसी प्रकार पाप के भार को उतार देने से आत्मा भी अपूर्व आनंद का अनुभव करती है।

जिस प्रकार पेट में मल इकट्ठा हो रहा है, तो मन बेचैन हो जाता है, किसी अन्य काम में मन नहीं लगता, तुरंत शौच जाकर पेट साफ करता है, तो मन स्वस्थ एवं प्रसन्न हो जाता है। इसी प्राकर पाप का मल जब तक आत्मा में है, तो आत्मा सुखी एवं प्रसन्न नहीं हो सकती। पाप-मल दूर होने के बाद ही आत्मा को शांति मिल सकती है। आलोचना पाप-मल को दूर करने वाली औषधि है। जैसे औषधि शरीर के रोगों को दूर करती है, उसी प्रकार आलोचना आत्मा के रोगों को दूर कर उसे स्वस्थता प्रदान करती है।

बोझ को हल्का करने का उपाय

साधना के चार अंग बताये हैं -

"एवमहं आलोइयं - निंदियं-गरहियं-दुग्गंछियं सम्मं।
तिविहेणं पडिक्कंतो, वंदामि जिण चउव्वीसं॥"

(१) आलोचना - स्वयं के दोषों को स्वयं देखना।

(२) निंदा - अपने दोषों को बुरा समझना।

गिरना बुरा नहीं, गिरकर न उठना बुरा है।

(३) गर्हा - गुरु की साक्षी में उन्हीं दुर्गुणों की निंदा करना।

(४) दुर्गच्छा - किये हुए पापों की जुगुप्सा करना। अर्थात् घृणा करना, अप्रीति करना। पुनः न करने की प्रतिज्ञा करना।

अध्यात्म-साधना के मार्ग में साधना का यह श्रेष्ठ क्रम है। 'जन' से 'जिन' बनने का यह राजमार्ग है। साधक सर्वप्रथम स्वयं के दोषों को देखने की आदत डालता है। जिस मनुष्य को अपनी कमी का पता नहीं चलता, वह उसे दूर भी केसे करेगा, और कमी को दूर किये बिना, अपनी दुर्बलता को मिटाये बिना जीवन सबल केसे बनेगा ? अपने वस्त्र की मलीनता का ज्ञान होने पर ही मनुष्य उसे साफ और स्वच्छ करने का प्रयत्न करता है।

आप शीशे के सामने जाते हैं, तो क्या देखते हैं ? उसमें शीशे को या अपने मुँह हो ? शीशे में देखकर आप अपने मुँह पर लगे दागों को दूर करते हैं, न कि मुँह के दागों को शीशे में देखकर शीशे को दूर करते हैं। शीशा घर में इसीलिये रखा जाता है, कि आप उसमें अपने को देखें और जो कमियां दिखाई दें उन्हें तोलिये से रगड़कर साफ कर दें।

आलोचना भी एक प्रकार का शीशा है इसमें जीवन की कमियाँ, दुर्गुण, दोष स्पष्टतया दिखाई देने लगते हैं, उन्हें देखकर साधक संकल्प पूर्वक उः। कमियों को दूर हटाने पर प्रयत्न करता है, जीवन को पवित्र और सबल बनाने की चेष्टा करता है।

जब आलोचना का रूप बहिर्मुखी होता है, तो उसे दोष-दृष्टि कही जाती है, इसी दृष्टि को जरा सा मोड़ देकर अन्तर्मुखी करने की आवश्यकता है, तब दूसरों के दोष देखने की आदत स्वयं के दोष देखने में रूपांतरित हो जाती है। उसे यह पता लगने लगता है, कि मेरे भीतर कितनी मलिनता है, कितने दुर्गुण हैं ?

स्वयं को देखिये

एक कहानी है, कि एक शिष्य ने गुरु की खूब सेवा की, सेवा के फलस्वरूप प्रसन्न होकर गुरु ने उसे एक चमत्कारी शीशा प्रदान किया। उस शीशे की विशेषता थी, कि जिस किसी के सामने वह शीशा किया जाता, उसके अन्तरमन में रहे हुए

तन की आँख खुलती है तो जहान दिखता है, मन की आँख खुलती है तो भगवान दिखता है।

दुर्गुण उस शीशे में झलकने लगते। शिष्य को शीशा मिला तो वह खुशी में झूम उठा उसने उस शीशे को सबसे पहले गुरु के सामने किया, तो देखा, कि गुरु के मन में अनेक छोटे-मोटे विकारों के कीड़े कुलबुला रहे हैं, उसे गुरु से अश्रद्धा हो गई, सेवा की भावना कम हो गई, सोचने लगा - ऐसे गुरु के पास क्या रहना, जो स्वयं इतने दुर्गुणी हैं। वह वहाँ से चल पड़ा, अब जो भी उसे मार्ग में मिलता उसी के सामने उस शीशे को घुमा देता, और उसके मन में रहे काम, क्रोध, कपट, लोभ, वासना, ईर्ष्या, द्वेष आदि की गंदगी देखकर दंग रह जाता। यह सब देख-देखकर, वह कुछ ही दिनों में घबरा गया, उसका किसी भी काम में मन नहीं लगता, तो पुनः अपने गुरु के पास आकर बोला -

"गुरुजी ! संसार में कोई इंसान भला है ही नहीं, मैंने जिसे भी देखा उसमें कहीं वासना की गंदगी है, तो कहीं लोभ का अजगर। कहीं क्रोध का सर्प फुत्कार रहा है तो किसी में मान का हाथी गर्जना कर रहा है। और तो और आपके मन में भी ये ही पाशविक वृत्तियाँ दिखाई दीं। कितना बुरा है यह संसार ?"

गुरु ने शिष्य का हाथ पकड़कर शीशे को उसी की ओर घुमाया और कहा - "वत्स ! इस शीशे में अब खुद को देखो।" शिष्य ने शीशे में अपने को देखा तो हैरान रह गया, उसने कभी अपने बारे में इतने बुरे होने की कल्पना भी नहीं की थी, उसने शीशे में देखा अपने भीतर, कि कहीं अंहकार के मदोन्मत्त हाथी चिंघाड़ रहे हैं, तो एक कोने में वासना और लोभ के अजगर मुँह फाड़े बैठे हैं। कहीं ईर्ष्या-द्वेष का दावानल जल रहा है तो कहीं कुटिलता की सर्पिणी कुंडली मारे बैठी है। वह घबराकर बोला - "गुरुजी ! यह क्या, मेरा मन तो सबसे अधिक अपवित्र और गंदा है?"

गुरु ने कहा -"वत्स ! यह शीशा मैंने तुझे इसलिये नहीं दिया कि तू दूसरों के दोष देखे, वरन् इसलिये दिया है, कि इसमें अपनी बुराइयों को देखकर उन्हें एक-एक कर निकालने का प्रयत्न कर। जिस दिन तू स्वयं को देखने लग जाएगा उस दिन से तुझे दूसरों को देखने की इच्छा ही पैदा नहीं होगी।"

गुरु की बात सुनकर शिष्य कह उठा -"गुरुदेव! आपने मुझे आत्म-दर्शन की सही दृष्टि दी है, इसके प्रकाश में जब मैं स्वयं को देखता हूँ, तो मुझे लगता है कि

यदि किसी पर आलोचना की कैंची चलानी है, तो पहले खुद को दर्जी बनालो। चूहे की तरह वस्त्र को कुतरने से क्या लाभ ?

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो घट शोधूं आपना, मुझसा बुरा न कोय॥"

वस्तुतः आलोचना भी एक प्रकार का दर्पण है। इस दर्पण को संसार की ओर घुमाएँगे तो संसार की बुराइयाँ दिखाई देंगी और इसी दर्पण को अपनी ओर घुमाएँगे तो अपने अंदर की बुराइयाँ दिखाई देंगी।

दूसरों की बुराइयाँ देखने से दोष-दर्शन की आदत पड़ जाती है, उसकी वृत्तियों में, उसकी दृष्टि में विकार पैदा हो जाता है, आगे जाकर वह गुणों में भी दोष देखने लगता है। ऐसा व्यक्ति हर समय संदेहशील बना रहता है, गलतफहमी का शिकार बन जाता है। प्रसाद जी ने एक स्थान पर कहा है-

"मलिन चित्त की छाया भी चित्त को मलिन कर देती है।"

तो फिर जब हमारा मन सदा दूसरों के ही चित्त को देखता रहेगा तो कितना मलिन बन जायेगा ? जीवन बहुत अल्पकालीन है, थोड़ा सा आयुष्य है, उस थोड़े से आयुष्य में हमें अपनी आत्मा के मैल को धेना है। आत्मा अनादिकाल से कर्म मैल से मलिन बनती जा रही है, पुराना मैल उतरता नहीं उससे पहले नया मैल और चढ़ जाता है, इस प्रकार इस आत्मा पर मैल की परतों की परतें जमा हो गई हैं, उन परतों को दूर करने के लिये एक जन्म बहुत कम है। फिर मैल को धोने के लिये हमारे पास जो साबुन है वह और भी कम है, उस साबुन से अपनी आत्मा के मैल को भी पूरा नहीं उतारा जा सकता तो दूसरों की मलिन आत्मा को धोने में वह साबुन केसे पर्याप्त होगा ? यह विचारकर मुमुक्षु आत्माएँ अपने ज्ञान-दर्शन का उपयोग अपनी आत्मा को देखने में लगाती हैं।

भगवान महावीर ने कहा है कि - **"छद्मस्थ आत्मा का एक समय में एक ही उपयोग होता है, एक साथ दो उपयोग नहीं हो सकते। जब हम अपना ज्ञान उपयोग दूसरों को जानने में लगाते हैं, तो स्वयं को नहीं जान पाते और जब स्वयं को जानते हैं, तब दूसरों को नहीं जानते।"**

अतः हमारा ज्ञान-दर्शन हमारे लिये काम आयेगा तो हमें लाभ होगा और दूसरों के काम आयेगा तो हम घाटे में रहेंगे। कोई भी बुद्धिमान अपनी वस्तु का

उपयोग स्वयं करता है, दूसरों को कदाचित् अपनी वस्तु देनी भी पड़े, तो सोच-समझकर देता है या थोड़ी देर के लिये ही देता है और उसका भी किराया या ब्याज वसूल कर लेता है, लेकिन हम ऐसे अविवेकी हैं, कि अपने ज्ञान-दर्शन रूप गुणों के धन को बिना शर्त के दूसरों को प्रदान किये जा रहे हैं। दूसरा कहता भी है, कि भई ! तुम अपने धन का अपने लिये उपयोग करो, मुझे तुम्हारी चीज नहीं चाहिये फिर भी उसकी सुनी-अनसुनी कर देते हैं। और अपनी चीज लुटाते चले जा रहे हैं।

यदि कोई व्यक्ति अपना धन किसी को देता है तो लेने वाला सेठ बन जाता है, उसके गुणग्राम करता है। पर जो अमूल्य उपयोग रूप धन जिसके लिये हमारी आत्मा खर्च कर रही है, उसकी तो गांरटी भी नहीं कि वह उसे सेठ बना दे। सेठ बनाने का अर्थ कि उसे महापुरुष बना दे, पूर्ण सद्गुणी बना दे।

उल्टा, यदि उपयोग द्वेष पूर्ण है दोष-दर्शन वाला है, ज्ञान और दर्शन में विपरीतता मिली हुई है, तो वह ज्ञान दूसरों का कल्याण करने वाला न होकर पतन का कारण बन जाता है।

भगवान महावीर का कहना है, कि अपका ज्ञान-दर्शन जब तक राग-द्वेष से रहित नहीं बन जाता, आप जब तक वीतरागी और वीतद्वेषी नहीं बन जाते तब तक अपनी दृष्टि संसार की ओर मत घुमाओ, अपनी दृष्टि को अपनी आत्मा की ओर ही लगाए रखो। अपना आत्मशोधन करो, अपने अवगुणों का विश्लेषण करते रहो। अपनी आत्मालोचना का कार्य हम कर ही सकते हैं, कोई दूसरा यदि हमारी आलोचना करेगा तो हमें उस पर क्रोध का भाव पैदा होगा द्वेष पैदा होगा। लेकिन जब हम स्वयं को स्वयं के ज्ञान से जानेंगे तभी हमें यह विश्वास होगा कि हमारे भीतर अमुक दुर्गुण हैं, तभी हम उनको निकालने का संकल्प करेंगे।

आलोचना से जीवन का विकास

आत्मालोचन का कार्य कठिन अवश्य है, परन्तु जिस दिन हमें अपने दोष दिखाई देने लग जाएँगे, उसी दिन से हमारे जीवन का सम्यक् विकास होना शुरू हो जायेगा। महासती मृगावती ने आलोचना करते-करते ही तो केवल ज्ञान-केवल दर्शन की प्राप्ति कर ली थी।

दूसरे को छोटा बताने की चेष्टा ही परनिन्दा है ।

महासती मृगावती कौशाम्बी के राजा शतानिक की महारानी थी, जयन्ती श्राविका की भाभी और उदयन की माता थी, चंदनबाला की वह मौसी थी, वैशाली के प्रसिद्ध राजा चेटक की पुत्री थी। मृगावती अत्यंत सुंदरी, गुणवती और शीलवती थी। उसके रूप पर आसक्त होकर अवन्ती के राजा चण्डप्रद्योत जो उसके बहनोई लगते थे, उन्होंने शतानीक के राज्य पर चढ़ाई कर दी। शतानीक की सेना अल्प होने से वह हिम्मत हार गया और भयग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

जब भगवान महावीर कौशाम्बी में पधारे तो पुत्र उद्यन को चण्डप्रद्योत राजा के संरक्षण में छोड़कर मृगावती ने दीक्षा अंगीकार कर ली थी, वह महासती चंदनबाला की आज्ञा में विचरकर संयम व तप की आराधना करने लगी।

एक बार भगवान महावीर कौशाम्बी में पधारे। महासती चंदनबाला भी अपनी शिष्याओं के साथ भगवान के दर्शन करने गई। महासती मृगावती प्रभु भक्ति में तल्लीन बनी हुई थी, अतः उसे लौटने में देर हो गई। चंदनबाला ने उन्हें उपालंभ देते हुए कहा-

"साध्वियों को सूर्यास्त के पश्चात् उपाश्रय से बाहर नहीं रहना चाहिये।"

महासती मृगावती ने अपने दोष को स्वीकार किया और विचार करने लगी-

"अहो ! आज मेरी भूल के कारण मेरी गुरुणी को कितना मानसिक कष्ट हुआ, धिक्कार है मुझे, जो अपने संयम पालन में स्वयं सजग न रह सकी, मुझे समय का ध्यान रखना चाहिये"। इस प्रकार मृगावती गहरे आत्म-निरीक्षण में उतर गई। आत्मालोचना और निंदा करते-करते उन्होंने घाती कर्म नष्ट कर दिये और केवल ज्ञान, केवल दर्शन को प्रगट कर लिया।

इधर महासती चंदनबाला को पता लगा, कि मृगावतीजी केवलज्ञानी बन चुकी है, तो स्वयं पश्चाताप् करने लगीं कि, मैंने उन्हें उपालम्भ देकर केवली की अशातना कर दी, अहो! मैंने प्रवर्तिनी होकर भी अविचारित भाषा का प्रयोग कर दिया, मुझे उन्हें उपालम्भ नहीं देना चाहिये .... ' इत्यादि विचार करते-करते महासती चंदनबाला को भी केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त हो गया।

आलोचना करते-करते केवलज्ञान होने के ये दो उदाहरण हमारे सामने हैं। इनसे पता लगता है, कि स्वयं की आलोचना से आत्मा के कल्याण का द्वार कैसे

जिस कृत्य का परिणाम धर्म नहीं हैं, उस कृत्य को करने की इच्छा मूल से ही नहीं रहने देनी चाहिये। - श्रीमद्

उद्घाटित हो जाता है ? इसके विपरीत यदि मृगावती चंदनबाला के कथन को द्वेष रूप में ले लेती, या विपरीत रूप में लेकर आरोप-प्रत्यारोप करने लग जाती तो वह कभी आत्मा के असली सुख के दर्शन नहीं कर सकती थी, और उल्टा दुःखी व अशान्त हो जाती, परंतु उस महासती ने स्वदर्शन के द्वारा स्व का निरीक्षण किया और अपना आत्मार्थ सिद्ध कर लिया। दूसरी ओर चंदनबालाजी ने भी स्वयं-दर्शन के मार्ग से केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार आलोचना का मार्ग अक्षय सुख का राजमार्ग है, इसी मार्ग से समस्त अरिहंतो की आत्माएँ गुजरी हैं, अतः प्रभु महावीर ने आत्मा में समता भाव रूप सामायिक को प्रतिष्ठित करने से पहले आलोचना का पाठ बताया है।

आलोचना के बाद आत्म-निंदा

आलोचना के बाद निंदा का क्रम इसलिये रखा है कि आलोचना में दोषों को देखने की आदत डाली जाती है, तो निंदा में उन्हें बुरा समझा जाता है। दोषों को देखकर भी उन्हें त्याज्य नहीं समझा गया तो आत्मशुद्धि नहीं हो सकेगी, साध ाक बार-बार उस दोष को करेगा, भले ही वह उस दोष से परिचित हो जाये। एक घटना से इसे समझें -

एक गुरु और शिष्य किसी मार्ग से गुजर रहे थे, रास्तें में एक स्थान पर शिष्य ने देखा कि कुम्हार घड़े बना रहा है, तत्काल के बने घड़ों को उसने धूप में सुखाने के लिये रखे हुए थे। शिष्य को शैतानी सूझी, उसने एक कंकर लिया और एक घड़े को निशाना बनाकर जोर से दे मारा। घड़ा कच्चा था, अतः टूट गया। कुम्हार ने शिष्य की यह हरकत देखी, तो मीठे शब्दों में उसे समझाया, कि "आप साधु हैं आपको ऐसा नहीं करना चाहिये।" कुम्हार के समझाने पर शिष्य ने गुरु द्वारा रटाया हुआ शब्द 'मिच्छामि दुक्कड़ं' कहकर अपनी गलती स्वीकार की। कुम्हार संतुष्ट हो गया।

दूसरे दिन गुरु और शिष्य पुनः उसी रास्ते से निकले। नये-नये घड़ों को देखकर पुनः उससे नहीं रहा गया और कंकर उठाकर एक घड़े पर फैंक ही दिया। घड़ा फूट गया। कुम्हार को आज थोड़ा रोष पैदा हुआ, उसने शिष्य को डाँटकर कहा - "कल आपने मेरे सामने इस गलती को नहीं करने की प्रतिज्ञा की थी, आज

फिर वही गलती कर बैठे ?" शिष्य ने कहा -"मिच्छामि दुक्कड़ं" कुम्हार ने उसे जाने दिया, वह आगे जाकर गुरु से मिल गया।

तीसरे दिन पुनः वे उसी रास्ते से गुजरे और पुनः उसने घड़ों को देखकर ज्योंहि कंकर उठाया, कि कुम्हार ने देख लिया, उसने मन में सोचा, इसे किसी और तरह से शिक्षा देनी पड़ेगी, सीधे तरीके से यह मानने वाला नहीं है। उसने दौड़कर शिष्य को पकड़ा और जोर से उसका कान मरोड़ा, शिष्य दर्द के मारे जोर से चीखा, तो कुम्हार ने कहा -"मिच्छामि दुक्कड़ं" और यह कहते हुए दुबारा उसका कान पकड़कर और जोर से मरोड़ा, तो शिष्य ने गुस्से से कहा -

'यह क्या तुम अपनी गलती भी मान रहे हो और मेरा कान भी मरोड़े जा रहे हो ?'

कुम्हार ने कहा - 'मिच्छामि दुक्कड़ं' और पुनः उसका कान पकड़ा। इस बार तो शिष्य से रहा ही नहीं गया, वह समझ गया कि मुझे किस बात का दंड दिया जा रहा है, अतः तुरंत कुम्हार के पैरों पर गिर पड़ा और आँखो में आँसू भरकर बोला -"कुम्हार भाई! अब मुझे छोड़ दो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि भविष्य में ऐसी गलती कभी नहीं करूँगा।"

कुम्हार ने देखा अब शिष्य सही मार्ग पर आ गया है, वह अपनी गलती को अन्तर्मन से स्वीकार कर रहा है, उसने उसे छोड़ दिया। इस घटना के बाद शिष्य का जीवन परिवर्तित हो गया उसकी बाल-सुलभ चंचलता सदा के लिये चली गई।

इससे पूर्व भी शिष्य ने अपने दोषों को देखा तो था, तभी 'मिच्छामि दुक्कड़ं' कहा, किंतु कौन सा ऐसा कारण रह गया, कि वह 'मिच्छामि दुक्कड़ं' देकर भी वही गलती कर बैठा ? यहाँ यह मानना पड़ेगा, कि उसने गलती को देखा तो था, किंतु उसकी भलाई-बुराई पर विवेक बुद्धि से विचार नहीं किया था, इसी कारण वह पुनः पुनः गलती को दोहराता चला गया। जब सच्चे दिल से बुराई को बुराई के रूप में जाना तो गुरु की साक्षी से उसकी निंदा करके और पुनः वैसी गलती नहीं करने की प्रतिज्ञा करके वह उस दोष से युक्त हो गया।

जब प्रतीकूलता आएं तो ढाल की भाँति खुद को वहाँ रखें, और मान-प्रतिष्ठा आदि का प्रश्न हो तो वहाँ औरो को खड़ा करें। क्योंकि पुण्य बाँटे बिना कोई भी धर्माभिमुख नहीं हो सकता।

गर्हा का महत्त्व

आत्म-निंदा करने के बाद भी 'गर्हा' करना आवश्यक है। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो मन से तो पाप की निंदा कर लेते हैं पर वचन से दूसरों के समक्ष अपनी गलती स्वीकार नहीं करते। इसके विपरीत बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं, जो दूसरों के समक्ष वचन से अपनी गलती स्वीकार कर लेते हैं, किंतु मन से नहीं करते।

निंदा के ये दोनों ही प्रकार अपने आपमें अधूरे हैं। पूर्ण आत्म-विशुद्धि तभी होती हैं, जब मन से भी निंदा की जाये और वचन से भी। अर्थात् निंदा और गर्हा दोनों हों।

प्रश्न हो सकता है, कि जब हमने मन से निंदा कर ली तो वचन से किसी के सामने अपनी निंदा करने का क्या मतलब ? क्योंकि शुद्धि तो मन से होनी चाहिये -

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"

मन ही मनुष्यों की बंधन व मुक्ति में कारण है।

इसका समाधन यह है, कि पूर्ण आत्म-शुद्धि के लिये मन, वचन और काया तीनों का योग होना जरूरी है। यह ठीक है, कि आपने अपने दोषों की अन्तर्मन से शुद्धि कर ली, किंतु जब तक गुरु साक्षी से गलती स्वीकार नहीं की जाती तब तक मानना चाहिये कि आपका मन सरल नहीं बना है। 'दूसरा कोई न जान ले' यह भय जब मन पर छाया रहता है, तभी व्यक्ति दूसरों के समक्ष अपनी गलती स्वीकार करने से कतराता है। ओर इसी भय के कारण आत्मा निःशल्य नहीं बन सकता। निःशल्य बने बिना आत्म-कल्याण हो नहीं सकता।

जैसे मन से पाप की निंदा कर लेने पर भी वचन से पाप की निंदा करना आत्म-विशुद्धि के लिये आवश्यक है, उसी प्रकार वचन से पाप की निंदा करके मन से निंदा न की जाये, अर्थात् पाप के प्रति मन में ग्लानि पैदा न हो और मन में पश्चाताप की भावना पैदा न हो तो, वचन निंदा को कोई महत्त्व नहीं है, वह तो मात्र एक प्रवंचना है। आत्मशुद्धि के लिये आवश्यक है, कि आप मन और वचन दोनों से पाप की निंदा करे।

कर्म से भी आत्मा की शक्ति अनंतगुणा अधिक है।

दुर्गंच्छा से पूर्ण आत्म-विशुद्धि

गुरु की साक्षी में दुर्गुणों की निंदा करने के बाद उसके प्रति घृणा का भाव पैदा करना 'दुर्गंच्छा' है। दुर्गुण के प्रति अरुचि होगी, तो दुर्गुण स्वतः छूट जायेगा। हमारी आत्मा उसी ओर उन्मुख होती है, जिसके प्रति उसकी रुचि या प्रीति होती है। सद्गुरु का सान्निध्य एवं सत्पुरुषों के हितकारी हजारों वचन भी उसे तब तक सही मार्ग की ओर नहीं चला सकते जब तक उसकी स्वतः रुचि न जागृत हो जाये, अथवा दुर्गुणों के प्रति स्वतः अरुचि न उत्पन्न हो जाये। पाप की जड़ को समाप्त करने वाला अन्तिम और अचूक साधन है- दुर्गंच्छा। इस साधन से प्रेरित हुआ व्यक्ति गुरु के समक्ष पापों का त्याग करने के लिये कटिबद्ध हो जाता है, जीवन में पाप पुनः प्रविष्ट न हो जाये, अतः गुरु की साक्षी में पाप की निंदा करता हुआ पाप का प्रायश्चित् स्वीकार करता हुआ पाप से उपरत होने के लिये प्रतिज्ञा ग्रहण करना आवश्यक है।

प्रस्तुत पाठ को आलोचना-पाठ नाम दिया है, यह आत्म-शुद्धि का प्रवेश द्वार है, पाप रूपी चोर को देखने वाली आँख है, आत्म-कल्याण का प्रमाण पत्र है। मुक्ति का आधार स्तम्भ है। आत्मा रूपी वस्त्र को धोने वाला साबुन है। इसके द्वारा प्रत्येक साधक अपनी आत्म-विशुद्धि करे, इसी भावना के साथ।

खुदा-खुद + आ। जब तुममें ईश्वर को समझने की तड़पन होती है, तो वह तुम्हारे सामने खुद प्रगट होता है।

भक्ति की रीति : नीति



भक्ति में विभक्ति नहीं

आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये भक्त साधक भगवान का आदर्श अपने सन्मुख रखकर स्तुति करता हुआ कहता

"लोगस्स उज्जोयगरे धम्मतित्थयरे जिणे
अरिहंते कित्तइस्सं चउवीसंपि केवली॥"

अर्थात् संपूर्ण लोग में धर्म का उद्योत करने वाले, धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले, राग-द्वेष के विजेता, अरिहंत, केवलज्ञानी चौबीस तीर्थकरों की मैं स्तुति करूँगा/करूँगी।

हृदय में वीतराग भगवान को प्रतिष्ठापित करने से अपूर्व समाधिभाव प्राप्त होता है, आत्मा की सूक्ष्म मलिनता दूर होकर शुद्ध एवं निर्मल बनती है। आत्मा परमात्मभाव में लीन हो जाता है, जब यह तन्मयता, लीनता संपूर्ण आत्म-प्रदेशों में व्याप्त हो जाती है, और आत्मा का कण-कण भक्ति-रस से आप्लावित हो जाता है, तो पाप का घना कोहरा छँट जाता है, आत्मा पवित्र एवं निर्मल होकर सूर्य के समान चमक उठती है।

उक्त पाठ में वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थकरों में एक-एक का नाम-स्मरण करते हुए स्तुति की गई है। भक्त हृदय यह स्वीकार करता है, कि चौबीस तीर्थकर प्रभु विश्व में केवलज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले हैं, संसार में घनीभूत अज्ञान के अंधकार को नष्ट कर सन्मार्ग का पथ आलोकित करते हैं। संसार की मोह माया रूपी नदी को आसानी से जिस और से तैरकर पार किया जाये ऐसे सुविध ाजनक घाट को बनाने वाले ये तीर्थकर प्रभु ही हैं। राग और द्वेष को जीने के कारण ये 'जिन' बने हैं। काम, क्रोध, लोभ आदि अन्तरंग शत्रुओं को जड़-मूल से नष्ट कर देने के कारण ये 'अरिहंत' बने हैं, अथवा स्वर्ग के इन्द्र भी जिनके चरणों की रज मस्तक पर चढ़ाकर स्वयं को धन्य-धन्य समझते हैं, अतः वे अर्हन्त अर्थात्

रेल का डिब्बा ही जनाना-मर्दाना है, टिकिट नहीं, शरीर ही जनाना-मर्दाना है, आत्मा नहीं

त्रिलोकपूज्य हैं। अथवा जिनसे विश्व का कोई रहस्य छिपा हुआ नहीं है, अनंतानंत जड़ चैतन्य पदार्थों को हस्तामलकवत् जानने के कारण जिन्हें 'अरहंत' भी कहते हैं। कर्म बीज को नष्ट कर देने के कारण 'अरुहंत' हैं, ऐसे प्रभु, अरिहंत बनने के बाद केवलज्ञानी बने हैं, क्योंकि अरिहंत बने बिना कोई केवली नहीं बन सकता। साधना का यह क्रम है, कि कर्म-विकारों को दूर करने के बाद ही सर्वज्ञत्व एवं सर्वदर्शीत्व की प्राप्ति होती है, अतः जो अरिहंत बनने के पश्चात् सर्वज्ञ, केवली बने हैं वे चौबीस ही तीर्थंकर प्रभु मेरे उपास्य देव हैं, मैं उन्हीं की स्तुति में तल्लीन बनूँगा।

भारत की चिन्तनधारा में अध्यात्म-साधना के लिये तीन मार्ग बताये गये हैं - भक्ति, कर्म और ज्ञान। वैदिक धर्म में कुछ सम्प्रदायें भक्ति को महत्त्व देती हैं, उनके अनुसार केवल भगवान का नाम लो, और कुछ नहीं करो, तो भी बेड़ा पार हो जायेगा। कहा भी है -

"कलियुग केवल नाम आधारा।
सुमरि-सुमरि उतरहिं भव पारा॥"

'राम' नाम तोते को पढ़ाने से वेश्या का उद्धार हो गया। अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लेने से अजामिल का उद्धार हो गया था।

कुछ सम्प्रदायें ज्ञान की पूजा करती हुई कहती हैं, कि संसार में ज्ञान से बढ़कर अन्य कोई पवित्र वस्तु नहीं है -

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"

और कुछ संप्रदायें ऐसी हैं, जो कर्मकाण्ड को ही महत्त्व देती हैं, भक्ति और ज्ञान को नहीं। इनकी दृष्टि में यज्ञ करना, विविध तपो-कर्म करना, हवन इत्यादि करना और शरीर को तपाना, जितना शरीर को कष्ट दे सकते हैं उतना देना प्रमुख है। इस मार्ग में न दिल की पूछ है न दिमाग की। केवल पैरों की मुख्यता है। बस, चलते चलो, साधना-पथ पर बढ़ते चलो, एक दिन सिद्ध बन जाओगे।

जैन धर्म समन्वयवादी है वह भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों के समन्वय से साधना की गाड़ी चलाने का उपदेश देता हैं। उसका कहना है, कि भक्ति से हृदय

को कोमल बनाओ, ज्ञान से मस्तिष्क को निर्मल बनाओ और कर्म से सत्यमार्ग पर कदम बढ़ाओ। इन तीनों का यथायोग्य उचित मात्रा में समन्वय करके ही साधना साध्य तक पहुँचती है। भक्ति, ज्ञान और कर्म को ही जैन दर्शन ने 'सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक्चारित्र' कहा है।

"सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः"

यद्यपि अपने-अपने स्थान पर तीनो ही प्रधान हैं, तथापि मोक्षमार्ग में 'सम्यक्दर्शन' का सर्वप्रथम स्थान है। क्योंकि सम्यग्दर्शन होने के बाद ही ज्ञान और चारित्र सम्यक् बनते हैं। सम्यक्दर्शन की शक्ति अनंत है। एक क्षण मात्र का सम्यक् दर्शन अनंत-अनंत जन्म-मरण की परम्परा को नष्ट कर देता है।

सम्यक्दर्शन और चतुर्विंशतिस्तव का परस्पर कार्यकारणभाव सबंध है। चतुर्विंशतिस्तव कारण है, सम्यक्दर्शन कार्य है। स्तुति की निर्मल गंगा से मिथ्यात्व की गंदगी धुल जाती है। आत्मा स्वच्छ और पवित्र बन जाती है। उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर से पूछा गया -

"चउवीसत्थएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?"

प्रभु महावीर ने फरमाया -

"चउवीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ"

अर्थात् चौबीस तीर्थकरों की स्तुति से दर्शन की विशुद्धि होती है। सम्यक् दर्शन की ज्योति अधिकाधिक प्रकाशित हो उठती है।

प्रश्न होता है स्तुति का सम्यक्दर्शन से क्या संबध है ? स्तुति में परमात्मा के नाम का स्मरण है और सम्यक्दर्शन आत्मा का विशुद्धि का नाम है, दोनो का आधार भिन्न - भिन्न है। समाधान यह है, कि आधार भिन्न होने पर भी दिशा भिन्न नहीं है। भक्त और भगवान में क्षेत्रीय दूरी है, उस दूरी को कम करने में भगवान की स्तुति पुल का काम करती है। जैसे नदी पर बना हुआ पुल यात्री को एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचा देता है, इसी प्रकार भगवान की स्तुति भक्त को भगवान तक पहुँचा देती है।

संसार में वेदना का अनुभव होने पर चेतना जागती है। जागृत मन का अंदर जाना ही मन्दिर है।

जैसे आज कोसों दूर बैठे दो प्रेमी हृदयों को मिलाने में टेलिफोन का तार सहायक है, उसी प्रकार भक्त को भगवान से मिलाने में भक्ति सहायक है।

स्तुति कहें या भक्ति दोनों का संबध हृदय से है, अतः वह श्रद्धारूप है, विश्वास रूप है, भावना रूप है। जब साधक के हृदय में श्रद्धा का अति आवेग हो जाता है, तो मुख से स्तुति का निर्झर बह निकलता है, वह अपने उपास्य के श्रीचरणों में सर्वात्मना समर्पित हो जाता है। भक्त के मन का तार भगवान के साथ जुड़ जाता है, तब भक्त और भगवान की दूरी समाप्त हो जाती है। और जब स्वयं में परमात्मा के दर्शन कर लेता है, तो सम्यक् दर्शन हो जाता है। आत्मा में परमात्मा को खोज लेना ही 'सम्यक् दर्शन' है।

कई लोग कहते हैं, कि नाम लेने से क्या होता है ? उन्हें यह विचारना चाहिये कि नाम नहीं तो कुछ भी नहीं। दुनिया की हर वस्तु नाम से ही तो महत्व प्राप्त करती है। नाम से ही तो व्यक्ति का अस्तित्व समझ में आता है। क्या न्यायालय, क्या दवाखाना, क्या कोर्ट, क्या व्यापार सर्वत्र नाम की ही तो पूछ है। नाम नहीं तो कुछ भी नहीं।

भगवान के नाम में तो असीम शक्ति है, अपार बल है, जो चाहे वह पा सकते हैं। आवश्यकता है, केवल श्रद्धा की। श्रद्धा है तो सब कुछ मिल जाएगा और श्रद्धा नहीं तो कुछ भी नहीं मिलेगा।

एक कहानी है। विद्वानों की सभा जुड़ी थी। एक विद्वान मुट्ठी बंदकर उपस्थित हुए। एक ने पूछा - "आपकी मुट्ठी में क्या है ? उसने जवाब दिया - हाथी। दूसरे ने पूछा तो उत्तर मिला - घोड़ा। तीसरे ने पूछा, तो जवाब मिला - गाय। इसी प्रकार उसने किसी को सिंह, किसी को समुद्र, किसी को हिमालय तो किसी को चाँद-सूर्य बताकर सभी को आश्चर्य में डाल दिया। सब कहने लगे - 'यह सब झूठ है। कोरी बकवास है। भला मुट्ठी में भी कभी ये चीजें आ सकती हैं ?"

सबने उससे मुट्ठी खोलने का आग्रह किया। विद्वान ने मुट्ठी खोली तो रंग की एक नन्ही टिकिया उसकी हथेली पर रक्खी थी। उसने सबकी जिज्ञासा को शांत करते हुए कहा -

"मैं अभी तुम्हें वे सब वस्तुएँ बता देता हूँ, जो मैंने कही थी।"

भक्ति की धारा लेखनी से नहीं, हृदय से बहती है।

उसने पानी मँगाया। टिकिया को उसमें डुबाया। एक कागज लिया, तूलिका ली और जो कुछ कहा था, वह सब कागज पर बना दिया। कागज पर सुंदर चित्र के रूप में सबको वे वस्तुएँ मिल गई।

बंधुओ ! भगवान के नाम में भी यही बात है। आप जो चाहें वह भगवान के नाम से प्राप्त कर सकते हैं, पर उसके लिये चाहिये - श्रद्धा का पानी, ज्ञान का कागज और चारित्र का तूलिका। भगवान के नाम में श्रद्धा का जल डालिये। ज्ञान का कागज लीजिये उस पर चारित्र की तूलिका से आप जो पाना चाहेंगे वही मिल जायेगा। जैसे सूखी टिकिया से चित्र नहीं बन सकते, उसी प्रकार श्रद्धा के बिना शुष्क नाम से कुछ नहीं पाया जा सकता।

भगवान का स्मरण हृदय को पवित्र बनाता है। विषय-कषाय से भट्ठी की तरह तप रही आत्मा को अखंड शांति दिलाने वाला भगवान का नाम ही तो है। तेज बुखार हो, शरीर के कण-कण से आग भभक रही हो, ऐसे में कोई ठंडी पट्टी सिर पर बांध दे तो कितनी शांति प्राप्त होती है, इसी प्रकार संसार की दावाग्नि से संतप्त प्राणी को भगवान का नाम ही सहारा है।

जैसे पक्षी का आधार आकाश है, भले ही वह आकाश का पार नहीं पा सके तब भी भयभीत पक्षी आकाश में विचरण करता हुआ आनंद का अनुभव करता है इसी प्रकार भक्त का आधार भगवान है। संसार में त्रस्त, पीड़ित व दुःखी बना हुआ भक्त प्रभु की शरण में असीम सुख को प्राप्त करता है। जैसे पक्षी दाना चुगने के लिये कुछ देर धरती पर लगाकर पुनः आकाश में उड़ जाता है, उसी प्रकार भक्त भी अपना एवं परिवार का पालन-पोषण करने के लिये कुछ समय संसार में लगाकर पुनः प्रभु के चरणों में लौट आता है।

जैसे देहली पर रखा हुआ दीपक अंदर और बाहर दोनों ओर प्रकाश करता है, इसी प्राकर जिह्वा से लिया गया भगवान का नाम अन्तर-बाह्य दोनों जगत को प्रकाशित करता है। अन्तर मे रहे मिथ्यात्व के अंधकार का विनाश कर सम्यक्त्व का प्रकाश फैलाता है, विषय वासना से मन को विरक्त कर सत्यमार्ग की ओर गमन करवाता है, तो बाह्य जगत में वह अहिंसात्मक ढंग से जीवन जीना सिखाता है। इस प्रकार भगवान का नाम स्व-पर प्रकाशक है।

मिटादे अपनी हस्ती को, गर तू मर्तबा चाहे।
कि दाना खाक में मिलकर, गुलो गुलजार होता है।

भगवान की स्तुति शुद्ध मन से करने पर दो महालाभ हैं -

(१) अहंकार का नाश।

(२) दीन-हीन समझने की वृत्ति का नाश।

संसार में मनुष्यों में दो वृत्तियाँ मुख्य रूप से पाई जाती हैं। कोई अहंकार के हाथी पर चढ़ा हुआ मिलेगा, तो कोई सदा अपने ऊपर किसी का प्रभुत्व देखकर दीन-हीन वृत्ति से त्रस्त मिलेगा। ये दोनों वृत्तियाँ आत्मा का पतन करने वाली हैं, अनेक दुःखों की जनक हैं। जब आत्मा भगवान की स्तुति में तन्मय होता है, तो भगवान को अपने हृदय मंदिर में आदर देता हुआ श्रद्धा से नत-मस्तक होता है। प्रभु को किया गया नमस्कार अहं का नाश कर देता है। दूसरी ओर भक्त स्वयं को भगवान बनाने का प्रयत्न करता है। आत्मा में परमात्मा बुद्धि आते ही स्वयं को दीन-हीन समझने की वृत्ति समाप्त हो जाती हैं इस प्रकार भक्त साधक न किसी के अस्तित्व में बाधक बनता है, और न स्वयं किसी से बाधित होता है। वह सर्वतंत्र स्वतंत्रता का अनुभव करता है।

प्राचीन ऋषि-महर्षियों एवं आज के मनोविज्ञान का मानना है, कि मनुष्य जैसा संकल्प करता है, वही बन जाता है -

'यो यच्छ्रद्धः स एव सः"

मानव का मन एक कैमरे के समान है, उसके समक्ष जो आकृति होगी उसी का चित्र कैमरे में आ जाएगा। गाय का नाम लेने से गाय का और सिंह का नाम लेते ही सिंह का आकार मन पर चित्रित हो जाता है। जब हम चौबीस भगवान की स्तुति करेंगे, तो उनका आकार मन ग्रहण कर लेगा। भगवान ऋषभदेव का नाम लेते ही मानव सभ्यता के आदिकाल में कर्मयोग का पाठ पढ़ाते हुए, फिर साधु जीवन में मौनव्रत अंगीकार कर घर-घर में भिक्षा हेतु घूमते हुए, और न मिलने पर उसी भाव से पुनः लौटते हुए, फिर तीर्थंकर रूप में धर्मतीर्थ की स्थापना करते हुए महापुरुष का आकार मन पर चित्रित होने लगता है।

इसी प्रकार प्रत्येक तीर्थंकर के नाम के साथ उनके जीवन के घटना प्रसंगों से युक्त भगवान का स्वरूप हमारे सामने प्रतिबिम्बित हो उठता है। भगवान का

जीवन-दर्शन हमारे समक्ष एक सबल आदर्श है, उनके जीवन से हमें एक दिशा प्राप्त होती है। प्रभु का जीवन हमारे लिये दिव्य प्रकाश स्तम्भ है, इनसें हमें प्रभूत शक्ति प्राप्त होती है। मार्ग के अवरोध दूर होकर मंजिल दिखाई देने लगती है। भगवान का नाम हमारे नैराश्यपूर्ण जीवन की अंधेरी गलियों में प्रकाश दीप बन जाता है। यदि आज पूर्ण पुरुष का आदर्श हमारे सामने न हो तो हम किसके सहारे अपनी मंजिल का निर्माण करेंगे ? उनके जीवन से ही हम अपने जीवन की तुलना करते हुए उनके अनुपम, त्याग, क्षमा वैराग्य को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते हैं। अतः भगवान की स्तुति जीवन को सरस, सुन्दर और सबल बनाने के लिये अद्वितीय साधन है।

परन्तु भगवान के स्तुति करते हुए दो बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(१) अनन्यता।

(२) निष्कामता

अनन्यता का अर्थ है अपने उपास्य के प्रति अपने भावुक हृदय की समग्र श्रद्धा अर्पित कर देना और उनके बताए मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प रखना। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति को छोड़कर अन्य किसी पर अनुरक्त नहीं होती इसी प्रकार सच्चा भक्त अपने आराध्य को छोड़ अन्य किसी पर अनुरक्त नहीं होता। वह किसी लोभ लालच में फंसकर अन्य देवी-देव की उपासना नहीं करता। पतिव्रता स्त्री को अपने पति से मिलने की जैसी गहरी तड़फ होती है उससे भी कहीं अधिक गहरी तड़फ उसे अपने उपास्य से मिलने की होती है।

दूसरी बात जो भक्ति में आवश्यक है, वह है - निष्कामता। अर्थात् स्तुति करो, पर उसके पीछे कोई लौकिक कामना न हो। कामना से प्रेरित होकर जो भक्ति की जाती है वह भक्ति नहीं है, उसे स्वार्थ कहते हैं। ऐसी भक्ति आनंददायी नहीं होती। क्योंकि ऐसा भक्त अपने मनोरथ पूर्ण होने पर तो श्रद्धालु बन जायेगा, और मनोरथ पूर्ण न हुए तो उसी के प्रति अश्रद्धा कर बैठेगा। ऐसा भक्त भगवान से प्रेम नहीं करता वरन् अपने स्वार्थ से प्रेम करता है। उसकी भक्ति में अनन्यता भी नहीं आ पाती वह आज किसी को अपना इष्टदेव स्वीकार करेगा, तो कल किसी और

सामायिक राग-द्वेष के कीटाणुओं से दो घड़ी रक्षा करने वाली मच्छरदानी का सुवर्णद्वार है।

को। भक्ति निस्वार्थ भाव से गुणों की होनी चाहिये। उपास्य के गुणों को आत्मा में उतारना की भक्त का लक्ष्य होना चाहिये। एक उदाहरण से इसे समझिये -

किसान को घास और भूसे की भी आवश्यकता रहती है, पर चतुर किसान कभी घास और भूसे के लिये खेती नहीं करता। उसका लक्ष्य धान्य प्राप्त करना ही होता है। धान्य के लिये खेती करते हुए भूसा तो आनुषंगिक रूप में उसे मिल ही जाता है। परंतु जो मूर्ख किसान भूसे के लिये खेती करेगा वह धान्य का अधिकारी नहीं बन सकता, उसे मात्र भूसे से ही संतुष्ट होना पड़ेगा। इसी प्रकार जो भक्त निष्काम भाव से भगवान की अनन्य भक्ति करता है, उसे भगवद् स्वरूप की प्राप्ति भी होती है और संसार की आवश्यकताएँ भी सहज में पूर्ण हो जाती हैं, लेकिन जो सांसरिक कामना से भक्ति करते हैं उनकी केवल सांसारिक कामनाएँ ही पूर्ण होती हैं, वह भी पुण्य का उदय हो, तो। मोक्ष रूप महाफल से वह वंचित ही रहता है। ऐसा व्यक्ति उस मूर्ख बनिये के समान है, जो चना खरीदने के लिये अपना अमूल्य रत्न बेच देता है।

भक्ति ऐसी होनी चाहिये जैसे हनुमान ने राम से की थी, उसकी भक्ति में अनन्यता भी थी और निष्कामता भी। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर सीता ने अपना हीरों का बहुमूल्य हार उतारकर हनुमान को देना चाहा, तब भी हनुमान ने उसे वापिस लौटाते हुए कहा-

"माताजी यदि इन हीरों में मेरे राम विराजमान हैं, तो यह मेरे काम का है, अन्यथा यह हार मेरे किसी काम नहीं आएगा।"

सचमुच ऐसी भक्ति का ही मूल्य होता है, जिसमें भक्त कहीं भी, किसी भी स्थिति में भगवान से विभक्त होना नहीं चाहता।

लोगस्स के पाठ में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करते हुए भक्त, भक्ति और भगवान का लोकोत्तर स्वरूप दर्शाया गया है। ऐसी भक्ति में सराबोर होकर हम अपने आत्मार्थ को पाएँ, यही शुभकामना।

✱ ◆ ✱ ◆ ✱ ◆ ✱

समत्व की साधना

सभी साधनाओं की फलश्रुति : सामायिक

सामायिक का अर्थ केवल वेष बदलना नहीं, जीवन को बदलना है, समता को हृदय में उतारना है। शास्त्रकार कहते हैं, कि साधना करते-करते अनंत जन्म बीत गये, मुखवस्त्रिका के हिमालय जितने ढेर लगा दिये, फिर भी आत्मा का कुछ भी कल्याण नहीं हुआ, क्योंकि समता के बिना समस्त साधनाएँ निष्प्राण हैं। कहा है -

"जे कि वि गया मोक्खं, जे वि य गच्छंति जे गमिस्संति।
ते सव्वे सामाइय, - पभावेण मुणेयव्वं ॥"

अर्थात् जो भी साधक अतीत काल में मोक्ष गये है, वर्तमान में जा रहे हैं, और भविष्य में जाएँगे, यह सब सामायिक का प्रभाव है। और भी कहा है -

"कि तिव्वेण तवेणं, किं च जवेण किं चरित्तेणं।
समयाइ विण मुक्खो, न हुओ कहवि नहू होइ॥"

चाहे कोई कितना भी तीव्र तप तपे, जप जपे, अथवा मुनिवेष धारण कर स्थूल क्रियाकाण्ड रूप चारित्र पाले, परन्तु समता भाव रूप सामायिक के बिना न किसी को मोक्ष हुआ है न होगा।

वस्तुतः मोक्ष प्राप्ति के लिये एकमात्र सामायिक ही साधन है, यही एक पाप रहित साधना है। इस साधना में संपूर्ण पापों का प्रत्याख्यान हो जाता है। हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, सग्रंहवृत्ति, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, निंदा, चुगली, धर्म कार्य में अरुचि, संसार के कार्यो में रुचि, मिथ्यात्व आदि सभी पाप एकमात्र विषमभाव की संतानें हैं। सामायिक विषमभाव को ध्वस्त करने वाला अमोघ अस्त्र है। जैसे प्रकाश के आते ही अंधकार भाग खड़ा होता है, उसी प्रकार समता भाव रूप सामायिक का दिव्य प्रकाश आत्मा में फैलते ही विषमभाव में पलने वाले समस्त शत्रु पलायन कर जाते हैं।

प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता बाह्य संयोगों में नहीं मन की भूमि पर निर्भरता है।

सामायिक का प्रतिज्ञा सूत्र

"करेमि भंते! सामाइयं,
सावज्जं जोगं पच्चक्खामि।"

हे भगवन्! मैं सामायिक करता हूँ, उसमें सावद्य अर्थात् पापयुक्त क्रियाओं का त्याग करता हूँ।

यह सामायिक का प्रतिज्ञा सूत्र है। अब तक जो भी विधि-विधान किया गया था, वह सब सामायिक के लिये आत्मा को तैयार करने के लिये था। आत्मा रूपी मंदिर को एकदम साफ और स्वच्छ कर लेनेके पश्चात् उसमें समता रूप सामायिक की प्रतिष्ठापना करनी है। जब आत्मा को सब ओर से शुद्ध कर लिया गया तो साम्यभाव रूप सामायिक में प्रवेश करने के लिये साधक कदम उठाता है। वह दो मुख्य प्रतिज्ञाएँ करता है -

(१) मैं समता भाव रखूँगा।

(२) पाप-युक्त क्रियाएँ नहीं करूँगा।

उक्त दो प्रतिज्ञाओं में सामायिक का संपूर्ण भाव समाविष्ट हो गया है। प्रथम में समताभाव की मुख्यता है, तो दूसरी में पाप क्रिया न करने की मुख्यता है। दोनों में आत्मविशुद्धि का लक्ष्य है। समताभाव के द्वारा साधक पुराने कर्मों की निर्जरा करता है, और पापक्रियाओं को न करने की प्रतिज्ञा से वह आस्रव का निरोध करता हैं। आस्रव-निरोध और निर्जरा ये दोनों उत्कृष्ट कोटि के हों तो साधक सामायिक काल में वीतराग भी बन सकता हैं । इस प्रकार इन दो प्रतिज्ञाओं से आत्म-स्थिति और पर-निवृत्ति का भाव परिपुष्ट होता है। इसी कारण बारह व्रतों में मोक्ष का प्रध ान अंग किसी को कहा जाये तो वह सामायिक है। जिनवाणी का सार है - सामायिक। साधु और श्रावकपने का मूल आधार है - सामायिक। जीवन में प्रतिदिन अभ्यास की दृष्टि से दो घड़ी तक यह सामायिक व्रत किया जाता है, आगे चलकर मुनि-जीवन में यह साधना यावज्जीवन के लिये धारण की जाती है। इस प्रकार यह चारित्र रूप सामायिक पाँचवे गुणस्थान से प्रारंभ होकर तेरहवें गुणस्थान में संपूर्ण होती है।

पंडित वक्ता होता है, पर ज्ञानी कर्त्ता होता है।

प्रत्येक तीर्थंकर भी दीक्षा ग्रहण करते समय सामायिक की प्रतिज्ञा लेते हैं। और जब तक सामायिक की साधना संपूर्ण नहीं होती तब तक वे मौन साधना एवं तपस्या द्वारा समभाव का अभ्यास करते है।

आत्मा ही सामायिक

सामायिक का मुख्य लक्षण है - समता। और समता का अर्थ है - आत्मा की स्थिरता, राग-द्वेष, प्रिय-अप्रिय में आत्मा की अप्रवृत्ति/मध्यस्थता।

भगवती सूत्र में कहा है - 'आत्मा ही समत्व है और समत्व ही आत्मा का साध्य है।' प्रश्न होता है, आत्मा सामायिक कैसे है ? उत्तर यह है, कि सामायिक के भाव आत्मा में ही पैदा होते हैं। आत्मा से भिन्न जड़ पदार्थ में किसी प्रकार का भाव पैदा नहीं होता। न 'सम' भाव पैदा होता है न 'विषम' भाव। सम या विषम भाव का प्रादुर्भाव आत्मा में ही होता है। जब आत्मा 'स्व' स्वरूप को भूलकर 'पर' स्वरूप की ओर गमन करती है, तब उसमें विषम भावों का सर्जन होता है, फलस्वरूप काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या आदि विकार उत्पन्न होते हैं, और जब इन विकारी भावों से आत्मा ऊपर उठती है अर्थात् समत्व भाव का आश्रय लेती है, तब क्षमा, मृदुता, विनय, निर्लोभता, सौहार्द्रता, अनासक्ति, विरक्ति आदि जो आत्मा के निज भाव हैं, वे प्रगट हो जाते हैं। जब ऐसी समत्व वृत्ति सदा के लिये स्थिर हो जाती है तो आत्मा समायिकमय बन जाती है। इसी कारण निश्चय दृष्टि से आत्मा को सामायिक कहा गया है।

एक प्रश्न इसके साथ यह भी उठ सकता है, कि आत्मा केवल मात्र भाव करती है, वे 'भाव' शुभ भी हो सकते हैं और अशुभ भी। शुभ भाव समता रूप है और अशुभ भाव विषमता रूप। ये दोनों ही भाव आत्मा के हैं, क्योंकि आत्मा में ही ये प्रगट होते हैं, फिर जैसे 'समता' रूप भाव को आत्मा कहा है, वैसे 'विषम' रूप भाव को भी आत्मा कहना चाहिये ?

इसका समाधान यह है, कि आत्मा जो सम और विषम दो प्रकार के भाव करती है उनमें समभाव आत्मा का स्वरूप है, किंतु विषम भाव आत्मा का स्वरूप

कामना जब पूरी नही होती तो क्रोध आता है,
और जब पूरी हो जाती है तो लोभ आता है।

नहीं है। वह सांयोगिक भाव है, जो कर्म के संयोग से आत्मा में पैदा होता है, ऐसे सांयोगिक भाव शाश्वत नहीं होते, वे सदा काल आत्मा में एक जैसे नहीं रहते, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भावों में आत्मा सदा काल रमण नहीं कर सकती 'सम' भाव आत्मा का अपना स्वरूप है, उसमें वह सदा काल स्थिर रह सकती है। उदाहरण के तौर पर 'पानी' को ही लें। 'पानी' स्वभाव से शीतल है, उसे शीतल बने रहने के लिये किसी सहारे के आवश्यकता नहीं है, वह सदाकाल अपनी शीतलता में वर्तमान रह सकता है। किंतु उसे गर्म करना हो तो अग्नि के संयोग की जरूरत पड़ेगी, अग्नि से अलग होने के बाद जल पुनः अपने शीतल स्वभाव में आ जाता है।

यही बात आत्मा के विषय में भी है। कर्म के संयोग से आत्मा में कषायादि विकार प्रगट हो जाते हैं, और कर्म का संयोग हटते ही आत्मा समत्व भाव में स्थिर हो जाती है। अतः मूल रूप में आत्मा सामायिकमय है, विषमभाव उसका स्वरूप नहीं है।

दूसरी बात, सामायिक कहीं बाहर से नहीं आती, किसी दुकान से खरीदी नहीं जा सकती। हम महँगी से महँगी वस्तु बाजार से पैसा देकर खरीद सकते हैं, परंतु दुनिया के किसी भी बाजार में किसी भी दुकान पर रेडीमेड सामायिक नहीं मिल सकती। सामायिक आत्मा का भाव है, जो आत्मा में ही प्रगट होता है। उसके लिये आत्मा के ऊपर रहे हुए राग-द्वेष आदि विषय-विकारों को नष्ट करना पड़ता है।

सामायिक में समता की अनिवार्यता

कई लोग यह समझते है, कि सावद्य योगों का त्याग ही सामायिक है। सामायिक आरंभ समारम्भ के त्याग का नाम है, परंतु यह सोचना एकान्त है। सावद्य योग का त्याग भी सामायिक में आवश्यक है, किंतु यह मात्र उसका निषेधात्मक पक्ष है। इस बाह्य पक्ष को साधकर भी साधनात्मक पक्ष को नहीं समझा गया तो सामायिक अधूरी है। सामायिक का आन्तरिक पक्ष है - समता। मन की एकाग्रता, निर्मलता और आत्मविशुद्धि के साथ समभाव की उपलब्धि ही सामायिक का सही उद्देश्य है।

जब जैसा तब वैसा रे। जहँ जैसा तहँ वैसा रे।

थापियां न जाई, कित्ता न होई आपों आप निरंजन सोई - नानक

सामायिक की क्रिया करते हुए , यदि समता की प्राप्ति नहीं होती, तो समझना चाहिये कि हमने मात्र एक आडम्बर किया है। बँधी-बँधाई परिपाटी का पालन किया है। सामायिक का साधक समता भाव के सागर में इतना गहरा उतर जाता है, कि उसके सामने कोई लाभ का प्रसंग उपस्थित हो या अलाभ का, सुख का प्रसंग हो या दुःख का, जीवन हो या मरण, निंदा करे या प्रशंसा वह दोनों अवस्थाओं में समान रहता है। वह यह मानता है, कि ये सब पौद्गालिक संयोग है। पुद्गल स्वतंत्र है, आत्मा स्वतंत्र है। बनना-बिगड़ना पुद्गल का धर्म है, जो अवश्यम्भावी है। पुद्गल के बनने-बिगड़ने से मेरी आत्मा का न कुछ बनता है न बिगड़ता है। आत्मा का समताभाव में निज स्वभाव में रमण करना ही आत्मा का आनंद है। और पुद्गल के स्वभाव में रमण करना ही आत्मा का बिगाड़ है। अतः सामायिक साधक सदा पर -संयोगों या वियोगों से अपने को दूर रखता है। सामायिक का सच्चा आनंद उसे प्रथम क्षण से ही उपलब्ध होने लगता है। क्योंकि सामायिक में समता का होना प्रथम शर्त है।

जैसे क्षुधा की शांति के लिये आप रसोई घर में जाते हैं, यदि रसोई घर में जाने पर भी क्षुधा शांत न हो तो समझो वह रसोई घर नहीं है। इसी प्रकार सामायिक की क्रिया में समता भाव का आनंद नहीं आए तो समझना चाहिए, कि वह सामायिक नहीं है। सामायिक में लक्ष्य बनाया जाता है, समता भाव का। अन्यथा सवा लाख सामायिक की गिनती करते चले जायें, तो भी कल्याण होने वाला नहीं है।

यद्यपि यह सत्य है, कि आत्मा अनादिकाल से पुद्गल के संयोग-वियोग को ही अपना मानती आ रही है, इसी के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख, इसके जीवन-मरण को अपना जीवन-मरण मानती आ रही है। यह मानना आज का नहीं वरन् अनंत जन्मों का है, इन अनंत जन्मों के संस्कारों को एक जनम में छोड़ देना सहज नहीं है, फिर एक सामायिक का काल तो और भी कम है।

वस्त्र पर मैल जमा है, श्वेत उज्जवल वस्त्र कोयले जैसा काला बन गया है, उसे झाड़ने मात्र से मैल दूर नहीं होता, वरन् साबुन और पानी का बार-बार उपयोग करना पड़ता है, इससे भी साफ नहीं हो तो गरम-गरम खौलते पानी में तपाना पड़ता है, तब कहीं जाकर वस्त्र साफ होता है। मकान में वर्षों से धूल, मिट्टी, जाले भरे

दान और संतोष ये दोनों दरिद्रता की जड़ को काटने वाले तेज कुल्हाड़े है।

पड़े हैं, फर्श पर चिकनाई जमी पड़ी है तो उसे एक बार की झाड़ू से साफ नहीं किया जा सकता, वरन् कई बार झाड़ू लगाना पड़ता है, पानी से धोना और पोंछना पड़ता है, उससे भी ठीक न हो तो क्षार द्रव्य से शुद्ध करना पड़ता है। इसी प्रकार अनंत जन्मों के पड़े हुए पौद्‌गलिक संस्कार आत्मा से शीघ्र दूर हो जाये, यह संभव नहीं है। और जब तक वे संस्कार क्षीण न हो तो जीवन में समता नहीं आ सकती। समता के अभाव में सामायिक का आनंद केसे आए? तो क्या हमारी सामायिक निरर्थक है?

उत्तर यह है कि अभ्यासपूर्वक की गई कोई क्रिया निरर्थक नहीं है। यदि हमारा लक्ष्य समत्वभाव का प्राप्ति का है, तो हर नन्हा से नन्हा कदम भी सार्थक है। फिर एक न एक दिन लक्ष्य पर पहुँच ही जाएँगे। व्यापार करते हुए आज अगर एक रुपये का भी लाभ हुआ है, तो कल ज्यादा भी हो जायेगा। व्यापार करते हुए हानि नहीं होनी चाहिये, यह अवश्य ध्यान में रहे।

सामायिक करते हुए मन, वचन और काया तीनों को नियंत्रण में रखना है, लेकिन जन्म-जन्म के संस्कारवश मन कदाचित् बाहर भी चला जाये, तो भी साध ाक को घबराना नहीं चाहिये। वचन और शरीर को सदा नियंत्रण में रखते हुए मन को पुनः पुनः आत्मस्वभाव में लाने की कोशिश करनी चाहिये। इसी प्रकार प्रयत्न करते हुए एक दिन मन भी वश में रहने लगेगा। वस्तुतः पाँचवा गुणस्थान तो समताभाव की प्राप्ति का एक नन्हा कदम है, आगे बढ़ते हुए साधक जब तेरहवें गुणस्थान में पहुँचता है, सामायिक की पूर्णता तभी होती है।

निश्चय में समता की अन्तरंग साधना ही सामायिक है, अर्थात् बाह्य विषय-भोगों से चंचलता हटाकर आत्मस्वरूप में स्थित होना, लीन होना सामायिक है। सामायिक के लिये भूमिका स्वरूप चार प्रकार की शुद्धि आवश्यक है -

(१) द्रव्य-शुद्धि - सामायिक के उपकरण माला, पूँजनी, आसन, मुँहपत्ती आदि शुद्ध हो, मर्यादित हो, विकार उत्पन्न कराने वाले न हों, जो संयम की अभिवृद्धि में सहायक हो, और जिनके द्वारा भलीभाँति यतना हो सकती है। वस्त्र सादे हों स्वच्छ हों, ऐसे हों जिससे न किसी को घृणा पैदा हो न रागभाव पैदा हो और न ही धर्म के प्रति अश्रद्धा पैदा हो।

महापुरुष अपने दुख से दुखी नही होते पर - दुख से द्रवित होते हैं।

(२) **क्षेत्र शुद्धि** - क्षेत्र का अर्थ है - सामायिक का स्थान। स्थान की शुद्धि से अभिप्राय है, कि जिस स्थान पर बैठने से मन संसार की ओर न दौड़ता हो, आवागमन कम हो, क्लेशकारक, घृणा को उत्पन्न कराने वाला, कोलाहल संकुल स्थान न हो, निर्वद्य हो। जहाँ तक हो सके घर की अपेक्षा स्थानक सामायिक करने का उपयुक्त स्थान है। आप एक सामायिक घर में करें, दूसरी उपाश्रय में। आपको पता लगेगा, कि घर की अपेक्षा स्थानक की सामायिक ज्यादा अनुकूल है। घर में कहीं रेडियो की आवाज आएगी तो कहीं टी.वी. चल रही होगी, उस ओर ध्यान जायेगा। कभी फोन की घंटी सुनाई देगी, तो कभी किसी के आने के समाचार। इन सबसे सामायिक में चित्त चंचल हो उठेगा, मन उधर ही लगा रहेगा। उपाश्रय में सांसारिक गड़बड़ कम होती है। लेकिन आजकल उपाश्रय की सामायिक में भी किसी का साथ चाहिये। यदि वह साथ स्वाध्याय, ध्यान आदि में सहयोग कारक हो, तब तो ठीक, अन्यथा सामायिक में भी निंदा-विकथा, तेरा-मेरा या अन्य संसार की बातें हों तो ऐसी सामायिक से कोई लाभ मिलने वाला नहीं है।

यहाँ शास्त्रकार का क्षेत्र से अभिप्राय शांत, एकांत, निर्वद्य स्थान से है, फिर वह कहीं भी मिले।

(३) **काल शुद्धि** - काल का अर्थ है - समय। सामायिक योग्य समय देखकर करनी चाहिये, जिस समय कोई विघ्न न आता हो। ब्रह्ममुहूर्त सामायिक के लिये सबसे अच्छा समय माना गया है। इस समय सांसारिक कार्य भी नहीं होता, प्रातः का समय स्फुर्तिदायक, एकांत शांत मिल जाता है, मन में विकल्पों की श्रृंखला भी नहीं चलती, अतः प्रातः का समय ध्यान, चिंतन स्वाध्याय हेतु अत्युत्तम है।

(४) **भाव शुद्धि** - भाव से अभिप्राय है - मन, वचन और शरीर की शुद्धि अर्थात् एकाग्रता। अपने को इतना व्यस्त रखें कि मन बाहर जा ही न सके। मान लो, 48 मिनट की सामायिक है, तो उसे चार भागों में विभाजित कर लें। एक भाग में जाप, एक भाग में प्रार्थना, एक भाग में स्वाध्याय और एक भाग नवीन ज्ञानार्जन में। इस प्रकार यथावस्थित तरीके से सामायिक करने से मन सामायिक में रमा रहेगा। इधर-उधर भटकेगा नहीं। यदि आप प्रवचन सुन रहे हैं, तो वक्ता की ओर दृष्टि रखकर एकाग्रता पूर्वक प्रवचन सुनिये।

गुरु 'पारधी' नहीं 'पारखी' होता है।

इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धिपूर्वक की गई सामायिक पूर्ण फलदायी होती है। सामायिक कितनी की, इसका हिसाब रखने की अपेक्षा यह हिसाब रखें कि मैंने सामायिक केसी की ? सच्ची सामायिक उस पूणिया श्रावक की तरह होती है, जिसकी एक सामायिक का मूल्य सम्राट श्रेणिक अपना पूरा राज्य प्रदान कर देने पर भी खरीद नहीं सके। सामायिक का महत्त्व इसमें है, कि आपको सामायिक करता देखकर अन्य पाँच साधक और तैयार हो जाये। जो भी आपको सामायिक करता देखे उसके मन में आपके प्रति और आपकी धर्मक्रिया के प्रति श्रद्धा से सिर झुक जाये। ऐसी सामायिक जो भी करेंगे, उन्हें परम कल्याण की प्राप्ति होगी।

विचार-वीथी

मनुष्य जहाँ रहता है और जिनके बीच रहता है वहाँ विचारों का, व्यव्हारों का, इच्छाओं का, संस्कारों का वैविध्य होता है। इस वैविध्य में एकत्व खोज लेना और जी लेना सहिष्णुता की साधना है।

बहुत कठिन है अपने प्रति प्रतिकूलता सहना। निमित्तों की दुनिया में पता नहीं कौन सा क्षण छू जाए और हम स्वभाव से विभाव में चले जाएँ। असंतुलित हो जाएं। संतुलन सहिष्णुता माँगता है और सहिष्णुता के लिए धैर्य की जरूरत है।

अध्यात्म-कण

- महासती कौशल्या देवी जी

अन्तर्मन की क्षुधा एवं तृष्णा को शान्त
करने की सीमातीत अवधि से सम्पन्न है।
ये अध्यात्म-कण
संसार की समस्त ऋद्धि, सिद्धि एवं समृद्धि
जिसके समक्ष नगण्य है, ऐसे अदभुत हैं
ये अध्यात्म-कण।
इस असार-संसार में सारवान तथा
समस्त मणि-रत्नों से अधिक मूल्यवान हैं
ये अध्यात्म कण

-साध्वी विजय श्री 'आर्या'

अध्यात्म-कण

उनको मेरा नमस्कार

जिन महापुरुषों के सत्संग से मेरे जीवन की दिशा बदली, आज भी जो मेरे जीवन की दिशा और दशा को बदलने में कारणभूत हो रहे हैं, मेरे लिये जो निमित्त और प्रेरक बन रहे हैं, उनको मेरा अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार है।

+

आत्मा स्वयं में पूर्ण है

अय आत्मा ! तूँ अपनी समृद्धि से पूर्ण समृद्ध है। तेरा सर्वस्व तेरे पास है। तेरे से बाहर तेरा कुछ नहीं, जिसे तूँ पाना चाहता है। तूँ पूर्ण है, नर-पशु-नरक-तिर्यञ्च तेरा रूप नहीं। तूँ अखण्ड प्रमाण रूप सदा पूर्ण है। अय आत्मा! तूँ स्वयं शंकर होकर सुख पाने के लिये छटपटाती है। बड़े खेद की बात है, कि महासमुद्र पानी के लिये फर्याद करे, स्वयं अमृत-पिण्ड जहर से भयभीत होता फिरे, तथा अमृत के लिये भागता फिरे।

+

आत्मा की शून्यता ही पूर्णता है

लोग भरे को पूर्ण और खाली को शून्य कहते हैं, लेकिन आत्मा जब कर्मों से शून्य हो जाती है, तभी पूर्ण कही जाती है।

+

प्रभु और गुरु

पावर हाउस न हो तो भी लाईट नहीं जल सकती, और लट्टू न हो तो भी लाईट नहीं जल सकती। जैसे प्रकाश को पाने के लिये पावर हाउस

सत्पुरुषों के व्यवहार एवं वर्ताव से धर्म का अंकन किया जा सकता है।

एवं लट्टू दोनों की समान आवश्यकता है, इसी प्रकार मोक्ष को प्राप्त करने के लिये पावर हाउस की तरह प्रभु और लट्टू के समान गुरु, दोनों की जरूरत है। दोनों ही हमारे उपकारी हैं। प्रत्यक्ष में सद्गुरु का उपकार है, और परोक्ष में जिन एवं जिनवाणी का।

स्वधर्म और परधर्म

जो सुख इन्द्रियों के पराधीन है वह परधर्म है। जो सुख आत्मा के स्वाधीन है वह स्वधर्म है। इन्द्रियाधीन सुख, दुख का दाता भी बन सकता है। खीर में यदि मीठे के स्थान पर नमक पड़ जाये तो क्या वह सुखदायी होगा ? पुत्र की प्राप्ति सुख का कारण समझी जाती है। परन्तु यदि पुत्र कुपुत्र हो, कुल को कलंक लगाने वाला हो तो उससे ज्यादा दुखी कौन होगा ? अतः आत्मा का ज्ञान, दर्शन, चारित्र आत्मा का स्वधर्म है। आत्मा के अतिरिक्त जितने भी परपदार्थ हैं जिनसे संसार की प्राप्ति होती है वे सब विभाव धर्म है। अतः मुमुक्षुओं! मोक्ष की प्राप्ति में, आत्मधर्म को समझने में और परमात्म दशा को प्राप्त करने में पुरुषार्थ करो। यही स्वभाव धर्म है।

प्रभु को सुंदर उपहार

आप घर पर आये मेहमानों को अच्छी से अच्छी चीज भोजन में परोसते हैं। बेटी-जवाँई को बहुमूल्य वस्त्रालंकार देते हैं। राजा, दीवान, प्रतिष्ठा प्राप्त लोगों एवँ नेताओं को बढ़िया से बढ़िया उपहार देते हैं, तो फिर भगवान को विकृत विचारों की पौद्गलिक सुख दुःखों के विलाप की भेंट क्यों दी जाती है ? यदि भगवान को उपहार देना है तो पवित्र आचरण की भेंट दो।

वही भाग्यशाली है, जो दुर्भाग्यशाली पर दया करता है। - श्रीमद्

तीन प्रकार के पुरुष

१. निष्काम भावना से कर्म करने वाले।

२. कर्म करने के पश्चात् फल की कामना करने वाले।

३. बिना कर्म के फल की इच्छा रखने वाले।

बिना कर्म के फल की इच्छा रखना मूढ़ता है, अभिशाप है, पागलपन है।

दुष्ट, दुराग्रही व मूढ़

दुष्ट, दुराग्रही व मूढ़ तीन प्रकार के व्यक्ति को समझाना व्यर्थ है।

दुष्ट व्यक्ति गुण में भी दोष का दर्शन करेगा। दुराग्रही दोषों को समझकर भी दोषों को छोड़ेगा नहीं। मूढ़ दोष को दोष रूप में समझेगा ही नहीं, वह हिताहित के विवेक से रहित होता है।

दुष्ट अमृत को जहर के रूप में परिणत कर देता है। दुराग्रही जहर को जहर समझकर भी उसे चिपका रहता है। मूढ़ जहर को जहर समझता ही नहीं।

धर्म के तीन अर्थ

धर्म के तीन अर्थ है :-

१. स्वभाव - चेतन - अचेतन सभी पदार्थों का अपना-अपना धर्म।

२. स्वभाव की अनुभूति के साधन - जप, तप, ध्यान, भक्ति आदि।

३. कर्तव्य - जिम्मेदारी, फर्ज।

अनंतबार देह के लिये आत्मा का उपयोग किया, अब एक बार देह का आत्मा के लिये उपयोग कर । - श्रीमद्

तीन प्रकार के साधक

१. लाख के गोले के समान।

२. लकड़ी के गोले के समान।

३. मिट्टी के गोले के समान।

लाख का गोला अग्नि में डालने पर पिघल जाता है। लकड़ी का गोला राख बन जाता है, मिट्टी का गोला आग में गिरने पर और भी पक्का हो जाता है। इसी प्रकार साधक की तीन स्थितियाँ हैं। कोई परिषहों की आँच में पिघलकर अपना स्वत्व खो देता है, और कोई साधना की पावक में पक्का होकर लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

वीतराग की उपासना के चार क्रम

१. परमात्मा के स्वरूप का अस्तित्व

२. उनके शुद्ध चैतन्य स्वरूप का भान।

३. उस स्वरूप के प्रति आस्था।

४. अपने हृदय में उनका ध्यान हो जाना।

उपासना के लिये पवित्र शुद्ध निर्मल हृदय चाहिये तभी दृष्टि अन्तर्मुख हो सकती है। और आत्मा-परमात्मा के दर्शन संभव है।

परमात्मा को त्रियोग से वन्दामि (करबद्ध होकर झुकना तथा गुणोत्कीर्तन करना) नमंसामि - नमस्कार बहुमान - अर्पणता शरणता, सक्कारेमि - सम्माणेमि-सत्कार सम्मान करना, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं - कल्याण - मंगल - देवरूप तथा ज्ञानस्वरूप मानना - फिर पर्युपासना करना यही उपासना परमात्मा से जोड़ती है।

स्वच्छंदता - प्रतिबंधता, दासता -दीनता - हीनता - पराधीनता - इन्द्रियों व मन की चंचलता रूप अनेकविध वृत्तियों/इच्छाओं पर नियंत्रण, वचन, संयम, काय संयम हो, तभी उपासना संभव है। कहा भी है -

"आसं च छिंदं च विगिंच धीरे"- धीर साधक को आशा स्वच्छंदता का परित्याग करना चाहिए।

ज्ञानी स्वाद के त्याग को आहार का त्याग कहते है। - श्रीमद्

चार का शरण

अर्हत् सचमुच शरण है, अपनी आत्मा की अर्हताओं को, योग्यताओं को पहचानने वाला ही अर्हत् की शरण पा सकता है।

अपने अस्तित्व की सारी शक्तियों को उजागर करना, अभिव्यक्त करना और सिद्धि के स्तर तक पहुँच जाना ही सिद्ध की शरण को प्राप्त करना है।

साधना की शरण में जाना ही साधु की शरण है, और आत्मा की शक्तियों का प्रगट होना ही धर्म की शरण है। अर्हत्, सिद्ध, साधु और धर्म - ये हमारे अस्तित्व के ही अंग हैं। इनकी शरण अपनी ही शरण है।

शरण - अशरण

ज्ञान में परिणत आत्मा स्वयं के लिये शरण रूप है। और कषाय में परिणत आत्मा स्वयं के लिये अशरण है।

क्षमा सेवन के पाँच कारण

"उपकारापकारौ च, विपाकं वचनं तथा।
कुरुष्व धर्ममालम्ब्य, क्षमा पंचावलम्बनम्॥"

१. इसने मेरा उपकार किया है, अतः इस पर मुझे क्रोध नहीं करना चाहिये।

२. क्रोध करने से मेरी आत्मा का अपकार होता है, अतः मुझे क्षमा धारण करनी चाहिये।

३. क्रोध का परिणाम दुःखद होता है।

४. महापुरुषों का कहना है, कि क्रोध मत करो।

५. क्षमा मेरा धर्म है, स्वभाव है, इसे नहीं छोड़ना है, इसलिये क्षमा रखनी चाहिये।

पुण्य वह है जो चित्त को पुनीत करे।

इन पाँच कारणों में से किसी भी एक या अधिक कारण का विचार करते हुए क्रोध का त्याग करना चाहिये और क्षमा का अवलम्ब होना चाहिये।

गुरु कौन ?

'गुरु' वह है, जो अन्दर से बिल्कुल खाली होता है। 'शिष्य' वह है, जो अन्दर से खाली होने का प्रयास करता है।

'गुरु' वह नहीं होता, जो निरन्तर अध्यात्म की प्रेरणा देता है। गुरु वह होता है, जिसके जीवन से निरन्तर अध्यात्म की प्रेरणा प्रस्फुटित होती है।

'गुरु' तनाव-मुक्त होता है, गुरु कर्तृत्वभाव से मुक्त होता है। वीतरागता की मस्ती में जीने वाला गुरु होता है। जिससे अध्यात्म का विशुद्ध पथ-दर्शन उपलब्ध होता है, लोग उसको गुरु मानते हैं। किंतु, वह अपने को गुरु नहीं मानता।

'गुरु' बनना आत्मा का लक्ष्य नहीं, शिष्य बनना आत्मा का लक्ष्य नहीं, वीतराग बनना आत्मा का लक्ष्य है, पूर्ण शांत बनना आत्मा का लक्ष्य है।

अमुक मेरा शिष्य है, अमुक मेरा गुरु है, इस भाव को महत्त्व देना गुरु-शिष्य-वाद है, 'वाद' अध्यात्म की अर्गला है। अपेक्षित हो, तब अवश्य पथ-दर्शन देना चाहिये और लेना चाहिये। किंतु इस विकल्प को आदतन दुहराने में समय का व्यय करना उचित नहीं। अमुक का मैं पथ-दर्शक हूँ, अमुक मेरा पथ-दर्शक है; इस विकल्प से बचे बिना आध्यात्मिक प्रगति मृग-मरीचिका का जामा पहन लेती है। तरु, फल देता है, देना उसका स्वभाव है, वह किसी को अपना ऋणि नहीं बनाता। गुरु प्रतिफल की भावना से मुक्त होता है, वह अध्यात्म के पथ-दर्शन से किसी को ऋणि नहीं बनाता, पथ-दर्शन करना उसकी सहजता है। शिष्य गुरु के पथ-दर्शन से जीवन को हल्का बनाता है, वह ऋणि नहीं बनता। अध्यात्म में ऋण के लिये तनिक भी अवकाश नहीं।

उससे बचो जो तुम्हें अपना शिष्य बनाना चाहता है। शिष्य बनाना वह चाहता है, जो अपूर्ण होता है। पूर्ण कभी किसी को शिष्य बनाना नहीं चाहता। उसके शिष्य

अनन्तकाल से जो ज्ञान भवहेतु था, उस ज्ञान को एक समय मात्र में जात्यंतर करके भवनिवृत्ति रुप किया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन को नमस्कार - श्रीमद्

अवश्य बनो, जो तुम्हें अपना शिष्य बनानां नहीं चाहता। जिसके शिष्य बनने से तुम्हारे भीतर का गुरु-शिष्य भाव सदा के लिये विदा हो जाये। अपूर्ण व्यक्ति गुरु-शिष्य भाव से रंगा हुआ होता है, पूर्ण व्यक्ति इस भाव से मुक्त होता है।

योग व क्षेम

मानव जीवन का 'योग' मिल जाना पुण्योदय का कारण है। किंतु योग का 'क्षेम' नहीं किया गया, तो पुण्योदय से प्राप्त हुआ योग भी पाप बंध का कारण बन सकता है। वज्र-ऋषभनाराच संहनन वाला ही मुक्ति में जा सकता है, किंतु उसी संहनन को प्राप्त कर रावण, कंस, जरासंघ जैसों ने नरक के द्वार खोल दिये।

समभाव का फर्क

एक-एक नारकी जीवन इतनी दारुण वेदना भोगता है, कि यदि उस वेदना का समभावपूर्वक भोग किया जाये तो असंख्य गजसुकुमार मोक्ष में जा सकते हैं। एक नारकी असंख्य गजसुकुमार जितनी वेदना भोगने पर भी अन्त में दुःखों के महासमुद्र में ही गोते लगाता रहता है। वेदना में फर्क नहीं, फर्क है समभाव का। नारकी के पास वेदना के साथ समभाव नहीं होता गजसुकुमार के पास समभाव उत्कृष्ट कोटि का था।

सम्यक्दर्शन

तत्त्व 'नौ' हैं। इनमें जीव का प्रथम और मोक्ष का नवम स्थान है। जीव यदि अजीव की ओर जाता है, तो इस क्रम से पुण्य-पाप, आस्रव-बंध रूपी संसार स्वाभाविक है यदि जीव अजीव की ओर से पराङ्मुख हो जाये तो मोक्ष उसके अत्यन्त निकट आ जायेगा। दृष्टि का मुड़ना ही 'सम्यक्दर्शन' है।

चित्त की वृत्ति के अनुसार दान का फल मिलता है।

सम्यक्दृष्टि का प्रतिक्षण मोक्ष

सम्यक्त्वी को हर क्षण मोक्ष है, उसकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक विचार और प्रत्येक उच्चार में मुक्ति के दर्शन होते हैं।

+

सिंह बकरी से डरता है

सिंह से बकरी डरती है, इसमें क्या आश्चर्य ? आश्चर्य तो इस बात का है कि बकरी से सिंह डरता है। अनंतशक्ति सम्पन्न आत्मा रूपी सिंह विषय-विकार रूपी बकरी से भय खाता है, यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।

+

कषाय

सोने का घड़ा टूटकर पुनः जुड़ जाता है। मिट्टी का घड़ा एक बार टूटकर फिर जुड़ता नहीं। मानव की कषाय सोने के घड़े के समान होनी चाहिये।

+

मनन

गाय घास खाकर जुगाली करती हैं, फिर उसका दूध बनता है। इसी प्रकार श्रवण के बाद मनन करना चाहिये, तभी सुनना फलदायक है।

+

प्रवेश

शतबाहु बनकर गृहस्थ जीवन में और सहस्रबाहु बनकर समाज में प्रवेश करना चाहिये।

धर्म सार्वजनीन और सार्वकालिक होता है।

जिनवाणी

पर्वत के ऊपर निरंतर हजारों-लाखों वर्षों तक वर्षा होती रहे, तो कोई एक पत्थर का टुकड़ा हीरे के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार भव्य आत्मा जिनवाणी की निरंतर वर्षा से परमात्मा बन जाती है।

✢

मोक्ष

नौ मनकों की माला में सबसे पहला जीवतत्त्व का मनका है और नौवाँ मोक्ष का। जीव और मोक्ष के बीच में मात्र एक गांठ है। यदि ग्रंथि का भेदन हो जाये तो जीव मोक्ष के अत्यंत निकट है।

✢

परमात्मा

पारस पत्थर के स्पर्श से जब लोहा सोना बन जाता है, तब वह चाहे कहीं भी किसी भी स्थिति में हो, पुनः लोह रूप को प्राप्त नहीं करता। इसी प्रकार आत्मा जब परमात्मा बन जाती है, तब वह संसार में पुनः नहीं आती।

✢

संयम

संयम का अर्थ है - नियंत्रण। स्वयं का स्वयं पर, स्वयं के लिये नियंत्रण करना संयम है। संवेदनाओं का नियंत्रण करने से वैराग्य पैदा होता है। विचारों के नियंत्रण से एकाग्रता आती है और आवेगों का नियंत्रण करने से प्रसन्नता पैदा होती है।

✢

व्याकुल मन खुद ही दुःखी नहीं होता, वरन् अपने साथ ओरों को भी दुःखी करता है।

ज्ञान

जो ज्ञान के प्रकाश के बिना मोक्षमार्ग पर चलना चाहता है, वह उस अंधे की तरह है, जो अंधकार में दुर्गम जंगल में चलने की इच्छा करता है।

कार्य दो

दो आँखे मिलकर एक 'देखने' का कार्य करती हैं। दो कान मिलकर 'सुनने' का काम करते हैं, दो पैर मिलकर 'चलने' का कार्य करते हैं, दो होठ मिलकर 'बोलने' का कार्य करते हैं, परंतु एक आत्मा दो कार्य करती है – एक विभाव पर्याय का, दूसरी स्वभाव पर्याय का। आत्मा जाना स्वभाव में चाहती है, परंतु चलती विभाव में है।

नियंत्रण

समुद्र के ऊपर नियंत्रण पाने वाले, समुद्र के जल को पीछे धकेलकर हजारों बंगलों का निर्माण कर लेते है। इसी प्रकार आत्मा यदि मन पर नियंत्रण कर ले तो क्या वह सद्विचार, सद्गुण और सदाचार का निर्माण नहीं कर सकती ?

शब्द और भाव

अंधे को लाठी का सहारा हो सकता है, किंतु लाठी आँख का स्थान नहीं ले सकती। इसी तरह शास्त्र शब्द रूप है वह भाव का स्थान नहीं ले सकता। भगवान द्वारा उपदिष्ट सत्य का मर्म भाव में है, शब्द तो सहारा मात्र है।

पूजाकोटिसमं स्तोत्र, स्तोत्र कोटिसमो जपः।
जपकोटि समं ध्यानं, ध्यान कोटिसमो लयः ।।

वासना

वासना के बीज इतने सूक्ष्म हैं कि बड़े-बड़े साधकों को भी दिखाई नहीं देते। वे समझते हैं, कि हमारी मनोभूमि एकदम साफ है। परन्तु ज्योंही मानादि को पुष्ट करने वाली अनुकूल या प्रतिकूल वर्षा होती है, त्योंहो वासना के कितने ही अंकुर उद्भुत हो जाते हैं, और साफ दिखाई देने वाली भूमि भी अंकुरित हो जाती है।

दान

दान में भी अहंकार रहा तो वह दान किस काम का ? किसी भूखे व असहाय व्यक्ति की सहायता के लिये जिस धन-संपत्ति का दान किया, उससे लोभ कषाय की मंदता तो अवश्य हुई, किंतु यदि उसके साथ अंहकार का भूत खड़ा हो गया तो वह वैसा ही हुआ, जैसे घर से बिल्ली को निकाला और ऊँट घुस गया। दान में करुणा, नम्रता और निःस्वार्थ भाव होना चाहिये।

साथी और संयोगी

सच्चे साथी अन्तरंग के ही हैं। बाहिर में कोई साथी नहीं। बाहर के सब संयोगी हैं। आत्मा संयोगियों को संयोगी माने तो सुखी रह सकता है। साथी मान ले, तो मिथ्यात्व भाव है और वही दुःख का कारण है।

धर्म

'वत्थु सहावो धम्मो' प्रत्येक वस्तु का अपना स्वभाव 'धर्म' है। साम्प्रदायिक अनुष्ठान धर्म नहीं, क्रियाएँ हैं। क्रियाएँ धर्म नहीं हो सकतीं। आत्मा को स्वभाव में रहने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा लक्ष्य बनाकर यदि क्रियाएँ की जाती हैं, तो कार्य में कारण का उपचार करके वे क्रियाएँ भी धर्म स्वरूप कही जाती हैं। लक्ष्यहीन क्रियाएँ केवल क्रियाएँ हैं, भटकन है, नशा है, धर्म कदापि नहीं।

जिससे अधोगति सदा के लिये निरुद्ध हो जाए वही 'सम्यक्दर्शन है।

आत्मानुभूति ही सुख

सच्चा सुख कहाँ है, क्या है, उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? भोग सामग्री पाकर के भी आज प्राणी दुःखी है। भला अपने से हीन को देखकर के सुख मानना तो कठोरता है, निर्दयता है। सुख आत्मा का एक गुण है, जिसे स्वयं में पाना है। आत्मा अनन्त आनन्द का कन्द है। सुख चाहने वालों को आत्मोन्मुखी बनाना चाहिये। सच्चा सुख अनुभव की वस्तु है, कहने की नहीं। आत्मा सुखमय है, अतः आत्मानुभूति ही सुख है। सुख के लिये किये जाने वाले सब प्रश्नों का एक उत्तर है - आत्मानुभूति।

स्वाधीन सुख

पौद्गलिक सर्व सुख पराधीन है, पुण्योदय से प्राप्त होते हैं। आत्मिक सुख ही सच्चा सुख है, वही स्वाधीन है। वह सुख आत्मा के अंदर ही है, बाहर कहीं नहीं। दूसरे शब्दों में आत्मा स्वयं सुख रूप ही है। आत्मा अन्तर् से प्रस्फुटित सुख में मग्न रहे, यही बहुत बड़ा तप, जप और धर्म है।

सुखी व्यक्ति कभी किसी को दुःखी बनाने का विकल्प भी नहीं बनाता, अतः सुखी रहने वाला सहज में ही सबका हितकारी बन जाता है। क्रोधी व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की परेशानियों में निमित्त बनता जाता है। क्षमाशील का सान्निध्य परेशानियाँ दूर करता है। मान सर्वनाश का प्रतीक है, नम्रता निर्माण का। कपट में बरबादी और सरलता में आजादी निहित है।

भावना

वैद्य औषधियों को भावना देता है और औषधियों की शक्ति शतगुणा बढ़ जाती है, तब उन औषधियों में रोग प्रतिरोधक शक्ति भी बढ़ जाती है, अनेक असाध्य रोग जड़-मूल से नष्ट हो जाते है। इसी प्रकार अनित्यादि भावनाओं से भावों की विशुद्धि होती है, मलिनता निकल जाती है, अस्थिरता मिटकर स्थिरता प्रगट होती है। जन्म-मरण, संयोग-वियोग, शरीर, परिवार, धन-धान्य का सम्बन्ध सब अनित्य है, नाशमान है परन्तु

आत्मा नित्य है, अविनाशी है, सदा विद्यमान रहने वाली है। दृश्य परिवर्तित होते रहते हैं, यह उनका स्वभाव है। अपना स्वभाव 'दृष्टा' है। ऐसा विचार भावों मे स्थिरता लाता है, धैर्य बढ़ाता है, सहनशीलता आती है। कमजोरी भागती हुई दिखाई देती है।

सब सुखी बनें

आत्मा के अंदर अनंत शक्ति है, जितनी शक्ति भगवान महावीर में थी, उतनी ही। हमें उस शक्ति का उपयोग करना चाहिये, उससे लाभ उठाना चाहिये। अर्थात् समता, शांति, संतोष, प्रेम हमारे कण-कण में प्रगट हो जाएगा। और उसका सबसे प्रथम व सबसे ज्यादा लाभ हमारे परिवार वालों को प्राप्त होना चाहिये। हम भी सुखी रहें और हमारा परिवार, समाज, देश सब सुखी बने।

धर्म की शरण

धर्म की शरण रखो, घबराओ नहीं। दुःख-सुख तो कर्म की रेखा है, इसे शांति से सहन करना चाहिये। अगर समता भाव से सहन करोगे, तो दुःख, दुःख ही नहीं रहेगा। एकाग्रचित्त से महामंत्र का स्मरण करो, जिस महामंत्र से शूलि का सिंहासन बन गया, अग्निकुंड का शीतल पानी बन गया, फिर अपने दुःख तो हैं ही कितने ? क्या नवकारमंत्र से इतने से दुःख दूर नहीं होंगे ?

चारित्र

ज्ञानामृत ही आत्मा का भोजन है, चारित्र निर्माण उसका फल है। अर्थात् ज्ञान के द्वारा उच्चकोटि का चारित्र निर्मित होना चाहिये, इसी से धर्म की सच्ची प्रभावना होती है। जीवन में शांति बनी रहे, क्षमाभाव उत्तरोत्तर बढ़ता रहे, संतोष एक-एक-रोम में व्याप्त रहे, इसी का नाम चारित्र है। शास्त्रों ने, ऋषि-मुनियों ने इसी चारित्र पर बल दिया है, इसी से ज्ञान सफल होता है। क्रियाकाण्ड भी इसी चारित्र में सहायक हो तभी उपयोगी है।

धारण किया गया धर्म ही शरण देता है। - गोयंका जी

अभिप्राय यह है, कि हमें वीतराग बनते जाना चाहिये। राग-द्वेष, विषय-कषाय, दिन-प्रतिदिन घटते जाने चाहिये। नियम, प्रत्याख्यान, सामायिक, संवर, जप, तप, मौन आदि सब चारित्र का निर्माण करने के लिये साधन हैं, साध्य वीतरागता है।

शिष्य और गुरु

जब तुम शिष्य हो, तब गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित होकर शिष्यत्व का आनंद लो। और जब गुरु बन जाओ तब गुरुत्व की भूमि का निर्वाह करते हुए गुरुपद का आनंद लो।

विनय और अभिमान

एक विनय सारे सद्गुणों को अपने पास बुला लेता है, एक अभिमान सारे दुर्गुणों को अपने पास बुला लेता है। अतः अभिमान से बचो और विनय को अपनाओ। अभिमान से अवनति होती है और विनय से उन्नति।

अहंकार और नमस्कार

अहंकार/ममकार और नमस्कार दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं। मन को नमाना ही तो नमस्कार है।

जोबन

'जोबन' का अर्थ है - जो बन सके वह बना लो। यदि जोबन में कुछ नहीं किया तो अंत तक कुछ नहीं कर पाओगे। क्योंकि योवन का दूसरा नाम जवानी है। 'जवानी' अर्थात् जाने वाली। जवानी जाने वाली है और जाकर पुनः लौटने वाली नहीं।

मित्र और मैत्री भाव

संसार के सब जीवों पर मैत्रीभाव रखो, पर मित्र किसी को मत मानो। ऐसे

गुस्सा अक्ल को खा जाता है, अहंकार मन को खा जाता है।
चिंता आयु को खा जाती है। रिश्वत इंसाफ को खा जाता है।

ही शत्रु भी किसी को मत मानो। क्योंकि आत्मा का परिणति सदा एक सी नहीं रहती, हो सकता है कभी तुम्हारे विचार परिवर्तित हो जाये, अथवा अन्य के विचार परिवर्तित हो जाये। अतः अति प्रीति एवं अति द्वेषपूर्ण अप्रीति से बचकर तटस्थ रहकर व्यवहार करो, इससे संसार में तुम सुखी रहोगे।

देखो, पर खुद को

जब भी देखो, अपने को देखो। जब भी सोचो अपना सोचो, जब भी कहो, जो भी कहो अपने लिये कहो। दूसरे के दोषों को न देखो, न सोचो न कहो। दूसरे के दोषों को न देखो, न सोचो न कहो। इससे तुम्हारी आत्मा स्वभाव में रहेगी। विकल्प कम होंगे, अनेक परेशानियों से छूट जाओगे। पर का चिंतन ही तुम्हारे दुःख का निर्माण करता है। स्व का चिंतन तुम्हारे सुख का निर्माण करेगा।

स्व में सुख पर में दुःख

स्व में रहना तुम कठिन समझते हो और पर में रहना सरल। किंतु विचार कर देखो, तुम्हे वस्तुस्थिति का पता लगेगा। स्व में रहना सरल है, आत्मा को कहीं दूर नहीं जाना पड़ता, अपने मस्तिष्क पर बोझा नहीं देना पड़ता, स्व में रहकर तुम उन्मुक्त रह सकते हो, सरल और सहज रह सकते हो। पर में विचरण करने वालों को वह सहजता और सरलता कहाँ आ सकती है, वह आनंद कैसे आ सकता है ?

मौन रहो

जितना बन सके, मौन रहो, बहुत जरूरत हो तभी बोलो। सुनो, पर बोलो नहीं, इससे विकल्प कम उठेंगे। एक शब्द भी अनेक विकल्प पैदा कर देता है, विकल्पों में शांति कैसे मिलेगी ? शांति के लिये आवश्यक है, विकल्प कम पैदा हों, विकल्पों को कम करने के लिये मौन अचूक उपाय है।

उपादान और निमित्त

गुरु-शिष्य का संबध व्यवहार से है, निमित्त-नैमेत्तिक संबध को लेकर है। सुगुरु की वाणी शिष्य के ज्ञान को जागृत करने में तभी निमित्त बनती है, जब शिष्य का उपादान ठीक है। अन्यथा निमित्त असफल अर्थात् फलदायी नहीं होता, और निमित्त भी नहीं कहलाता। उपादान के अनुरूप ही निमित्त कार्यकारी होता है। अतः कर्तव्य का अंहकार मत करो।

प्रेम

संसार में प्रेम सब वस्तुओं का निर्माण करता हैं । सेवा, दया, दान, परोपकार आदि सभी शुभ कार्य प्रेम से ही उद्भुत होते हैं। बच्चा पाठशाला में पढ़ने जाता है, युवक सभा-सोसाइटी में भाग लेता है, योगीजन गुफाओं में ध्यानस्थ हो जाते हैं, इन सबमें प्रेम की ही प्रेरणा है। प्रेम हृदय से उत्पन्न होता है, और उसी की प्रसन्नता /अमरता के लिये ये सब कार्य होते हैं।

सेवा -

सेवा सर्वोत्कृष्ट धर्म है, जिससे सारे संसार को धर्म के मार्ग पर चलाया जा सकता है। यह वह वशीकरण मंत्र है, जिससे सारे संसार को वश में किया जा सकता है सेवा करने वाला और सेवा कराने वाला दोनों ही निर्जरा के महानफल को प्राप्त करते हैं।

सदा युवक बने रहो

मन से प्रत्येक अवस्था में युवा बने रहो बुढ़ापे का अहसास पाँच इन्द्रियों और मन, वचन, काया को भी निर्बल बना देगा।

करोड़ वर्षो का अंधकार दूर करने में करोड़ वर्ष नही लगते ऐसे ही अनादिकाल के कर्म नष्ट करने में अनंन्तकाल नही लगते।

कर्म-बंधन कैसे

ज्ञान का कार्य है, संसार के पदार्थों को जानना, न कि उनमें फेर-बदल करना पदार्थ का परिवर्तन उसी के गुण धर्म के आधार पर होता है। अतः पदार्थ का परिवर्तन हो जाने पर 'मैंने किया' ऐसा अभिमान मत करो। परिवर्तन करने का अहं 'अज्ञान' है, अज्ञान से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, यही कर्म बंधन का हेतु है।

निर्लिप्त रहो

संसार में किसी भी व्यक्ति की सदा-सर्वदा एक जैसी मनःस्थिति नहीं रहती है। इस परिवर्तनशील संसार में प्रतिक्षण हर वस्तु में परिवर्तन घट रहा है, इसी प्रकार हर व्यक्ति के विचारों में भी प्रतिक्षण परिवर्तन आता रहता है, अतः किसी को भी एकान्त अच्छा या बुरा न कहो। जो आज बुरा है वह कल अच्छा बन सकता है, और जिसे आज अच्छा समझ रहे हो वह कल विपरीत भी हो सकता है। ऐसा जानकर राग-द्वेष में लिप्त न बनो।

उत्तप्त नहीं उदासीन बनो

यह संसार विषय-कषाय की अग्नि में अहर्निश जल रहा है, राग-द्वेष जन्य विग्रह इस भव रणांगण में दिन-रात चल रहे हैं, इसे देखकर उत्तप्त न होओ, संसार को बुरा-भला कहकर अपने में राग-द्वेष की वृद्धि मत करो, वरन् उदासीन भाव धारण करते हुए अपनी आत्मा को इनसे दूर करने की कोशिश करो।

भीतर का संसार

संसार कहीं बाहर नहीं है, संसार तुम्हारे भीतर है, तुम अपने अंदर पल रहे संसार को देखो और उससे बचने की कोशिश करो। जिस दिन तुम्हारे भीतर रहा हुआ विषय-वासनामय संसार मिट जाएगा, उस दिन तुम अमर हो जाओगे।

सुख का राजमार्ग

तुम दूसरों के भीतर राग-द्वेष देखकर पीड़ित हो रहे हो, तो यह न भूलो कि दूसरा भी तुम्हारे भीतर रहे हुए राग-द्वेष को देखकर ही पीड़ित हो रहा है। यही आपसी कटुता है, यही संघर्ष है, कि हर व्यक्ति दूसरे का राग-द्वेष दूर करना चाहता है, अपना नहीं। सुखी होने का राजमार्ग है - अपने भीतर रहे हुए विकारों को देखकर पीड़ित होओ।

✢

बुद्धि और मान

बुद्धिमान होना अच्छा है, पर बुद्धि के साथ मान होना अच्छा नहीं। बुद्धि के साथ मान आ जाने से श्रेष्ठ बुद्धि भी दूषित हो जाती है।

✢

क्रोध

क्रोध से यदि कार्य बनता हो तो क्रोध करना चाहिये, यदि क्रोध से बनता हुआ कार्य भी बिगड़ता हो, तो क्रोध कभी नहीं करना चाहिये।

✢

ध्वनि-प्रतिध्वनि

ध्वनि की प्रतिध्वनि, क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। आप प्रतिध्वनि सुखद चाहते हैं, तो ध्वनि को सुधारिये, आप प्रतिक्रिया अच्छी चाहते हैं, तो क्रिया अच्छी करिये।

✢

भोग को भक्ति में मिला देने से भोग 'योग' हो जाता है।

अध्यात्म के स्वर

रचयिता – महासती कौशल्या देवी जी

हृदय में शुभ्रता, स्वच्छता, पवित्रता, विशालता, उदारता, गंभीरता, समता, सहिष्णुता आदि विविध सद्गुणों का अखूट भंडार लिये महासती कौशल्यादेवी जी आप अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर समारूढ है भक्ति या अनुभूति के क्षणों में आपके अन्तर्हृदय से निःसृत काव्य रचनायें परिमाण में अल्प होने पर भी मूल्यवत्ता की दृष्टि से महान है, इनकी सहजता, सरलता एवं कलकलनिनादिनी प्रवाहमयता अनुपमेय है।

संयोजिका

साध्वी विजय श्री 'आर्या'

आदि जिनवर

नमूँ आदि जिनवर प्रभू, जोड़ी दोनो हाथ।
चरण-शरण मोहे दीजिये, करिये कृपा मुझ नाथ॥

करिये कृपा मुझ नाथ, यही आशा ले के तुमपे आई।
करिये मेरी प्रतिपाल, प्रभू मै जगत भ्रमण से घबराई॥

जिनवाणी से परिचय पाया, "मैं परमानंद स्वरूपी हूँ"।
मानादिक ने घेरा डाला, मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ी हूँ॥

आज तलक जो हुआ हुआ सो, उसकी बात तो जाने दो।
मैं परमानंद का रस पीऊँ, मेरे भगवन ! वह शक्ति दो॥

करूणानिधि कृपालु

करूणानिधि कृपालु, दुःख दूर मेरा कीजो।
आई शरण में भगवन् ! कर पार नैया दीजो॥ घ्रु०॥

कब तक मैं बैठी रहूँगी, इस विष भरे संसार में।
मम इच्छा पूर्ण कीजो, जिससे मिले गुरू की शरण॥१॥

बिन ज्ञान है अंधेरा, छाया हुआ घनेरा।
सूझे ना पंथ भगवन ! केसे करूँ किनारा॥२॥

जो मिले गुरू गुणवान जी, तो करे हृदय में प्रकाश जी।
गोते लगाती भगवन! मेरी पकड़ अंगुली तार दो॥३॥

हे नाथ ! आश तेरी, क्यों हो रही है देरी
है अर्ज मेरी ये ही, करो दूर भव की फेरी॥४॥

प्रभु से विनती

मेरी नाव भँवर में डूब रही, पतवार प्रभु पतवार प्रभु।
मैं अधम अपावन प्राणी हूँ कर पार प्रभू कर पार प्रभु॥ ध्रु०॥

मोह-माया की भ्रमणा फैली, मैं भूल गई निज धाम प्रभु।
भूली-भटकी फिरती डग-डग, रक्षा हो रक्षणहार प्रभु॥ १॥

मतभेदों की चर्चा फैली, बहु दुर्गम सत्य की घाटी है।
वह दिव्य नेत्र दो प्रभू मेरे, जिसने असत्य जड़ काटी है॥ २॥

अय ! आत्म तत्व

अय आत्म तत्व ! तूं अविनाशी है, नाश नहीं होगा तेरा।
तूं अनंत शक्ति का पुंज प्रभू, नहीं दीन-हीन रूप तेरा॥

तूं घट-घट में अन्तर्व्यापक, तूं हर पल में अन्तजागृत।
तूं शुद्ध रूप तूं बुद्ध रूप, तूं परमातम ज्योति धारक॥

नहीं समझा आज तलक तुझकों, इसलिये भयंकर कष्ट सहे।
अक्षय-निधि का तू मालिक हैं, यदि एक बार कुछ ध्यान करे॥

आओ भगवन्

आओ भगवन ! आओ भगवन! अबला के मन-मन्दिर में।
ज्ञान का दीप जलाया मैंने, इस मन्दिर के कण-कण में॥
क्रोध-मान-माया के जाले, दूर किये हैं चुन-चुन के।
धर्म ध्यान का धूप जलाया, आओ प्रभु करूणा करके॥
दुनियाँ के सुख की नहीं इच्छा, नहीं तमन्ना भोगों की।
नहीं अपेक्षा, नहीं उपेक्षा, जीने अथवा मरने की॥
काल अनन्ता बीत चुका है, आवागमन के चक्कर में।
शिथिल हो गया मन मेरा, अब उस दुनियाँ के गह्वर में॥
मन चाहता है क्षण भर में ही, इक ऐसी उड़ान भरूँ।
पार पहुँच जाऊँ जगती के, अविचल पद में वास करूँ।
पर ज्योंहि कुछ कदम बढ़ाये, दिल में कमजोरी आती है।
मन चंचल और कर्म दरिद्र की घटना बन जाती है।
माना भगवन ! स्व - पुरूषार्थ, काम किसी के आता है।
पर यह भी कुछ गलत नहीं है, जग में जो दिखलाता है।
वृद्ध पुरूष एक लकड़ी पकड़कर, पार पहाडी कर जाता।
बालक माँ की अंगुली पकड़कर, अटवी को भी उलंघ जाता॥
बड़े जनों की दया बड़ी है, वृक्ष सी छाया देता है।
परमेश्वर परमातम भगवन ! आपकी फिर क्या समता है।
अनंत चतुष्टय के धारक प्रभू ! हिरदय में यदि आ जाओ।
अबला भी सबला बन जाए, दृतिवत् पार लगा जाओ॥

सत्यान्वेषण

कैसा विधना ने पाया है यह फेर, मति तो मेरी मारी गई।।ध्रु०।।

बाहर ढूंढ–ढूंढ मैं हारी, मिला नहीं करतार।
घट अंदर जो ढुंढती तो, पाती महा दीदार।।१।।

पंथ–वंथ के झगड़े आड़े, मिले न सत्य–स्वरूप।
सूक्ष्म दृष्टा के लिये वह अव्याबाध अनूप।।२।।

मैं सच्चा और झूठे सारे, कहते जग के लोय।
सत्यं सारभूत जग मांही, कहते ज्ञानी विलोय।।३।।

परम विवेकी बनकर आतम, निर्भय रहो हमेश।
सब द्वन्द्वों से छूटकर तब, पाओ पद परमेश।।४।।

विनय की महिमा

विनय एक गुण महाभारी है, विनय करो अय! ज्ञानी जन!
जहाँ विनय है वहाँ सभी गुण, आ जाते हिल–मिल–जुल कर।।

'विनय ददाति विद्या' ऐसा, महावाक्य श्रुतियों का है।
श्रुति वाक्य को धारण करना, काम यही गुणिया का है।।

विपक्षी अभिमान विनय का, सब जग में जो जाहिर है।
अभिमानी का सर नीचा होता, जग में आखिरकर है।।

विनय स्वाभाविक गुण आतम का, अभिमान वैभाविक गुण।
आत्मलक्ष्यी स्व में रमता है, तजकर स्व रमता अवगुण।।

जिनवाणी

सुन लो-सुन लो अय! प्यारी बहनों, जिनवाणी हितकार ॥ घु० ॥

जिनवाणी है फूल गुलाबी, महके और महकाए।
भ्रमर सरीखा अनुभव रस ले, आत्म-तृप्ति कर जाए॥ १॥

स्फटिक मणि सी जिनवाणी के, सम्मुख आकर जोवो।
अवगुण मिट जाएँ घट-घट के, परमातम बन जाओ॥ २॥

जिनवाणी है सरवर सुन्दर, जल से भरा-पुरा ये।
आतम-पट को धोकर जल्दी,अविचल पद को पायें॥ ३॥

पुण्योदय से मिला ये अवसर, गफलत दूर भगाओ।
जिनवाणी से लाभ उठाकर, आठों कर्म खपाओ॥ ४॥

गुरू चरणार्पण

मिले गुरूदेव उपकारी, मेरी बिगड़ बनायेंगे।
पूर्ण विश्वास है मुझको, मेरी नैया तिरायेंगे॥ ध्रु० ॥

बने यह आत्मा परमात्मा, है वाणी जिनवर की।
बिना गुरूदेव की किरपा, नहीं ये योग पायेंगे॥१॥

बने मृत्पिंड को घट रूप, बाल-गोपाल कहते हैं॥
किंतु कुम्भकार के सहयोग को नहीं भूल पायेंगे॥२॥

प्रस्तर की मूर्ति बनती, कलाकार की कला जानो।
करूँ अर्पण मैं अपने को, प्रभु मुझको बनायेगे॥३॥

गुरूदेव हमारे

गुण रत्नों की खान जी, गुरूदेव हमारे।
हम सबके प्रतिपाल जी, गुरूदेव हमारे ॥ध्रु०॥

पुण्य उदय से शरण में आये, भव-भव के दुःख से घबराये।
कर दें बेड़ा पार जी, गुरूदेव हमारे॥१॥

नाव झकोले खाती हमारी, घुम्मण घेरियाँ उठ रहीं न्यारी।
बन जाओ पतवार जी, गुरूदेव हमारे॥२॥

सिद्ध प्रभु मुक्ति के वासी, सूर्य शशि नभ में है साक्षी।
आन करें प्रमाण जी, गुरूदेव हमारे॥३॥

दूर रखें चाहे पास में रक्खे, दया की दृष्टि हरदम बरसें।
अर्ज है चरण मंझार जी, गुरूदेव हमारे॥४॥

गुरू की विवशता

पारस लोहे को स्वर्ण बनाता, सारे जग ने गाया है।
पर जंग सहित लोहे के आगे, चले न उसकी माया है॥

ज्योतिर्मान दीपक, दीपक को जगमग-जगमग करता है।
पर तेलहीन दीपक के आगे, क्षमता भी अक्षमता है॥

कुम्भकार मि ी को कुंभ, बनाकर अति हर्षाता है।
रेत मिली मि ी को पाकर, शक्तिहीन बन जाता है॥

ज्ञानी गुरू बनाते पामर प्राणी को अपने सम ही।
शुभ संस्कार से संस्कृत हो बन शिष्य समर्पित तो तब ही॥

गुरू चरणों में

दिन–रात हृदय तव चरण कमल में रमता।
स्वप्नों में पावन, पुण्य दर्श भी मिलता॥

तन–मन सब अर्पण हैं गुरूदेव तुम्हारे।
लेकिन पग पीछे पड़े भाग्य के मारे॥

यह शल्य चुभेगा बनकर तेज दुधारा।
हूँ बड़ी अभागिन स्वर्ण समय सब हारा॥

हे धर्म दिवाकर ! जगदुद्धारक ! ज्ञानी!
सुधि लेते रहना, अर्ज जोरी जुग पाणि॥

मंगलकारी तव नाम से आनन्द पावें।
बाधाएँ सब हों दूर सुयश जग छावे॥

कोटि वंदन स्वीकार करें प्रभु मोरी।
भीरू, कायर, बुजदिल और कोरी कोरी॥

शेरे पंजाब गुरू प्रेमचंद जी म० की महिमा

श्री गुरु प्रेमचंद जी की, हाँ महिमा क्या करूँ वर्णन ?
ये सच्चे जैन भूषण की, हाँ महिमा क्या करूँ वर्णन ?

धन्य पितु-मात है, तुमरे, जन्मभूमि भी धन-धन है।
तुम्हारी कीर्ति-सौरभ की, हाँ महिमा क्या करूँ वर्णन ?

किया चौमास देहली में, हुए सब धन्य नर-नारी।
तुम्हारे ज्ञान खजाने की, हाँ महिमा क्या करूँ वर्णन ?

दिवस पूरे हुए सारे, वार बुध भी ये आ पहुँचा।
भक्त जन के हृदय रोवें, हाँ महिमा क्या करूँ वर्णन ?

यही है भावना मेरी, संघ के नाथ अय ! गुरूवर !
रहे सुख - शांति पग- पग, हाँ महिमा क्या करूँ वर्णन ?

दिव्यविभूति श्री मोहनदेवी जी म० की प्रथम पुण्य तिथि पर

मेरे गुरूदेव ऐसे थे, मेरे गुरूदेव ऐसे थे।
वे सबका दुःख मिटाते थे, मेरे गुरूदेव ऐसे थे ॥ ध्रु०॥

सुनाऊँ हाल क्या उनका, बताऊँ हाल क्या उनका।
वे सबके मन का भाते थे, मेरे गुरूदेव ऐसे थे॥ १॥

कोई गर आ गया दुखिया, वे तन–मन से तड़फ जाते।
सभी की दास्तां सुनते, मेरे गुरूदेव ऐसे थे॥ २॥

कोई बेगार बच्चा हो, कोई बेदार बच्चा हो।
वे सबके दुःख को हरते थे, मेरे गुरूदेव ऐसे थे॥ ३॥

चमक ज्यों चाँद–सूरज की, गहनता सिंधु सरवर की।
वे धरती सम सहारे थे, मेरे गुरूदेव ऐसे थे॥ ४॥

बरस दिन हो गया पूरा, याद एक दिन नहीं भूली।
लगाई छाप ऐसी थी, मेरे गुरूदेव ऐसे थे ॥ ५॥

एके साधे सब सधे

जीवन में दृढ़ता का गौरव बड़ा महान जग गाया है
इस दृढ़ता ने कई जनों को, ऊँचे शिखर चढ़ाया है॥

पद-पद पर स्खलना को पाना, यह भी क्या कुछ जीवन है ?
जिसने इसका आश्रय धारा, वही नराधम जीवन है॥

एक नदी में चली दो किश्ती दोनों के नाविक बोले।
बोले क्या बस हृदय-निष्ठता, भावनाओं के पट खोले॥

कहा एक ने, ओ भगवन! तुम मेरी नैया पार करो।
नत-मस्तक हो अर्ज करूँ प्रभु! मेरा तो उद्धार करो॥

जा पहुँचा वह नदी पार कर, जरा नहीं कुछ देर लगी।
लगती केसे देर वहाँ तो, जीवन की थी कड़ी लगी॥

कहा अन्य ने, ओ शंकर ! ओ विष्णु ! ओ ब्रह्मा ! आओ।
आकर मेरी शीघ्र भंवर से, किश्ती पार लगा जाओ।

सागर बीच जाते ही तूफानों ने किश्ती को घेरा।
शंकाशील नाविक का तो बस बीच भंवर में लगा डेरा॥

एके साधे सब सधते है, सब साधे सब जाते है।
अटल नियम नीतिकारों के बड़ा महात्तम पाते हैं॥

ए दुनियाँ के रहने वालों ! मन में जरा विचार करो।
स्थिरता लेकर जीवन में तुम धर्म करो अरु ध्यान करो॥

साधक और मन का संवाद

साधक की शिकायत

अय मन! तू पापी दुष्टी है, किया मुझे भव-भव दुखिया।
रूठ गई दुनियाँ मेरी, मैं संग तेरे से घबराया॥

मैं शुद्ध चिदानंद अविकारी, तेरे कारण पच-पच मरता॥
मुक्त-स्वभावी होने पर भी, बंधन में जकड़ा फिरता॥

प्रभु-स्मरण नहीं करने देता, तू इधर-उधर ले जाता है॥
जब मैं बैठू धर्म ध्यान में, आर्तध्यान करवाता है॥

मेरा पीछा छोड़ अरे तू, हाथ जोड़कर कहती हूँ।
संगत तेरी तज करके ही मैं, मुक्ति-पद ले सकती हूँ।

मन का प्रत्युत्तर

अच्छा साहब ! खूब कही क्या, उल्टी गंगा बहाते हो।
बालक के सिर दोषारोपण, खुद मौजें उड़ाते हो॥

मेरी क्या शक्ति जो एक पग भी आगे जा पाऊँ।
जन्म-जन्म का पंगु हूँ मेरे मालिक क्या बतलाऊँ॥

कारण जैसा होगा वैसा ही कारज बन पाएगा।
अमर वाक्य यह सिद्धान्तों का सब झगड़े निपटाएगा॥

तुमरा बना बनाया हूँ, मैं तुमरा ताबेदार हूँ मैं।
जो कुछ भी हूँ तुमरा ही हूँ स्वयं नहीं कुछ चीज हूँ मैं॥

आप भले हैं माना मैंने लेकिन मैं भी बुरा नहीं।
मूल आप है सब वृत्तियों के, स्वयं मेरा कुछ कर्म नही॥

सब वृत्तियों को अन्तर्मुख कर, प्रभु भजो आनन्द करो।
देखू कौन रोकता है मैं निजानन्द से प्यार करो॥

आपकी मुक्ति मे मेरी मुक्ति है संशय इसमें रंच नही।
बंधन कट जाएँ भव-भव के, चाहता मैं कुछ और नहीं॥

राजुल का उपालम्भ

प्रभु नेम बड़े दिल के कठोर निकले।
चोरी-चोरी चले गए, बड़े चोर निकले ॥ध्रु०॥

मैं तो समझी थी तुम बड़े दाता हो।
दीन-दु:खियों के भाग्य-विधाता हो॥

पर तुम तो बड़े चित-चोर निकले॥१॥
नौ भव की प्रीति निहारो तुम।

मुझे इतना नही तरसाओ तुम॥
मेरे जीवन की आशा को ले निकले॥२॥

मेरे दिल को जो तुम तड़पाओगे।
केसे अमर शांति को पाओगे॥

मेरे दिल की कली को मरोड़ निकले॥३॥

मैं भी मोह का परदा उतारूंगी।
जीवन तुमरे चरण में ही डारूंगी॥

मैं क्यों घर में रहूँ जब तुम निकले॥४॥

निज शरणा ही सच्चा

वीतराग भगवान का मिला मुझे उपदेश।
कर्म करद के बीच में, क्यों राखी है टेक॥

क्यों राखी है टेक, नहीं यह आत्मधर्म तुम्हारा।
ज्ञानी होकर घूमो पर में, नहीं कभी श्रेयकारा॥

निज शरणा शरणा ही सच्चा, ऋषि-मुनियों ने उच्चारा।
अन्य शरण को तजदो चेतन, मानो वचन हमारा॥

दुरित निकंदन

सही विषमताएँ कई, धर कर मन में धीर।
मगर उपेक्षा ज्ञानी की, सही न जाए पीर॥

सही न जाए पीर, हृदय में चलती तेज कटारी।
करूणा सागर, दीन दयालु, दया करो एक बारी॥

प्राण कंठ में अटक रहे हैं, आओ मम उपकारी।
है सुखकंदन! दुरितनिकंदन ! चरणन विनय गुजारी॥

शुभाचरण

शुभाचरण की वार्ताएँ, जिन आतम-पट पर लिख लीजे।
एक बार तो कम से कम, उनको दृष्टि में धर लीजे॥

जिस वन में शेर धूमते हो, वहाँ गीदड़ की मुस्कान कहाँ ?
जिस धर में दीपक जलते हो, वहाँ तम का नाम-निशान कहाँ ?

दृष्टि

विषय भोग में सुख-दृष्टि ही सचमुच दुःख को लाती है।
विषय भोग में गुण-दृष्टि ही सचमुच मन भटकाती है॥

विषय भोग में दोष-दृष्टि ही सारे सुख की थाती है।
विषय भोग में दुःख-दृष्टि ही अविचल आनंद पाती है॥

खण्ड ३

अभिनंदन की ऊषा



दीक्षा स्वर्ण-जयंति पर श्रद्धा-पुष्प चढ़ाते हैं।
सौ-सौ वर्ष जीओ गुरुवर, शताब्दी देखना चाहते हैं।

१. अभिमतों के आलोक में अध्यात्मयोगिनी

२. अभिनन्दन की वेला, अनुभव की पाती

अभिमतों के आलोक में अध्यात्मयोगिनी

श्रमण-संघ की गरिमा

जैन श्रमणियों में महासती कौशल्या जी का नाम बहुत ही आदर के साथ लिया जाता है। कुशलता अर्थात् निपुणता, दक्षता एवं विघ्न निवारण का गुण जिसमें हो, उसे कहते हैं - कौशल।

पूज्या महासतीजी का नाम आते ही मुझे गरिमापूर्ण भारतीय-संस्कृति का स्मरण होता है। इस संस्कृति में ज्ञान और कर्म का संबध पवित्रता के साथ जुड़ा हुआ है। महासतीजी के जीवन में भी पवित्रता, निर्लेपता, और ज्ञान की दिव्यता का संगम हुआ है। महासतीजी का आगम-ज्ञान गंभीर है। वे अल्पभाषी और मृदुभाषी होने के साथ-साथ जब भी बोलती है तो शब्द-शब्द उनके कुशल कृतित्व का परिचय देता है। ऐसा लगता है, शब्द नहीं, जीवन बोल रहा है। कौशल्याजी का कुशल कर्म शब्दों में स्फुरित हो रहा है। ऐसी श्रमणी हमारे श्रमण-संघ की गरिमा है, समाज के लिए आदर्श ज्योति-स्तम्भ है।

- आचार्य सम्राट् श्री देवेन्द्रमुनि जी म०

ज्ञानी अन्तरंग खेद और हर्ष से रहित होते हैं। ' श्रीमद्

गंभीर एवं संयमप्रिया साध्वी जी

महासती कौशल्या जी से वि.सं. २०२८ की अक्षय-तृतीया पर मिलन का सर्वप्रथम अवसर मिला। प्रथम वार्तालाप में ही मैने पाया कि, आप गंभीर एवं संयमप्रिय महासती है। आपके हृदय में महावीर वाणी के प्रति अगाध श्रद्धा है।

- स्वाध्याय शिरोमणि
आचार्य श्री सोहनलाल जी म०

ज्योतिर्मयी साध्वी जी

श्रमणी-परम्परा की अध्यात्मयोगिनी, ज्योतिर्मयी महासाध्वियों में महासती कौशल्या देवी जी का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। आप अन्तरंग साधना के साथ-साथ श्रद्धा, भक्ति एवं समर्पण की भावना को संजाये हुए संघ की सेवा में अनुरक्त है। आपका जीवन स्वयं संयम की आभा से मंडित है, एवं जो भी आपके संपर्क में आया, उसी को अभिनव ज्ञान एवं अनुभवों से सिंचित करके श्रमण संघ को उत्कर्ष प्रदान किया।

- डॉ० शिव मुनि
(युवाचार्य, श्रमण संघ)

महापुरुष के आचरण की अपेक्षा उसका अन्तरंग देखो। - श्रीमद्

भाव कौशल्य का भावाभिनंदन

श्रमणी-पंरपरा की स्थविरा महासती कौशल्या देवी जी के संयमी जीवन में द्रव्य-भाव कौशल्य सदा प्रशंसनीय रहा है। इनके गृहस्थ जीवन में द्रव्य कौशल्य अर्थात् व्यवहार-कौशल्य प्रचुर प्रभावी रहा। तथा साधनामय जीवन का भाव-कौशल्य कर्मक्षय की आराधना में सफल रहा।

आप बाह्य-तप की सुदृढ़ भूमिका पर आभ्यंतर तप की आराधना करती हुई शिव-पथ गामिनी बनें। इस शुभ भावना के साथ आपके रत्नत्रय का भावभिनंदन

- अनुयोग प्रवर्तक मुनि 'कमल'
(उपाध्याय, श्रमण संघ)

महाश्रमणी !

उच्च पद पर स्थित होकर महानता का अभिनय अक्सर बहुत से लोग कर सकते हैं। परंतु लघुता की परिधि में महानता का दीप संजोए रखना जरा टेढ़ी खीर है। कौशल्या जी का जीवन वस्तुतः 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' है।

-मनोहर मुनि 'कुमुद'
(उपाध्याय, श्रमण संघ)

संत A. P. की टिकिट दिलाते हैं, अर्थात् आत्मा को परमात्मा से जोड़ते है।

महासती केसर देवी जी की अप्रतिम कृति

महासती कौशल्या देवी जी, महासती श्री केशर देवी जी की अप्रतिम कृति है। शांत, सौम्य और समता की साकार मूर्ति महासती जी जिन शासन में एक प्रकाश किरण हैं। अपने व्यवहार में सजगता पूर्वक आदर्शो का निर्वाह करती हुई भी, वे स्वभाव से गंभीर हैं। अपनी लघु साध्वियों को ज्ञानाराधना और वक्तृता में निरन्तर प्रेरित करते रहना, उन्हें स्वाध्याय-शील बनाना उनकी अपनी एक अनन्यतम विशेषता है।

-सौभाग्य मुनि 'कुमुद'
(महामंत्री, श्रमण संघ)

धर्मकला में कुशल महासती कौशल्या जी

सत्य और सती का सम्बन्ध एक जैसा होता है, दोनों जीवन की उज्जवलता और सत्यता को पसन्द करते है। जैसे खुली छत वाले भवन में ही सूर्य का तेजस्वी प्रकाश एवं पवन का प्रवेश होता है, उसी प्रकार आग्रह-मुक्त उदार हृदय में ही सत्य का दर्शन हो सकता है। सत्य दूध जैसा निर्मल, आकाश जैसा विशाल एवं पीयूष जैसा पावन होता है। हीरा जैसे पृथ्वी के गर्भ में मिलता है, कमल जैसे सागर में खिलता है, मोती जैसे समुद्र की अतल गहराई से पैदा होता है, ऐसे ही सत्य भी हृदय की गहराई से उपलब्ध होता है।

सत्य को उपलब्ध हुई संमयनिष्ठा महासती श्री कौशल्या देवी जी महाराज का निर्मल जीवन विविध गुणों का निधान है। वे विनम्र हैं, ज्ञानी हैं। जो विनम्र और ज्ञानी होता है वह अल्पभाषी होता है। वे भी अल्पभाषी हैं। कहा है -

'विनयो वंशमाख्याति'

जन्म से महान हो या कर्म से, जो गुणों की खान होते है, वे तीनों कालों में महान होते है।

उनके विनम्र व्यवहार से ही उनके कुल, जाति एवं वंश की श्रेष्ठता का ज्ञान हो जाता है।

महासती कौशल्या जी का जीवन सरल है, लाग-लपेट, छल-छिद्र उनके पास नहीं। वे स्वाध्याय-रसिक भी हैं, क्योंकि वे जानती है, कि "आगम चक्खु साहू" आगम ज्ञान साधु-साध्वी के लिये शिव-नेत्र के समान कल्याणकारी है। इसी से धर्म के प्रति आस्था दृढ़ होकर मन में स्थिरता व एकाग्रता स्थापित होती है।

महासती जी ने जिनशासन की प्रभावना के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनेक कन्याओं को धर्म-साधना में दीक्षित कर एक कीर्ति पूर्ण कार्य किया है। महासती केशरदेवी जी के साथ भारत के विशाल भू-भाग में विचरण कर अनेंकों लोगों को सन्मार्ग दिखाया है। आगे भी आप इसी भाँति धर्म प्रभावना करती हुई आत्म-साक्षात्कार के लक्ष्य को प्राप्त करें । यह मेरी हार्दिक शुभकामना एवं आशीर्वाद है।

-भण्डारी श्री पदमचन्द्र जी महाराज
(उत्तर भारतीय प्रवर्तक, श्रमण संघ)

अभिनन्दन

"अज्जा वरा केसरदेवि-णामा, संघम्मि सेट्ठा खलु साहुणी सा।
कौशल्या देवी पुण तस्स सीसा, धीरा गहीरा विउसी सुसन्ता ॥ ४९॥"

श्री केसरदेवी नाम की उत्तम आर्या है। वे (श्रमण) संघ में वास्तव में श्रेष्ठ साध्वी हैं। और उनकी शिष्या हैं-सती श्री कौशल्या देवी जी। जो कि धीर, गम्भीर, विदुषी और विशिष्ट शान्त प्रकृति वाली हैं।

"तासिं करेज्जा अहिणंदणं जे, अम्हाण तस्सिं तु खिवेम मोण्यं।

संत जन कष्ट पाकर भी दूसरों को सुख देते हैं।

भावेण वंदाम चरित-भांव, अप्पाण साहुत्त हु वंदणिज्जं॥ ५०॥"

जो उनका अभिनन्दन करते हैं, उसमें हमारा भी प्रमोद भाव हम प्रविष्ट करते है, और चरित्रभाव की भाव से वन्दना/प्रशंसा करते है। क्योंकि आत्मा का साधुत्व ही वन्दनीय है।

"कस्साबि होज्जहि गुणो य अप्पो, मोक्खस्स मग्गम्मि य पत्थियस्य।
सव्वरुसणं चेव नमंसणिज्जो, सावज्जजोगा विरई हि पुज्जो॥ ५१॥"

मोक्षमार्ग में प्रस्थान करने वाले किसी भी भव्य आत्मा का थोड़ा-सा भी (चरित्र) गुण सभी के लिये नमस्करणीय है। वस्तुतः सावद्ययोग से विरति ही पूजनीय है।

-उमेश मुनि 'अणु'
(प्रवर्तक, श्रमणसंघ)

चिरायु हों आप

आध्यात्मिकता के महासरोवर में सदा निमग्न रहने वाली पूज्या साध्वी श्री कौशल्या जी महाराज के चमचमाते दिनकर व्यक्तित्व तथा इनके पावन कृतित्व को लेकर कृतज्ञता अभिव्यक्त करने का अभियान चल रहा है, यह सब जानकर मेरा मन आनंद विभोर हो उठा। वे महान साधिका हैं, श्रमणी-संघ की शान है, उनके गुणगान से आत्मा को पवित्र करने वाले सौभाग्यशाली हैं।

-ज्ञानमुनि
(श्रमण संघीय सलाहकार)

महापुरूषों का जीवन एक सर्चलाईट है।

सतत स्वाध्यायशीला

आप जैसी सेवाभावी, शांत-दांत विशाल-हृदया, सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति साध्वी जी को प्राप्त कर हमारा श्रमण-संघ रूप महासागर अत्यंत उल्लसित है। आपमें एक सुयोग्य शिष्या की योग्यता है, तो सफल गुरु पद पर अधिष्ठित होने की क्षमता भी निर्बाध है। आप सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र-स्वाध्याय पथ की दिव्यदर्शिका बनी रहें।

- रमेश मुनि
(प्रवर्तक, श्रमण संघ)

निर्मल एवं उच्च चरित्र की धनी महासती कौशल्या जी

समतायोग की साधिका श्री कौशल्या देवी जी महाराज से मेरा सर्वप्रथम परिचय जयपुर वर्षावास में हुआ। उनकी सरलता, नम्रता, गंभीरता, परिवार को लेकर चलने की क्षमता, विचारों की उच्चता, औदार्य आदि विशेषताएँ देखकर मैं पंजाब की साध्वी समाज के प्रति आकर्षित हुआ। उसके बाद तो दिल्ली, अहमदनगर, सिकंदराबाद आदि कई स्थानों पर लम्बा सम्पर्क रहा। आपका चरित्र निर्मल व स्वच्छ है। श्रमण संघ में आप जैसी साध्वी, संघ के लिये आदर्श है।

- कुंदन ऋषि
(प्रवर्तक, श्रमणसंघ)

मंगल मनीषा

महासती चन्दन बालज्ञ की चली परम्परा में आपका जीवन, सौरभ युक्त सुमन के समान सदैव अमर रहेगा। श्री कौशल्या जी म० ने श्रमण संघ में अपनी अलग ही पहचान बनाई हुई है। आप अपनी विमल-वाणी से विश्व में वीर का संदेश सतत फैलाती रहें। यही मंगल-मनीषा।

-अमर मुनि
(उपप्रवर्तक, श्रमणसंघ)

सादर भावाञ्जलि

आपका जीवन निर्मल भाव, मधुर वाणी एवं सत्क्रिया का तीर्थ स्थल है। अनेक विशेषताओं की अक्षय-निधि कौशल्या जी के प्रति मेरी सादर भावाञ्जलि अर्पित है।

- मुनि प्रेमचंद्र
(उपप्रवर्तक, श्रमणसंघ)

केसरदेवी जी की सजीव कीर्ति

केसरदेवीजी 'केसर' हैं, तो कौशल्या देवी जी उसकी 'सुगंध'। वे केसरदेवी जी की मानों सजीव साकार कीर्ति है।

-गणेश मुनि 'शास्त्री'
(राष्ट्रसंत, प्रसिद्ध साहित्यकार, श्रमणसंघ)

ऊँचा पद पाकर मन भी ऊँचा रखो।

केसर दर्पण को मेरा अर्पण

निर्मल मन रूपी दर्पण में बिम्ब/प्रतिबिम्ब के रूप में सौन्दर्य/प्रत्यक्षीकरण तभी निखरता है जब मन वचन और काया से मोह-ममत्त्व का घूँघट/आवरण हटता है। दर्पण को अर्पण/समर्पण होने पर ही 'स्व' को देखने/परखने/सजाने/ संवारने का सुअवसर मिलता है।

श्री केसर देवी जी दर्पण है तो श्री कौशल्या जी अर्पण। दर्पण और अर्पण दूध और पानी की तरह तदाकार है। वैराग्य/अध्यात्म भाव धारा में अवगाहन करने वाली ये साधना पथ की अमर साधिका है।

युगपद चरणों से जैसे गंतव्य की प्राप्ति होती है वैसे ही आत्मदर्शन/आत्मशुद्धि के प्रशस्त पथ में परम सहयोगी उत्तम निमित्त के रुप में कौशल्या देवी जी का पावन सानिध्य कल्पवृक्षवत् फलदायी है। जिन को न फूलों से राग हैं, न काटों से द्वेष, मात्र अध्यात्म रस में सराबोर।

अध्यात्म आत्मा का अनुष्ठान है । विजातीय तत्त्व जब हट जाते है तब आत्म-दर्शन की अनुभूति सहज हो जाती है। मोह राजा को जीत कर ही विजय का पाँचजन्य पूर/फूंक सकते हैं।

- श्री जिनेन्द्र मुनि 'काव्यतीर्थ'
(विद्वान्संत श्रमणसंघ)

अमृतरूपा महासाध्वी जी

महती गरिमा व महिमा पर स्वामित्व स्थापित करने वाली जैन जगत की समुज्जवल तारिका के रूप में परम पूज्यनीया महासती श्री कौशल्या देवी जी इतिहास के पृष्ठों पर सदा अमर रहने वाली साध्वी है।

- डॉ॰ राजेन्द्र मुनि
(उपप्रवर्तक, श्रमणसंघ)

आर्यावर्त की शान

महासती कौशल्या देवी जी तप, संयम, साधनाकी मंगल प्रतीक है। उनका आदर्श जीवन गौरव-गरिमा से सदैव अभिमंडित रहा है। आर्यावर्त की ये शान है।

- श्रमण विनयकुमार 'भीम'
(उपप्रवर्तक, श्रमणसंघ)

श्रमणी संघ की बहुमूल्य संपत्ति

विदुषी आर्यारत्न श्री कौशल्या जी श्रमणी-संघ की बहुमूल्य सम्पत्ति है। वे महावीर के प्रति सर्वात्मना समर्पित हैं, यही कारण है, कि जो भी उनके सम्पर्क में आता है, वही उनके प्रति समर्पित हो जाता है।

- मुनि सुयशप्रभसागर
(मूर्तिपूजक, वरीष्ठ संत)

अनुपमेय संयमी जीवन

जीवन वही 'जीवन' है, जिसमें संयम की धारा सतत प्रवहमान है। महासती जी के निर्मल जीवन की तुलना करना उसी प्रकार अशक्य है, जैसे वामन का चाँद, तारों को छूना।

- राममुनि 'निर्भय' एम०ए०
सिद्धांताचार्य (श्रमणसंघ, वरीष्ठसंत)

जो अपने ध्येय प्राप्ति में दत्तचित्त है, उनसे सारा विश्व आकृष्ट होता है।

जो मैंने देखा

संवत् 2032 में अपने आराध्यदेव मेवाड़ भूषण पूज्य गुरूदेव श्री प्रतापमल जी महाराज के साथ औरंगाबाद में आपके दर्शन का सर्वप्रथम सौभाग्य मिला। मैंने उस वक्त अनुभव किया, कि महासतीजी म० के जीवन में नम्रता, सरलता, सौम्यता, संयम-निष्ठता के गुण ठूंस-ठूंस कर भरे हुए है। उनके सुदीर्घ संयमी जीवन के प्रति मेरी हार्दिक शुभकामना।

- गौतम मुनि 'प्रथम'
(शास्त्रज्ञ, विद्वान संत, श्रमणसंघ)

श्लाघनीय जीवन

महासती कौशल्या देवी जी का जीवन श्लाघनीय है। उनके प्रेरणास्पद प्रसंग एवं आलोकमय उद्‌बोधन का लाभ जन-जन तक पहुँचाना एक बहुत बड़ी सेवा है।

- साध्वी मगन श्री
(उपप्रवर्तनी, श्रमणसंघ)

वरमेको गुणी पुत्रो

सिंहनी एक ही पुत्र पैदा करती है और सुख से सोती है। गुणज्ञ शिष्या एक

'चेहरा' पुस्तक के पृष्ठ की तरह है, जिसे पढ़ा जा सकता है।

भी हो तो वह हजारों से श्रेष्ठ है। मुझे अपनी शिष्या पर नाज है, कौशल्यादेवी जी श्रमणी-संघ की दीप्तिमान साध्वी है।

-साध्वी केसरदेवी
(पंजाब उपप्रवर्तनी, श्रमणीसंघ)

सच्ची साधिका है तो कौशल्या देवी जी

"तन को योगी सब करे, मन को विरला कोय।
सहजो सब सिद्ध पाइये, जे मन योगी होय॥"

महासती श्री कौशल्या जी के तप, त्याग व ज्ञान का प्रभाव इतना प्रबल है, कि जन-जन को मन सहसा बोल उठता है, कि सच्ची साधिका है, तो महासती कौशल्या जी हैं। आपकी वाग्मिता, आपके कार्यकलाप, आपका चिंतन वैराग्य से परिपूर्ण है।

साधनामय जीवन की कसौटी साधक के अन्तर कषायों की कृशता से ही परिलक्षित होती है। वीतरागता के कुछ बिंदु जब साधक के जीवन में घुल-मिलकर एक रस हो जाते हैं तो आत्मा में एक रासायनिक शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। उस शक्ति के समक्ष भौतिक शक्तियाँ घुटने टेक देती है। महासती कौशल्या जी में हम इसका अनुभव कर सकते है।

-साध्वी कौशल्या
(पंजाब उपप्रवर्तनी, श्रमणसंघ)

विनम्रता और विद्वता का अनूठा संगम

उभरते यौवन में संसार-विरक्ति की कठोर साधना अपनाकर जैन जगत में

किसी महान व्यक्तित्व की महानता को संप्रेषित करने के लिये किसी महान व्यक्तित्व की ही अपेक्षा रहती है।

अनूठा स्थान प्राप्त करने वाली महासाध्वी श्री कौशल्या जो के समीप लगभग एक मास का समय व्यतीत करने का सौभाग्य मुझे मिला।

आप सतत स्वाध्याय निरत या आत्म-ध्यान लीन रहती है। विद्वत्ता आपके जीवन का अनुपम श्रृंगार है।

-साध्वी आज्ञावती
(पंजाब उपप्रवर्तनी, श्रमणसंघ)

महान जीवन

महासती कौशल्या देवी जी का जीवन महान है। मृदु व्यवहार और मिलनसारिता के कारण राजस्थान में जिधर भी आपका विचरण हुआ, जनता आपसे बहुत प्रभावित रही।

-साध्वी प्रेमवती
(मेवाड़ सिंहनी निर्भीक वक्ता, श्रमणसंघ)

गुणों की अपार सिंधु

महासती कौशल्या जी के बारे में मैं क्या कहूँ, वे गुणो की अपार सिन्धु है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की धनी हैं। कुशल उपदेशकर्त्री हैं। कुशल मार्गदर्शिका है। साध्वी-समुदाय की प्रेरणास्रोत हैं।

- साध्वी कैलाशवती
(उपप्रवर्तनी, श्रमणसंघ)

जिस जीवन का लक्ष्य असत् से सत् की ओर बढ़ना है, वह सदा अभिनंदनीय होता है।



गंगा सा निर्मल जीवन

ज्ञान, दर्शन, चारित्र के दिव्य आलोक से सम्पृक्त महासती कौशल्या देवी जी महाराज का विराट व्यक्तित्व जैन साधना के दुर्गम कंटकाकीर्ण पथ पर तप, त्याग, करुणा, सौम्यता, सरलता एवं सेवाभावना से आप्लावित होता हुआ पतित पावनी सलिला गंगा की तरह निरंतर अविश्रान्त, अविचल गति से आगे बढ़ रहा है। उनका अभिनंदन करना हमारी अध्यात्म प्रधान भारतीय-संस्कृति का अभिनंदन है। उनके तपोमय जीवन के प्रति मै श्रद्धानत हूँ।

-साध्वी रमेश कुमारी
(पंजाब उपप्रवर्तनी, श्रमणसंघ)

ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधिका

पूज्या महासती श्री कौशल्या देवी जी महाराज से कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली गुड़मंडी में दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय की आत्मीयता आज भी स्मृति पट पर अंकित है।

आपने कहा, कि व्यक्ति आलस्य व मोह वश अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पाता, यह उसकी विडम्बना है।

आपने ज्ञान को अनुबंधित कर ज्ञान की आराधना की। श्रद्धा को आत्मा से सम्पृक्त कर दर्शन की आराधना की, तथा समस्त कर्मो को अस्त करने रूप चारित्र

इतिहास व्यक्ति को नही पूजता, उसके भीतर रहे हुए गुणो को पूजता है।

की आराधना की, इसीलिये आप सबकी अर्चनीय, वंदनीय, पूज्यनीय एवं अभ्यर्थनीय है।

-साध्वी रविरश्मि
(उपप्रवर्तनी, श्रमणसंघ)

श्रमणी-संघ का कोहिनूर हीरा

मेरी सद्गुरूणी श्री स्वर्णाजी महाराज एवं महासती कौशल्या देवी जी महाराज दोनों ने लाहौर में युवाचार्य श्री शुक्लचंद जी म०सा० के पावन चरणों में जैनागमों का अध्ययन किया था, दोनों में अतुल स्नेह था। आज दोनों साध्वियों की भव्य जोड़ी मोहनवाटिका का सुरभित सुमन बनकर श्रमणी संघ में संयम-साधना की अनुपम महक लुटा रही है।

शिष्य और पुत्र तो सभी को मिल जाते है। किंतु शिष्यनिधि व पुत्रनिधि किसी-किसी को ही मिलते है। आप खैरातीलाल जी की पुत्री-निधि और श्री केसरदेवी जी की शिष्या-निधि हैं, जिस पर जैन समाज को नाज है। ये समाज की कोहिनूर हीरा है, इस हीरे की हीरकजयंति हो, यही मंगल मनीषा।

- साध्वी, निर्मल कुमारी, दिल्ली
(साध्वी रत्ना स्वर्णा जी म० की सुशिष्या)

महापुरूषों के वदन, वचन और नयन में सर्वत्र प्रसाद गुणमयी मंदाकिनी प्रवाहित होती है।

प्रशांत व गंभीर महासती

महासती श्री कौशल्या देवी जी अपने नाम के अनुरूप ज्ञान और क्रिया में कुशल है। आपके विषय में 'प्र' उपसर्ग पूर्वक कहना चाहती हूँ, कि आप शांत ही नही, प्रशान्त है। और जितने प्रशान्त है उतने ही गम्भीर भी। प्रशान्तता और गम्भीरता का मणि-कांचन संयोग का नाम है- पूज्या महासती श्री कौशल्या देवी जी महाराज।

- साध्वी स्मृति, एम०ए०,
(उपप्रवर्तनी स्वर्णकांता जी म० की प्रशिष्या)

मेरी श्रद्धेया

सूर्य और चंद्र की तरह निरंतरता लिये हुए श्री कौशल्या देवी जी महाराज मेरे जीवन में दिशावबोधक के रूप में सदाकाल श्रद्धेय रहेंगी। एक अनगढ़ पत्थर यदि कुशल शिल्पी के हाथों में पहुँच जाए, तो वह श्रेष्ठ मूर्ति का आकार ग्रहण कर लेता है। मेरा जीवन भी उसी अनगढ़ पत्थर सदृश था, जिसे बीस वर्ष पूर्व महासती जी ने संस्कारित व परिमार्जित किया। आपश्री की दीक्षा-स्वर्ण जयंति पर मेरे हार्दिक श्रद्धा-सुमन स्वीकार करें।

- साध्वी उर्मिला श्री 'निर्मल'
(जैन सिद्धांतशास्त्री, श्रमणसंघ)

पवन प्राणवायु के बदले उनकी कीमत वसूल नही करता।



गुलाब का फूल

महासती जी का जीवन गुलाब का फूल है। जो मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट करता है। आपने हर प्रांत की कन्याओं को संयम-मार्ग पर आरूढ़ कर विश्वबंधुत्व की भावना का प्रसार किया। आपके चरणों में हमारा शत-शत वंदन !

-साध्वी संतोष कुमारी, जम्मू
(निर्भीकवक्ता, श्रमणसंघ)

भावार्पण

महिमामयी महासाध्वी श्री कौशल्या देवी जी की शांत, सौम्य, संयमी जीवन का दर्शन करने वाले का रोम-रोम कह उठता है - 'धन्य है यह जीवन ! धन्य है यह संयम !

आपके कल्याण-पदों मे दिशाबोध प्राप्त करने वालों मे मैं भी एक सौभाग्यशालीनि आत्मा हूँ, मेरा रोम-रोम आपके चरणों में श्रद्धानत है।

- साध्वी अक्षय श्री 'आखा'
(डबल एम०ए०, जैन सिद्धांतशास्त्री, श्रमणसंघ)

सूर्य को प्रकाश के बदले प्रशंसा की आकांक्षा नही रहती - आ.देवेन्द्रमुनि

सरल-सरस महासती जी

परम सौभाग्य से श्री कौशल्या देवी जी म० के पावन दर्शन आदर्श नगर, जयपुर में सन् १९९० में हुए। कई बार ज्ञान-चर्चा, प्रवचन आपसी व्यवहार में आपके लुभावने व्यक्तित्व के दर्शन हुए। नख से शिख तक सरलता की किरणे प्रस्फुटित होती प्रतीत होती हैं कहीं लुकाव, छिपाव नहीं, दुराव नहीं, मान नहीं, संकीर्णता नहीं। अतंतः मेरी आस्था महासती जी के प्रति घनीभूत होकर अभिव्यक्ति का पथ खोज रही है, परंतु शब्द सदा वामन ही रहेंगे। अतः यही विराम।

- साध्वी तरुण प्रभा 'साहित्यरत्न'
(स्व. युवाचार्य मधुकर मुनि जी की शिष्या)

इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व

मैंने अपनी आँखों से देखा, महासती कौशल्या जी के इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व को। आप ज्ञान का सागर हैं, पर ज्ञान का अभिमान नहीं। आपकी कृति की आकृति में और प्रकृति की संस्कृति में सहजता व सरलता टपकती है। एक कवि के शब्दों में -

" करते है कर्त्तव्य किंतु जरा अभिमान नहीं है।
फूल खिला है, पर खिलने का मान नहीं है।
सर्वस्व किया समर्पण निज जीवन को,
उनकी महिमा का होता कुछ अनुमान नहीं है।"

- साध्वी मनोहर कंवर 'साहित्यरत्न'
(युवाचार्य स्व. मधुकर मुनि जी की शिष्या)

नदी सब कुछ देकर भी न दी कहाना ही पसंद करती है।

एक दिव्य-विभूति

जिन्होंने मेरी-जीवन-बगिया को संवारा

जैसे हम कभी किसी बगिया के समीप से गुजरते हैं तो मन प्रसन्न हुए बिना नही रहता, एक क्षण के लिए कदम वहाँ रुक जाते है, सुगंध भीतर तक पहुँच जाती है, ठीक यही बात है दिव्य-विभूति अध्यात्मयोगिनी महासती पू. श्री कौशल्या श्री जी म. के जीवन में। जो भी कोई इनके ईर्द-गिर्द रहता है, जो इनके एक बार दर्शन कर लेता है, उसका मन प्रसन्न हुए बिना नहीं रहता और उसके कदम स्थिर हो ही जाते हैं, क्योंकि उनके सद्‌गुणों की सुगंध अद्‌भूत प्रभावक है।

इनके जीवन की यह अद्वितीय विशेषता रही है कि अपने सान्निध्य में आने वाले हर साधक की जीवन-बगिया को इन्होंने संवारा है। मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानती हूँ, कि महासती पू० श्री कौशल्या देवी जी म० ने मेरे जीवन को संवारा। दुर्गम जीवन को सुगम बनाने के लिए कुछ उपाय बताये। उन्होंने कहा-जीवन में प्रकाश होने के बाद (आँखो के खुल जाने के बाद) जब तक हम चलेंगे नहीं, तब तक पहुँच नहीं सकते और चलने के लिए पाथेय रूप में उन्होंने मुख्य दो शिक्षा मुझे हर समय दी - जिसमें पहली शिक्षा है, स्वावलंबन - जो मुक्ति का आधार है। वे कहते हैं, हमें जीवन में जो भी कुछ शुभ-अशुभ मिल रहा है उसे अपने बोये गये बीजों का फल मानकर स्वीकार करो। यदि उसका तिरस्कार या प्रतिकार करेंगे तो कर्म-परंपरा बढ़ती जाएगी, अतः स्वयं को जिम्मेदार-आलंबन मानकर यात्रा प्रारंभ करो तो सफलता तुम्हारे हाथ है।

दूसरा जीवन-बोध उन्होंने यह दिया कि अपने जीने के दृष्टिकोण को बदलो क्योंकि धर्म का आधार दर्शन है। यदि वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति को सही ढंग से देखना है तो वे कहते है, इसी का नाम सम्यग्दर्शन है - "वस्तु के सत्य स्वरूप को सामने रखकर उसका उपयोग करो, व्यक्ति के साथ जीना है, तो उसकी अच्छाई में जागो और बुराई में सो जाओ, एवं परिस्थितियों को विधायक दृष्टिकोण से देखो।" ये उनके अनमोल वचन थे जिसने मेरे संयम-जीवन के कदमों को स्थिर किया, सशक्त

'पुष्प' सुगंध का प्रशस्ती पत्र नहीं चाहता।

बनाया और सही दिशा मे आगे बढ़ाया। ऐसी महान् आत्मा का उपकार (ऋण) मैं जन्मों-जन्म तक नहीं भूला सकती। हर क्षण की भावना यही है कि आपकी वात्सल्य धारा मुझ पर हमेशा बहती रहे एवं आपकी जीवन-सुगंध सदियों तक इस संसार के प्रत्येक मानव-मन को सुवासित करती रहे।

- साध्वी कृपा श्री, दिल्ली
(जैन सिद्धांताचार्य, श्रमणसंघ)

अध्यात्मयोगिनी : संयम साधिका

धर्म साधना में, तप आराधना में पुरुष से भी अधिक साध्वियों की भूमिका रही है। महासती जी का दो वर्ष पूर्व जयपुर में चातुर्मास हुआ, उस समय मैं कई बार आपके सम्पर्क में आया। आपकी विदुषी शिष्याओं को देखकर मेरा हृदय आपके प्रति आस्था से भर उठा। आपकी शांत मुखमुद्रा को देख अतीत की कल्याणी साध्वियों की झलक आपमें दिखाई दी।

- डॉ. नरेन्द्र भानावत
(हिंदी प्रोफेसर रा.वि.वि., जयपुर)

मंगल-भावना का स्वर

श्रद्धा, समर्पण, करुणा, सेवा, त्याग की देवी कौशल्या देवी जी के दर्शन व सान्निध्य का अनेक बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके नयनों से निर्झर की तरह प्रवाहित करुणा व स्नेह आपके व्यक्तित्व को मंडित करते हैं। अभिनंदन के इन स्वरों में श्रद्धा और मंगलभावनाओं का मेरा स्वर भी सम्मिलित करें।

-चंदनमल 'चाँद'
(महामंत्री, भारत जैन महामंडल)

प्रशंसा से निरपेक्ष सूर्य को मानव भक्ति युक्त सिर झुकाता है ।
- आ. देवेन्द्रमुनि

शांत स्वभावी महासती

आपका स्वभाव अति ही शांत है। इसी स्वभाव से आप जन-जन की श्रद्धेया बन गई है।

- शांतिलाल दुगड़
(भूतपूर्व, युवाध्यक्ष अ.भा.स्था. जैन कान्फ्रेन्स)

वन्दन-अभिनन्दन

महासती श्री कौशल्या जी का तो कहना ही क्या ? उनके सदृश साधना-आराधना की पावन प्रतिमूर्ति दीया लेकर ढूँढें, तो भी नहीं मिलेगी। आपके साध्वी मंडल का अनुशासन एवं प्रेम देखते ही बनता है।

- के. हस्तीमल सीसोदिया बैंगलोर
(अध्यक्ष, अ.भा.श्वे. जैन का युवा शाखा कर्नाटक प्रान्त)

सैकड़ों में एक हैं ये

मैंने सैंकड़ो साधु-साध्वियों के दर्शन किये, परंतु मुझे कौशल्या जी जैसी शांत, सौम्यमूर्ति, गंभीर-मना साध्वी दूसरी नहीं मिली।

-भंवरलाल गोठी
(अध्यक्ष, मद्रास)

महापुरुष कौन? अन्य में जैसा परिवर्तन अपेक्षित समझे वैसा परिवर्तन पहले खुद में करे।

मेरी श्रद्धा-केन्द्र

महासती कौशल्या जी ने मेरे मन में जो स्थान बनाया है। वह आज तक अन्य कोई न बना सका। वे मेरी श्रद्धा हैं। किसी भी प्रसंग को, किसी भी परिस्थिति को सहज रूप में किस तरह से वे निपटा लेती है, यह कला उन्हीं को आती है।

- उत्तमचंद्र रुणवाल
(महामंत्री, बैंगलोर शिवाजी नगर)

कोटि प्रणाम है बार-बार

महासती जी ने अपने मन की निर्मलता की, वाणी की सार्थकता एवं सपष्टता की, हृदय की कोमलता की, संकल्प की अजेयता की और जीवन-मूल्यों के गहन चिन्तन-मनन की अमिट छाप जन-जन पर छोड़ी है। आइये, हम सब आस्थावान होकर इन्हें नमन करें।

"शत-शत वंदन अभिनंदन है।
महाश्रमणी तुमको सहस्त्रबार।
चरणों में नत-मस्तक हो
कोटि प्रणाम है बारम्बार॥"

- भगवतंराव गाजरे (निम्बाहेड़ा)
(एम.ए., बी.एड., साहित्यत्न)

श्रद्धेय वह है, जिसकी श्रेष्ठता और महानता को जनमानस सानन्द स्वीकृति दे।

सदैव अभिनंदनीय

जैन धर्म की नाना विभूतियों के मध्य महासती कौशल्या देवी जी ने अपनी महत्साधना के कारण हमारे हृदय में आस्था का प्रदीप जलाने का अद्‌भूत कार्य किया है। वे हमारे लिये सदैव अभिनंदनीय हैं, एवं रहेंगी।

- डॉ० त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु'
बाराबंकी (उ०प्र०)

श्रद्धा की देवी

उन्नत भाल, श्वेत झिलमिलाते केश, लंबी भुजाएँ कृश काय देह में अथाह ज्ञान राशि, घनश्याम वर्ण, हृदय में शांति का अखण्ड साम्राज्य, शांत किंतु मनस्वी मेधा, अनुसमय शास्त्र-स्वाध्याय का अजय पाठ, पुरातत्त्व अन्वेषण में संलग्न प्रज्ञा, नित नूतन के प्रति जिज्ञासु मनोभावना, एकांत जीवन पद्धति, सेवाभाव की तन्मयता पूर्ण सम्पूर्ति, मौन किंतु गंभीर जीवन चर्या, लघु-गुरु के प्रति सहज वत्सलता वचन सिद्ध महायोगिनी महासाधिका का नाम है, महासती कौशल्यादेवी जी म. सा.।

स्वभाव की सौम्यता, वाणी की मृदुता, कष्टों के प्रति सहिष्णुता, तप-त्याग और उपासना के प्रति अनुराग, सरलता, स्थितप्रज्ञता आदि सभी महान गुण आपको इस युग की महान विभूतियों के समकक्ष खड़ा करते हैं।

आपके दर्शन मात्र से ही वासना की गंदगी, विषयों की बन्दगी, परिग्रह की जिन्दगी पर विराम लग जाता है। सरलता, स्नेह, सादगी एवं सत्य पर आस्था दृढ़ होती है।

आपकी भद्रता ने सर्वप्रथम लारेन्स रोड में दर्शन कर मेरे अपरिचित मन को

संत का कंठ मौन और आचरण मुखर होता है।

तत्काल आकर्षित कर लिया। समाज की हर एक इकाई आपको श्रद्धा की दृष्टि से देखती है।

डॉ० ए० पी० जैन
लारेन्स रोड, दिल्ली

वंदन हो आपको

जिनको बंदन करने को,
उत्सुक है यह माथ।
अभिनंदन है आपका
श्री कौशल्या देवी महाराज॥

- डॉ नरेन्द्र जैन, चरखी दादरी
(एम०ए०.इतिहास पुरातत्त्व, एम०एड)

श्री सदगुरुणी

परम श्रद्धेया सद्गुरूणीजी श्री कौशल्या जी म० इस युग की एक महान साधिका हैं । ये अपने संकल्प शक्ति से भोग को छोड़कर योग की ओर बढ़ी तथा आज एक आध्यात्मयोगिनी बन गई।

आज भी हजारों-हजार साधक उनके पवित्र जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे इस पावन प्रसंग पर श्रद्धा सुमन समर्पित करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मेरी यही हार्दिक कामना है कि महासती जी का जीवन

प्रतिभा अपना मार्ग स्वयं निर्धारित कर लेती है।
और अपना दीपक स्वंय लेकर चलती है।

हमे सदा सर्वदा प्रेरणा देता रहे।

सुरेशचंद्र जैन
महामंत्री
श्री. श्वे. स्था. जैन समाज
बड़ौत (मेरठ)

जैन धर्म की ध्वजा : महासती कौशल्याजी

आत्मयोगिनी परम श्रद्धेया महासती श्री कौशल्या देवी जी महाराज साध्वी समाज की चमकती हुई मणि है। आप मितभाषी, आगमवेत्ता तथा सरलात्मा महान साध्वी है। सदैव धर्मध्यान, अध्ययन-अध्यापन करना ही उनकी जीवन चर्या है।

मेरे ऊपर महा सतीजी का सदैव आशीर्वाद रहा है। महासतीजी वास्तव में जैनधर्म की ध्वजा है, जो सदा फहराती रहेगी। ऐसी महान सती को बार-बार शत-शत वन्दन!

- जे० डी० मित्तल
(भूतपूर्व महामंत्री, जैन महासंघ दिल्ली)

मंगल मनीषा

"खरा रंग, मंझला कद, सौम्य एवं प्रसन्नचित्त मूर्ति, मौन साधिका, अनुशासन प्रिया - इन सब बातों का सम्मिश्रण ही पूज्या कौशल्याजी का व्यक्तित्व है। दीर्घ संयम वाली साधिका का शांत चेहरा-सचमूच बिना हलचल वाली लहरों सा प्रशान्त सागर है।

खरा कहना, इनकी अपनी नियति है। शिष्याओं के लिये, उनका जीवन प्रकाश स्तम्भ सा पथप्रदर्शक हैं जीवन जो जीभ पर है, वही हृदय में है। आप श्री के आरोग्य एवं दीर्घ संयम पर्याय की शुभ कामनाएँ एवं शीघ्र सिद्धि वरे, यही मंगल मनीषा है।

ज्ञानराज मेहता
(महामंत्री, बैंगलोर)

कृशकाय तन में महान् व्यक्तित्व

वीतराग-पथ को आलोकित कर अपनी संयम-साधना से महान् कीर्ति अर्जित करने वाली परम विदुषी महासती श्री कौशल्या जी म० जैन जगत की उज्जवल तारिका और श्रमण संघ की अनूठी हस्ती है। कृशकाय तन में अपने महान् व्यक्तित्व को छिपाये वे सत् चित् आनंद की महक लुटा रही है। मेरा शत-शत वंदन, अभिनंदन।

-मिट्ठालाल मुरड़िया 'साहित्यरत्न'
बैंगलोर (कर्नाटक)

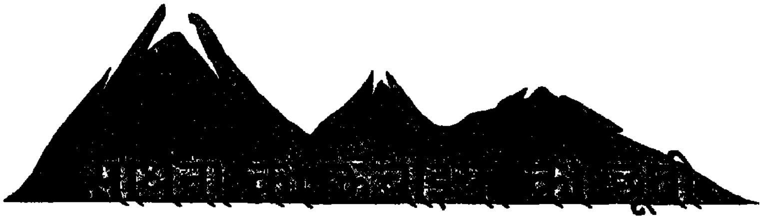


सुरभित गुलाब

महासती जी खिले सुरभित गुलाब के पुष्प समान हैं। सभी को आकर्षित, सुरभित कर लेना उनका सहज स्वभाव बन गया है। जिन-जिन प्रांतो में उनका विचरण हुआ है। उनकी असरकारक छाप सर्वत्र मौजूद है।

- मोतीलाल सुराना
इन्दौर (म०प्र०)

आप भी वही उदारता बरतें, जो ईश्वर ने आप के साथ बरती है।



परम आराध्या महासती कौशल्या देवी जी

परम विदुषी एवं घोर अध्यवसायी कौशल्या देवी जी पंजाब प्रवर्तक **श्रीफुलचन्द जी म० 'श्रमण'** से प्रथम ज्ञान-रश्मि प्राप्त कर आज तक ज्ञान एवं योग के अछूते सोपानों को पार करती जा रही है। कहा जाता है, कि अध्ययन, स्वाध्याय का सहयोगी है। तथा स्वाध्याय, ध्यान एवं नवीन ज्ञान की विविध किरणें प्रस्फुटित करता है। महासती जी का लक्ष्य ही है - ज्ञान और ध्यान। इसी से वे महानता के सौपानों को पार करती जा रही है। मेरा कोटि वंदन एवं नमन।

- हरबंसलाल जैन
(Ex. M.C. कोटा)

जीवन यात्रा

जैसे ट्रेन में यात्रा करते हुए प्रत्येक मुसाफिर का सफर साथ-साथ ही तय हो रहा है, अर्थात् हर अगला स्टेशन साथ-साथ आ रहा है, किन्तु सामान व टिकट अपना-अपना होता है। इसी प्रकार जिन्दगी रुपी सफर तो अमीर, गरीब, साधु, डाकू, माता-पिता और पति-पत्नी आदि सब का साथ-साथ व्यतीत हो रहा है, परन्तु आयुरुपी टिकट व कर्म-फल भोगरुपी सामान अपना-अपना है।

अभिनंदन की
वेला,
अनुभव की पाती

जीवन का पहला पन्ना

-साध्वी स्वर्णकांता अंबाला
(उपप्रवर्तनी, श्रमणसंघ)

आप कौशल्या देवी जी म० की बचपन की सखि हैं,
उनकी अनुभूति, उन्हीं के शब्दों मे पढ़िये। (बचपन की यादें)

साध्वी रत्ना श्री कौशल्या जी महाराज न केवल मेरी अग्रजा साध्वी है, अपितु मेरे बचपन की प्रिय सखि भी है, जो मेरे लिए गौरव की बात है। हम दोनों के घर की एक ही दिवार थी, अतः जब इनके पिता श्री खैरातीलाल जी जैन प्रातः के समय भक्तामर एवं अन्य स्तोत्रों का लयबद्ध पाठ करते, तो उसे श्रवण कर मेरा मन भाव-विभोर हो उठता। इस प्रकार इनके घर के संस्कार धार्मिकता से ओतप्रोत थे।

एक बार लाहौर में एक प्रकाण्ड जैन ज्योतिषी आया, उसने कहा - "तुम तो अनाथी मुनि की तरह बनोगी और तुम्हारी सखि कौशल्या जी राजमती जी की तरह संयम के पथ पर बढ़ेगी।" ज्योतिषी का यह कथन अक्षरशः सत्य निकला, जब उनकी सगाई स्यालकोट के एक प्रतिष्ठित परिवार में तय हो गई, एवं कुछ समय पश्चात् लड़के ने श्यामवर्णी लड़की से शादी करने से इंकार कर दिया, तो इनके मन में बीज रूप से विद्यमान वैराग्य भावना वृक्ष के रूप में उभर आई। और माता-पिता के द्वारा बहुत समझाये-बुझाये जाने पर भी इन्होंने विवाह के बंधन में बंधना स्वीकार नहीं किया, अपितु आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया।

बचपन की एक अन्य घटना, जो कई बार मेरी आँखों के सामने घूम जाती है। उसे लिखने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रही। वह यह है, कि हम सखित्रय-कौशल्या जी, स्वर्णा जी और मैं, लाहौर में चातुर्मासार्थ विराजित पंडित

स्मृतियाँ हाथी के पैरों की तरह होती है। वे मन की आर्द्रभूमि पर अपना गहरा चिन्ह छोड़ती है।

श्री शुक्लचंद्र जी महाराज के पास अध्ययनार्थ जाया करती थीं। पंडित जी महाराज शास्त्र का अत्यंत गहराई व सूक्ष्मता से अध्ययन कराते थे, अतः पढ़ने में बहुत रस आता था। मैं प्रारंभ से ही मजाकिया स्वभाव की थी, अतः कौशल्या जी ने मेरा नाम 'प्रमोद' रख दिया था। किन्तु कौशल्या जी को मैंने कभी हँसते हुए नही देखा, केवल एक बार किसी व्यक्ति के जूतों को देखकर हमारी हँसी छुट पड़ी। उस दिन मैंने सखी कौशल्या जी को प्रथम बार उतनी जोर-जोर से हँसते देखा था। कौशल्या जी स्वभाव से ही अत्यंत गंभीर एवं सहनशील थीं।

एक प्रसंग जो मेरे दिल को सदा छूता रहा, वह यह है कि उनकी वैराग्य भावना देखकर माँ-बाप की चिंता बढ़ने लगी, अतः एक जाने-माने ज्योतिषी पंडित जो अक्सर इनके घर पर आया करते थे, उसके समक्ष माताजी ने इनका हाथ दिखाया। हाथ देखते ही पंडित जी कहने लगे -

''यह गृहस्थ की झंझटों में नही पड़ेगी। इसका झुकाव तो भोग की ओर न होकर योग की ओर है। परंतु अगर आप कहें, तो मैं उसकी प्रबल वैराग्य भावना को कुछ ही दिनों में हटा सकता हूँ।

यह कहकर उस पंडित ने अपनी योगमाया इन पर फैलानी शुरू की, परंतु कौशल्या जी पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तो इनकी माता जी ने कहा -**'तुम्हारी योगमाया का तो इस पर कोई असर नहीं हुआ, अब मैं अपनी मोहमाया से इसे इस मार्ग से हटाने का प्रयत्न करूँगी।'** माँ ने इन्हें भाँति-भाँति से समझाया, प्रलोभन दिया, किंतु माँ की ममता और पिता की कठोर परिक्षाओं से भी इनका वैराग्य-सुमेरू विचलित नहीं हुआ तो हारकर परिवार वालों को आज्ञा देनी पड़ी। इतने बड़े घर में पलने वाली मेरी प्रिय सखी त्यागपथ की पथिका बन गई।

यद्यपि इन्होंने श्री केसरदेवी जी का शिष्यत्व स्वीकार किया, परंतु ज्ञानार्जन श्री मोहनदेवी जी म० से किया। ज्ञान से मेरी सखी अतिजात की श्रेणी में आती है। इनकी गुरणीजी से जब मैं मिली, दीक्षा के 13 वर्ष बाद, सन् 1960 में तो उन्होनें बड़े गौरव के साथ बताया, कि - **''जिस ढंग से कौशल्या ने ज्ञानार्जन किया, मैं आज तक भी किसी साध्वी को नहीं करा सकी।''**

सन् 1991-92 में दिल्ली चातुर्मास हुआ तब भी उनसे मेरा मधुर मिलन हुआ, सन 94 में अंबाला में भी साथ-साथ रहे। **'मेरे मन में अपनी सखी श्री**

कोई भी विद्या पौधे की तरह होती है, उसमें निष्ठा की खाद व एकाग्रता का पानी हो तो बढ़ती है।

कौशल्या जी के प्रति इतनी श्रद्धा व विश्वास है कि उनके नेत्रों में अपने लिये गुरुत्व की झलक मिलती हैं। आज जब इनका शिष्या-परिवार देखती हूँ तो मन बल्लियों उछलता है, कि इनकी शिष्याएँ कितनी विद्वान है। यह सब इनके पुण्य व गुणों का प्रताप है। कम बोलना, धीरे चलना, जब बात करना, मीठास घोलना - इनके विशेष गुण है।

अंत मे मैं यही कहूंगी -

"तेरे करिश्मे भटकों को राह दिखाते रहें।
तेरे तप और त्याग के तराने हम सुनाते रहें।
तू ज्ञान ज्योति है, सीप का असली मोती है।
'केसर' की तू सबसे प्यारी न्यारी बपौती है॥"

★ ★ ★ ★ ★

कौनसा रत्न प्रस्तुत करूँ ?

- साध्वी विमलाश्री जी
(एम०ए० जैन सिद्धांन्ताचार्य)

अध्यात्म-साधना की धनी परम-पूज्या साध्वी शिरोमणि श्री कौशल्या देवी जी महाराज के विषय में लिखते हुए हर्ष है, गर्व है, आनंदानुभुति भी है, तथा यह विचार भी है, कि इस रत्नों के खजाने में से कौन से रत्न उठाकर प्रस्तुत करूँ ? वस्तुतः महासती जी का जीवन दिव्य गुण रूपी रत्नों से जगमगाता जीवन है, जो भी चरण-शरण में आया उसने प्रकाश पाया।

रावी तट पर बसी लाहौर की पुण्यभूमि पर उदित हुआ यह सूर्य भारत की परिक्रमा करता हुआ जन-जन के लिये प्रकाशक बना हुआ है।

आप दीर्घदृष्टा हैं, वाणी का प्रयोग गंभीर चिंतन के बाद करते हैं। कम बोलने पर भी सभी को प्रभावित कर लेते है। आप किसी भी बात को सहज और सरल ढंग से ग्रहण करते है। सुखद अथवा दुःखद प्रसंग में एक जैसी समभाव की मुद्रा

बनाये रखना आपकी प्रशंसनीय विशेषता है।

हर व्यक्ति में अपने-अपने गुण होते है। किन्हीं में सेवा का गुण होता है, तो कोई प्रखर वक्ता, कोई स्वाध्याय में तल्लीन है, तो कोई तपस्या गुण से दीप्त है । कहने का अभिप्राय प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न विशेषताएँ होती हैं। प्रारंभ से ही आप श्रमशील-सेवाभावी रहे हैं। कठिन से कठिन कार्य में भी कभी आप घबराये नही, बड़े उल्लास के साथ आप उसे शीघ्र पूर्ण करते है।

सेवा के लिये आप हर क्षण तत्पर रहते है। दिन हो या रात जब कहो तभी तैयार, छोटा हो या बड़ा सबकी सेवा में लग जाते है। आपश्री ज्ञान की गहराई से युक्त, प्रखरवक्ता, शास्त्रज्ञ होते हुए भी सेवाभाव में तत्पर हैं, यह आपकी अनूठी विशेषता है।

आपका प्रवचन सुनते हुये श्रोता भाव-विभोर हो जाते हैं, क्योंकि आपकी प्रवचन-शैली सहज, सरल तथा अन्तहर्दय से निकलती हुई प्रतीत होती है।

आपने हमेशा इस मंत्र को अपनाया ' **अपनी न कहना सबकी सहना, रजकण बनकर रहना।**

"रज बिरज ऊँची गई नरमाई के पान।
पत्थर ठोकर खात है, करड़ाई के तान॥"

आप इसी नम्रता से महान बने है।

असीम पुण्योदय से आपकी चरण-शरण पाकर मेरे कदम साधना की ओर बढ़े। गुरूदेव ! मैं अनगढ़ पत्थर थी। धर्मदृष्टि से असंस्कारित थी। क्योंकि वीतराग-साधना की किरणें मुझे विरासत में नहीं मिली थी, जो कुछ पाया और जो कुछ समझा वह सब आपकी कृपा-दृष्टि से पाया।

गुरूदेव ! हम साधना आदि सभी दृष्टियों में अभी भी बालकवत् है। अतः कृपा-दृष्टि का वरद हस्त एवं शीतलछाया सदैव ऐसी ही बनी रहे, यही शासनेश से याचना एवं शुभ कामना है।

★ ★ ★ ★ ★

अमर बना पहचान, काम जनहित के करके।
छोड बुरे सब कर्म, रह अधर्म से डरके।।

यादों के झरोखों में से

- साध्वी सरोज श्री
(एम.ए., पी.एच.डी.)

क्या-क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता, शक्ति की गरिमा कमजोर है, पर मन भी नहीं स्वीकारता। अतः उससे बोले बिना रहा भी नही जाता।

गुरनी कौशल्या, जिसकी बुद्धि, निष्काम, जिसकी भक्ति वीतराग, जिसकी सेवा-भावना अपरिमित, जिसका ज्ञान 'नमो' की उज्जवलता से पूर्णताकी ओर निरन्तर अग्रसर, आत्मलीन चरित्र है, यश नामकर्म तो निष्काम श्रेष्ठता को अपने में ही समेट रहा हो, ऐसी गुणयुक्ता माता-वात्सल्य की साकार मूर्ति तेरे साथ बीते हुए क्षण 'यादों के झरोखे' से देखें।

तुझे मैने देखा, तेरे भक्तों ने देखा, पर जो भी अतीत में तुझे न देख सका, वह इन झरोखों से देखे और श्रद्धा के दरवाजे से आ कर तेरी गोद मे समर्पित हो जाए उसका जीवन धन्य हो उठेगा।

आओ और चलें यादों के झरोखों के पास इस महान रूप को देखें, प्रमुदित भावों की धुन अभिनन्दित स्वरों में मिला लें।

हाँ इस जीवन को कौन नहीं जानता, यह आत्मा प्रारम्भ से ही महान है। इसके विकास के रास्ते अपने आप निर्विघ्न बनते जाते है जैसा मैंने इस नित्य निरंजन, आत्म उपासिका से सुना वैसा ही आपको बता रही हूँ।

विरक्ता का तेज न सह सका

वीतरागता की इच्छुक इस ग्रन्थ नायिका को दीक्षा की आज्ञा नहीं मिल रही थी, दीक्षा ग्रहण करना भी जरूरी है। समाधान के लिए क्या उपाय हो सकता है ? पर मिल गई राह-सामायिक की पूर्णता के बाद पत्र लिखा जहाँ पहुँचना है वहाँ का संकेत दिया, पत्र को वहीं अपने साधना-कक्ष में रख दिया और यह ज्योति-रूपा, अखण्ड दृढ़ संकल्प को साथ लिए घर से निकल पड़ी। रास्ता परिचित तो था, लेकिन कोई

तुम अमृत के रूप कर दिया, तुमने क्षर का अक्षर।
धन्य हो गया, तुम्हे प्राप्त कर, यह भव का रत्नाकर

लोभी व्यक्ति पीछे लग गया था पर जैसे ही वीर बालिका ने पीछे मुड़कर उसकी ओर देखा तो उसके तेज को वह सह न सका भाग गया, मानों हवा के झोंकों ने एक झटके में अदृश्य कर दिया हो।

पेट की पीड़ा गायब

बहुत बचपन की याद प्रस्तुत कर रहीं हूँ, पेट की पीड़ ने मुझे असहाय सा बना दिया था, मैं उस समय सोच रही थी, मेरी ग्यारह वर्ष की अवस्था है यहाँ आकर तो फँस गयी। पता नहीं मेरी माँ मुझे मिलेगी या नहीं ? पर यही महान् आत्मा गुरनी कौशल्या ने अपने वरदहस्त आशीर्वाद के लिए आगे बढ़ा दिया अमृत-सागर में डुबकियाँ लगवायी। वाणी मुखरित थी '**बेबी ! धैर्य रखो, हम तुम्हारे पास ही है**' पता नहीं पीड़ा कब पलायन कर गयी।

मेरी भावना पूर्ण हुई

फिर याद आ रहा है - मम गुरनी कौशल्या का संयमित परिमित बोलना, पर जब भी बोलना मधुर बोलना तथा लाभ से भी खाली नहीं रखना। एक दिन मैंने कहा- "**महाराज श्री पिता श्री ने मुझे दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर दी है अब ये पूर्ण होनी चाहिए, मुझे चिन्ता हो रही है कहीं फिर आज्ञा के चीथड़े न बन जाएँ। "नहीं-नहीं, चिन्ता नहीं करो दीक्षा हो जाऐगी।**' मुझे विश्वास हो गया मेरी भावना पूर्ण होगी, उसी मध्य में विघ्न भी मेहमान बनकर आते रहे, पर गुरु का आशीर्वाद विघ्नों को स्थान नहीं देता वैसे ही वह आशीर्वाद रूप दिनकर भी विघ्न को कहाँ टिकने देता था?

ध्यान से ज्वर का प्रकोप शांत हुआ

एक बार यह पावन पवित्र ज्योति साधिका वीतराग-पथ पर चलती जा रही है, पर सिर की पीड़ा और ज्वर बार-बार आकर इस आत्मा के धैर्य को झकझोरता था। मैने देखा कि यह आत्मा भी अपने ध्येय में स्थिर इन झंझावातों की परवाह ही नहीं करती तब पीड़ा और ज्वर भागने में ही अपनी कुशलता समझते, उसी संदर्भ

शक्कर को कभी मधुरता का बोझ नहीं लगता।

में आपको बताऊँ-मेरी दीक्षा को एक वर्ष भी नहीं हुआ था, प्रथम चातुर्मास सन् 1948 में बड़ौतमंडी में था। मेरी गुरनी कौशल्या श्री को ज्वर हो रहा था, औषधी प्रयोग से ज्वर इस प्रकार उतरा कि तापमान अपनी सीमा पर भी नहीं रहा। सब घबरा गये। समाज के वरिष्ट अधिकारियों तक बात पहुँची सब कह रहे थे हम तो अभी उपचार रूप औषधि देंगे, लेकिन केसे? सूर्य भी अस्ताचल को चला गया, उस समय बड़ौत शहर में परमपूज्य मदनलाल जी म. विराजमान थे। उन्होंने कहा, कि वह हमारे साध्वी समाज की गरिमा हैं, यदि इंजैक्शन लगाकर तबीयत सुधार पर आ जाए तो मेरी आज्ञा है। पर गुरनी मैया ने अति धीमे स्वर में अपनी बात कही, मैं संयम में दोष नहीं लगाऊँगी और ये कष्ट तो कुछ ही क्षणों में मेरा पीछा छोड़ देगें" इतना कहकर वे ध्यान मग्न हो गयीं। सत्य को आँच कहाँ। कुछ समय में ही गुरनी मैया अपने को बहुत स्वस्थ महसूस कर रहीं थीं। लेडी डाक्टर ने भी देखा वह भी हैरान थी कि बिना औषधि के ही बिगड़ती स्थिति सुधार पर आ गयी। गुरनी मैया को पता था - **सयंम का जादू, दृढ़ता की औषधी।**

जब आँधी ने भी आज्ञा मानी

घटनाएँ गुरनी जी की महत्ता को स्पष्ट दर्शा रहीं थीं और हम उस अतीत को स्मरण के झरोंखो से देख रहें हैं। ग्रन्थ नायिका की तीसरी शिष्या मंजु श्री संयम पथ की अमरपथिका बनने जा रही है। दीक्षा-समारोह एक बहुत बड़े पांडाल में हो रहा है, हजारों-हजार जन उस आनन्द में निमग्न है, आंधी भी आ गयी अपने दल-बल के साथ। जनसम्मर्द इससे घबरा उठा, व्यवस्थापकों ने कहा अब क्या होगा? मंच पर विराजित साध्वी मंडल के मुँह पर भी घबराहट के भाव स्पष्ट हो रहे थे। तब संयमनिष्ठा गुरनीवर्या ने कहा कि, घबरा क्यों रहे हो कुछ अनिष्ट नहीं होगा, जो हो रहा है उसमें सहज रहो। पाँच मिनट उन्होनें ध्यान किया आँधी ने आज्ञा को स्वीकार किया चली गयी, जहाँ से आयी थी। आयी थी आनन्द में आनन्द मिलाने, परंतु चली गयी गुरनी जी का आदेश मानकर कि आँधी तुम्हारा यह नृत्य इस समय भयजनक हो रहा है अतः जाओ' यह चमत्कार का रूप नहीं अपनी शिष्या के प्रति आशीर्वाद एवं कृपाभाव था।

वही भाग्यहीन है, जो भाग्यशाली को देख ईर्ष्या की
अग्नि में जल रहा है।

ऑपरेशन सफल रहा

आजाओ, जरा और भी जान लो गुरनी मैया की विशेषताएँ जहाँ सत्य, कौशल्या नाम की महत्ता नाम की तरह निष्काम इस संयमी जीवन के साथ गति कर रहा है। मुझे स्मरण है त्रय रत्न की खान हमारे गुरनी जी सतत अध्यात्म रूप बनने के लिए गतिशील है। सेवा के अवसरों को सहजतम मानते है। एक बार मुझे कान का आपरेशन करवाना था, परन्तु समाज में कोई भी मानने के लिए तैयार न था ऐसे समय में क्या किया जाए। मैं गुरनी जी के पास बैठी हुई अपनी बात कह रही थी, कि वेदना सहन नहीं होती। आपरेशन के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। सबको डर है, कि आपरेशन सफल नहीं हुआ तो क्या करेंगे। पहले भी दो बार आपरेशन असफल रहा। मेरी इन बातों को सुनकर सेवा की साकार मूर्ति गुरनी कौशल्या श्री जी महाराज ने कहा कि मुझे विश्वास है यह प्रयास अवश्य सफल होगा। डाक्टर की सलाह के अनुसार आपरेशन करवा लेते है। सच ही सफलता सबके समक्ष थी।

शेर-चला गया

जिस समय भौगोलिक स्थल बीहड़ जंगल की तरह थे, मैं आपके साथ उस समय में बीती हुई बातों को बतिया रही हूँ। दिल्ली से अलवर जयपुर की ओर जा रहे थे, मार्ग में चलते हुए मैंने अपनी गुरनी कौशल्या जी को कहा कि वह सामने देखो, क्या है ? उन्होंने देखकर कहा कि सरोज यह शेर है पर डरना नहीं हमें कुछ नहीं कहेगा। वैसे भी मुझे गुरु की शरण में कभी भय नहीं लगता यह गुरनी जी का अतिशय है। साधारण भी जब गुरनी जी हमारे पास आए हुए होते तो हम सोचते हैं कि दरवाजे बंद नही करेगे। उस समय भी हम निर्भय थे प्रसन्नता थी कि हमें शेर देखने को मिला, शेर झाड़ियों में चला गया हम निर्भय होकर आगे बढ़ गए।

तांत्रिक कुछ नही कर सका

अब मैं भारत के एक ऐतिहासिक प्रसिद्ध स्थल में घुमा रही हूँ, उदयपुर में पिछोला घाट बहुत प्रसिद्ध है। वहाँ कोई तांत्रिक साधना कर रहा था, हम पाँच

इस संसार के जो भी तुम्हारे नजदीक हैं, सिर्फ तुम्हारे धन और अच्छे शरीर के ही मित्र है, यह ख्याल रखना।

साध्वियाँ शारीरिक आवश्यक कार्य के लिए गये हुए थे, मैं और मंजु श्री दोनों कुछ आगे बढ़ गये, नदी के पत्थरों पर खून के छींटे थे गुरनी श्री ने कहा कि सुनो - **आगे नही जाओ शायद यहाँ कोई शैतान हो।** पर जोश की निगाहों में सोचने की ताकत नहीं होती। बढ़ गये और थोड़ा नहीं, ज्यादा ही आगे बढ़ गये । तब वहाँ एक टीले पर देखा बीभत्स दृश्य दैत्य रूपाकर वहाँ तांत्रिक व्यक्ति बैठा है। उसके चारों ओर हड्डी, सामने आग की हाँडी मट्टी के ठीकरे तथा चीथड़े पड़े हुए है, तथा जोर-जोर से मंत्र का जाप कर रहा है। मैंने सोचा, कि इसकी एकाग्रता को रोक लगानी चाहिए। छोटे-छोटे पत्थर उठाकर निशाना बनाया, संयोग की बात निशाना चूका नहीं, वह पत्थर की पटक को जानकर आवेश में उठा। कौन साधना भंग कर रहा है ? मुझे देखा ही था कि मैं डर से काँपती हुई सिर पर पाँव रखकर वहाँ से दौड़ी तो बाहर आकर ही श्वास लिया। वहीं उदयपुर में एक शोभालाल जी मास्टर रहा करते थे। वे भी उतरियों में जाकर किसी देवी की साधना करते थे। उस तांत्रिक व्यक्ति ने उन्हें आकर सब स्थिति बतायी। शक्ल आदि का भी परिचय कराया। मास्टर जी वहाँ से लौटते हुए हमारे पास आए। उन्होने मेरी गुरनी जी की गुरनी केसर देवी जी महाराज को बताया कि कल जब सरोज जी बाहर निपटने गयीं थी वहाँ उन्होनें एक तांत्रिक को सताया, वह कह रहा था "**उनकी गुरनी जी की संयम शक्ति के समक्ष मैं पीछे हट गया, नहीं तो वहीं मार देता था, अगर अब सताया तो - ।**" मुझे बुलाकर पूछा गया। मुझ में झूठ निभाने की शक्ति कहाँ? तथा संयम में झूठ का सर्वथा त्याग था, गलती स्वीकार कर ली। यह चमत्कार गुरनी कौशल्या श्री की महत्ता को साक्षात करता है।

गिराने के बाद भी बच गई

घटनाएँ घट रही थी। दीप को प्रज्वलित करने के लिए कुछ आंतकित रूहानियों ने मुझे पीड़ित किया हुआ था। अचानक एक बार उन रूहानियों ने अपनी ताकत आजमाना चाहा। कोल्हापुर रोड महिला स्थानक के ऊपर हाल में खिड़की से नीचे मुझे पटकना चाहा। उसका पुरुषार्थ शुरू भी हो गया पर जहाँ मेरी गुरनी मैया हो वहाँ रूहानियों ताकतों में पुरुषार्थ के पश्चात् भी फल पाने का सामर्थ्य कहाँ? किसी कवि के भाव भी यही है -

---

मानव का अन्तःकरण ही ईश्वर की वाणी है । - बायरन

"गुरुदेव के चरण छुए जो, धर्म तीर्थ फल पावे।
जो आशीष वह दिल से दे, वह भगवान से भी टाली न जाए॥"

खिड़की से नीचे गिराने के पश्चात् भी मैं बीच में लटकी रही। तत्पश्चात् मुझे ऊपर उठा लिया गया। शाम को होश आया, तो पाया कि मेरे गुरनी कौशल्या देवी जी मेरे पास बैठे हैं और कहा कि **"बेबी डरना नहीं हम तेरे पास हैं हमने बचा लिया है।"**

तू मेरी नाक है

आगे-पीछे की यादों की बहार में हमने बहुत कुछ देखा । अब एक बात यह भी जाने कि हमारे साध्वी समुदाय की मुकुटमणि जिन शासन की जगमग ज्योति वीतरागता के उपासक उपासिकाओं की आस्था के केन्द्र महासती मोहन देवी जी महाराज अस्वस्थ है, परलोक गमन की तैयारी में है, उन्होंने संबंधित सभी वस्तुओं का सर्वथा परित्याग कर दिया। शिष्याएँ-प्रशिष्याएँ सम्पूर्ण परिवार उनको घेरे खड़ा था, अन्तिम विदाई के क्षण थे। उन सभी में वह, अपनी प्रशिष्या साध्वी रत्न कौशल्या श्री के दुपट्टे को अपनी नाक पर रखते हुए, निर्निमेश दृष्टि से निहारत हुए मानो कह रहे हों **"ऐ कौशल्या (आर्या) तू मेरी शान है। इस मोहन वाटिका की अद्भूत, त्रैकालिक, सुगन्धित पुष्प है।"**बस इन्हीं क्षणों के साथ अपनी ज्योति अपनी प्यारी शिष्या कौशल्या में प्रक्षिप्त कर वे प्रयाण कर गयीं। उनका चेहरा शाान्त सौम्य नजर आ रहा था कि मैनें जो कुछ पाया था वह अपनी प्रपौत्र शिष्या कौशल्या को दे दिया है।

खतरा टल गया

ये कोई कपोल कल्पित बाते नहीं सत्य का दिग्दर्शन है। मुम्बई मोहमयी नगरी घाटकोपर उपनगर है यहीं गुरनी जी अस्वस्थ है। ज्वर की डिग्री चार से कम ही नहीं होती। सब चिन्तित थे, महान आत्मा ने सबकी चिन्ता को देखा अनुभव किया, हमें फरमाया कि **'लोगस्स का जप निरन्तर एक दिन करो'** ओदश को पालने में देर कहाँ थी ? हम चारों गुरु बहनें सामाजिक व अपने कार्यो के साथ

क्रमिक समयानुसार लोगस्स कल्प कर रही थी। प्रतिक्रमण के पूर्ण होने के बाद जाप हो रहा था, अचानक कमरे में प्रकाश हुआ, किसी दैविक शक्ति ने आश्वासन दिया कि कोई खतरा नही है। हमने भी तत्पश्चात् अनुभव किया कि ज्वर रहा, पर कम हो गया और खतरा भी टल गया।

शून्य अंग गतिशील हो उठे

यादों की पायरिया बढ़ रही हैं मै भी आपको उस ओर ले जा रही हूँ। कर्नाटक की राजधानी बैंगलोर वहीं पर इन अभिनन्दनीय गुरनी जी को पुनः ज्वर हो गया डॉ. का परामर्श एवं रोगनिदान के पश्चात् उपचार भी कर रहे है लेकिन औषधी विपरीत और रोग विपरीत दोनों के तालमेल न बैठने से शरीर पर गलत असर हुआ सब फिर चिन्तित थे। गुरनी मैया का कमर से नीचे तक का हिस्सा शून्य सा हो गया तथा हाथ-पाँव आदि की चमड़ी भी विकृत हो गयी। अब क्या होगा। उस समय अमृतवाणी गुरुमैया ने कहा, कि अब मैं ध्यान साधना से स्वस्थ होऊँगी। मुझे औषधी नहीं चाहिए। वे अनवरत ध्यान साधना करने लगी, देखते-देखते शून्य पड़े अंग गतिमान होने लगे, वे स्वस्थ हो गई। यह किम्वदन्ती नहीं है, सत्य का साक्षात्कार करा रही हूँ। शून्यता एवं देहिक विकृति दोनों ही ठीक हो गयी। यह देवी चमत्कार नहीं संयम-साधना का प्रत्यक्ष फल है।

गुरु गणेश के दर्शन

संस्मरणों का दौर जीवन गति के साथ चलता ही रहता है हम भी पुलिन्दों की तरह यादों का गमला बनाकर उसे संजोए है। आओ मिलकर सौन्दर्य दर्शन करें। मद्रास से गति शुरू हुई अहमदनगर गुरु आचार्य आनन्द ऋषि के चरणों में पहुँचकर प्रगति, एवं प्रतिभा को संयमी जीवन प्रदान करने के लिए। कदम बढ़ते गये, हम तिरुपति बाला जी देखने गये लेकिन थकान और क्षुधा ने मुझे अस्वस्थ बना दिया जिससे अवस्था चिन्ताजनक हो रही थी। मेरे गुरनी जी घबरा गये। रात थी उपचार भा नहीं हो सकता था, तब कर्नाटक केसरी गुरु गणेशीलाल जी महाराज के चरणों में प्रार्थना की गुरुदेव इसे स्वस्थ कर दें। गुरु तो अपनी शिष्या पर बेहद प्रसन्न थे ही, मेरी गुरनी जी ने बताया कि ऐसा अनुभव हुआ गणेश गुरु ने दर्श दिए और कहा

'णमोक्कार' प्रसन्न आत्मा का संगीत है, जागृत आत्मा का उद्घोष है।

कि "चिन्ता न करो अभी कुछ समय में ही यह आपकी शिष्य स्वस्थ हो जाएगी।" यही तो संयम की श्रेष्ठता थी, प्राण लौटा लायी।

गुरु भाव से युक्त

कभी मैं गुरनी जी के पास बैठी हुई कहती हूँ कि एक बार कह दो ' मैं तेरी गुरनी और तू मेरी चेली' - लेकिन उत्तर यही मिलता कि "सभी साथी है, गुरू अभी कहाँ, जब गुरुभाव आएगा तब कहूँगी अवश्य कहूँगी। " वाह। गुरनी जी आपका अहंकार विसर्जन।

नेत्र ज्योति बनी रहे

बम्बई में 1987 की बात है - धीर, वीर, गम्भीर गुरनी जी महाराज को हर्पिस रोग हो गया। यह बिमारी इतनी भयंकर होती है कि इसकी जलन में रोगी बेभान हो जाता है। डाक्टर को भी कहना था कि कोई तो इस रोग की पीड़ा से तंग आकर ऊपर से छलांग भी लगा देते है। पर समता बिभूति गुरनी जी रोग को सहज रूप में स्वीकार कर रहीं थी। दिन-रात वे बैठे-बैठे बिताते रहें। हर्पिस कान के आगे-पीछे और सिर में बहुत भंयकर रूप से फैला हुआ था। आँखो के आसपास भी उसके फोड़े बनते जा रहे थे, अतः आँखो को भी खतरा था। डाँक्टर ने आँखो पर इसका दुष्प्रभाव होना वर्णित किया तो सब घबरा गये। गुरुमैया ने सभी को आश्वस्त करते हुए कहा - घबराते क्यों हो ? कुछ नहीं होगा। वे ध्यान-साधना में लीन हो गये। कुछ दिन बाद नेत्र विशेषज्ञ ने रिपोर्ट दी कि आँख के बिन्दु को कोई खतरा नहीं है । संभव है यह उनके तप संयम का प्रभाव हो'। एक माह तक अथाह वेदना रही, देखने वाला दंग था उनका 'गुरनी जी का' चेहरा ही निरखता था। ध्यान योगिनी ने अपनी वीतराग साधना से रोग के उत्पाती परिणाम को समाप्त कर दिया। हम प्रसन्न मन से उनकी समता स्वीकारते हुए कह रहे थे, 'अहो खंती ! अहो मुत्ती ! अहो अज्जस्स सोमया' धन्य है, दिव्य आत्मा ने शरीर और मन को नहीं देखा, आत्मा को देखा।

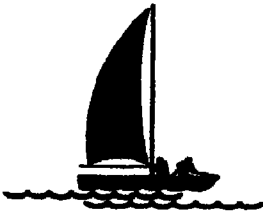
कितना कहा जाए ? लगता है सयंम तप के अनुपम सागर क्षमा धर्म की

अवतार गुरनी कौशल्या श्री जी का सम्पूर्ण जीवन ही संस्मरण है। जिस पर हाथ धरा वही चंगा। जिसको दखा वही नोनिहाल हो गया। सबसे बड़ी जो यह देखने में आती है कि आप अधिक बोलते भी नही तो भी आपके प्रति भक्ति भाव रखने वाले मुमुक्षु आपको भगवान सम पहचानते हैं कोई शत्रु नहीं रोम-रोम में सत्वेषु मैत्री की गूंज गूंजती है। आगे के करिश्मे हम भी देखें आप भी देखे जीवन का क्षण-क्षण चमत्कार की किरणों से अंधकार को भगा रहा है। इस अनन्त गरिमायुक्त गुरु महत्ता को हम पहचाने, फिर सदा सर्वदा के लिए अपने को पूर्ण समर्पित कर शाश्वत आनन्द से लाभ उठाएँ।

लिखा हुआ नहीं, आँखे देखें, कान सुने, बुद्धि अनुभव करे हृदय उसे स्वीकारे। ऐसे गुरु को पाकर प्रसन्नता को अपने में समेटेते रहें।

ओ गुरनी मैया।
मुझे भी ऐसा बना दे।
अपने करुणा के निर्झर में,
कषाय से शान्ति दिलवादे।
तेरे द्वार खड़ी पुकार रही,
'सरोज' को मुक्ति का जाम पिला दे।
कहने को बहुत सागर सम विस्तार है,
मन वाणी कलम का अद्‌भूत सत्कार है।
पर शब्द की सीमा ने याद दिलाया,
मैं छोटा क्या कह सकता हूँ,
गुरु महिमा अपार है।

★ ★ ★ ★ ★



मेरा मांझी

- साध्वी मंजु श्री
(एम.ए., पीएच.डी.)

चैत्र का महीना। बासन्ती बयार। तन-मन को प्रफुल्लित करने वाले दिन। ऐसे में गुरु का सामीप्य मिल गया, तो आत्मा भी पुलकित हो गई।

गुरु-चरणों की सन्निधि पाने वाले विरले सौभाग्यशालियों में से एक मैं भी हूँ।

लगभग 35 वर्ष पूर्व चाँदनी चौक, दिल्ली में, मुन्नालाल की धर्मशाला में पूज्या गुरुवर्या विराजित थीं। स्कूल से आकर, हाथ-मुँह धोकर, खाना-खाने के बाद मेरा नित्यक्रम था, गुरुवर्या के पास जाकर दर्शन-वन्दना कर, सामायिकस्थ होकर बैठना और जैन तत्वज्ञान का अध्ययन करना। उस दिन 25 बोल के थोकड़े के 20 वें बोल की व्याख्या की गहराई में 'गुरु जी' मुझे ले गये। जैसे कोई कुशल तैराक हाथ पकड़ कर अतल जल में ले जाता जाये और साथ ही परिसर का परिचय भी देता जाये।

'गुरु जी' ने समझाया-जैन दर्शन की मान्यतानुसार यह संसार षड्द्रव्यात्मक है। इन छह द्रव्यों में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल- ये चार द्रव्य अरुपी अजीव हैं (वर्ण, गंध, रस, स्पर्श-रहित हैं)। इनमें से कोई भी द्रव्य अन्य पाँचों द्रव्यों को प्रभावित नहीं करता, ना ही स्वयं प्रभावित होता है। पुद्गलास्तिकाय रूपी अजीव द्रव्य है, अजीव होने के नाते इसमें भी यह शक्ति नहीं कि यह जीव को जबर्दस्ती प्रभावित करे। एकमात्र जीव द्रव्य ही ऐसा द्रव्य है, जो पुदग्ल को प्रभावित भी करता है और गृहीत पुद्गलों से प्रभावित भी होता है। यदि जीव स्व-स्वरूप में रमण करने लगे, तो पुद्गल की हिम्मत नहीं कि उसे प्रभावित कर सके, अपने चंगुल में फंसा सके। जीव और पुद्गल का यह संयोग ही संसार है। कहा भी है -

---

सच्चे गुरु और सच्चे शिष्य की जोड़ दूध-शर्करा की भाँति है।

" कर्म पुद्गल रूप है, जीव रूप है ज्ञान।
दो मिलकर बहु रूप है, बिछड्‌याँ पद निर्वाण॥
जीव कर्म भिन्न-भिन्न करो, मनुष्य जनम को पाय।
ज्ञानातम वैराग्य से, धीरज ध्यान लगाय॥ "

वह दिन, वह घड़ी, वह क्षण अपूर्व था, क्योंकि अपूर्व वाणी श्रवण करने का सुअवसर/सुर-दुर्लभ अवसर श्रवणों ने प्राप्त किया था। क्या जादुई असर था उस वाणी में, कि उसने अन्तःकरण को सीधा प्रभावित किया, मस्तिष्क-तन्त्री झनझना उठी और प्रज्ञा ने समीक्षापूर्वक निर्णय लिया - अब मुझे भी अपनी आत्मा से कर्मों को/परभाव को, चैतन्य से जड़ता को पृथक् करने का पुरुषार्थ, इन्हीं गुरु-चरणों में रहकर करना है। इन्हीं की कृपा-प्रसाद से यह अद्यावधि असम्पादित कार्य आसानी से सम्पादित किया जा सकता है। मेरा यह निर्णय ऐतिहासिक निर्णय था, जिसने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी। अनादि-काल से संसार-सागर में भटकती जीवन-नैया को योग्य मांझी मिल गया था, आत्म-विश्वास जागृत हुआ-किनारा मिल ही जायेगा। मैं गुरुवर्या के चरणों में सर्वात्मना समर्पित हो गई। कबीर-वाणी कहती है कि जैसे जौहरी परीक्षोपरान्त ही रत्नों का स्वीकार करता है, उसी प्रकार परीक्षा करके ही गुरु का स्वीकार करना चाहिये। ठीक, उसी प्रकार मैंने गुरु का स्वीकार किया। कैसा विरोधाभास है ? अनगढ़ मिट्टी (शिष्य) को गढ़ने का/कुम्भ रूप देने का काम गुरु करे और तराशे हुए हीरे जैसे गुरु की परीक्षा करने का काम अनगढ़ शिष्य करे। विचित्र है यह भाव जगत/अध्यात्म जगत।

तब से लेकर आज तक मैंने गुरु जी के जीवन को निकट से/अन्तेवासीनी बन करं देखा है, परखा है और पाया है कि उनकी महिमा हिमगिरि से भी महान है। वे सेवा, सहिष्णुता, सरलता, उदारता, सहजता और विनम्रता की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। जम्मू से मद्रास तक की पद-यात्रा में उन्होंने हजारों-लाखों भक्त-हृदयों की श्रद्धा प्राप्त की है, अभक्तों को भी भक्तिवशात् विनम्र बनाया है। अनेको साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय से संबधित हों, 'गुरुजी' के विषय में उन्हें यह कहते सुना है मैंने कि, ये तो चौथे आरे की बानगी हैं, आप भाग्यशाली है कि आपको ऐसे सद्गुरु की कृपा प्राप्ति हुई है। गुरूजी शतायु होकर हम पर कृपा-वर्षा करते रहें, यही शुभकामना है।

'सहजता' समस्त सिद्धियों की चाबी है।

ध्यान-साधना का अपूर्व चमत्कार

-साध्वी विजय श्री 'आर्या'

गाँव-गाँव पाद-विहार करने वाले श्रमण-श्रमणियों को कई बार उपसर्ग एवं परिषहों के थपेड़े सहन करने पड़ते हैं, कई बार आधि, व्याधि, उपाधि की तपन से गुजरना पड़ता है, ऐसे में ही संत जीवन की सही परीक्षा होती है।

नीमच से कोटा की ओर विहार करते हुए महाराज श्री ने रेल-मार्ग से विहार करना प्रारम्भ किया। सड़क का मार्ग घूमकर जाता था अतः छोटे से छोटे मार्ग से जाने के इरादे से रेल का रास्ता पकड़ा। साथ में उदयपुर की तीन-चार बहनें भी थीं।

रेलमार्ग पर चलते हुए एक बहुत बड़ा पुल आया, जो करीब एक-डेढ़ फर्लांग का था। पुल पर बीचों-बीच लकड़ी के तख्ते कुछ अन्तराल से रखे गये थे, नीचे नदी पुरजोर बह रही थी, और ऊपर एक रेल-लाईन बनी हुई थी। पैदल चलने वाला उन पटरियों के बीच रखे तख्तों पर पाँव देकर ही चल सकता था, आजु-बाजु में अन्य कोई मार्ग नही था।

हमने उस पुल को पार करने के लिये पाँच-दस तख्ते लांघे ही थे, कि पीछे साक्षात् यमराज की तरह सरपट दौड़ती हुई रेल दिखाई दी, हम तुरन्त पीछे लौटे और पुल के एक ओर खड़े हो गये।

लेकिन श्री विमला जी महाराज पुल के कई तख्ते पार कर चुकी थीं। उन्हें बड़े म. श्री जी ने आवाज दी कि पीछे से ट्रेन आ रही है लेकिन वे तब तक पुल के कई तख्ते पार कर चुकी थीं। वापिस लौटकर आना संभव नहीं था। बाजू में एक कदम भी टिकाने को जगह नहीं। पीछे ट्रेन और नीचे नदी। चारों तरफ से वे संकट के घेरे में फंस गयीं। एक कदम भी असावधनी से गिरा नहीं कि, सीधे नदी में गिरने

मान के भूखे महान नहीं होते।

का डर, सभी साध्वियाँ घबराने लगीं। साथ वाली बहनें तो जोरों से रोने ही लगी, जब देखा कि उनके पुल पार करने से पूर्व ट्रेन सरपट दौड़ती हुई पुल से गुजर गई है। विमला जी म. अवश्य ही ट्रेन के नीचे आ गयी होंगी। इस विचार से सबके दिल जोरों से धड़कने लगे। आँखों के सामने अंधेरा छा गया, लेकिन ऐसी विकट घड़ी में भी श्री कौशल्या देवी जी महाराज विचलित नहीं हुईं। उन्होंने उच्च-स्वर से पुल पार करते हुई विमला जी महाराज को आवाज लगाई और कहा - विमला! घबराना नहीं और पीछे भी लौटना नहीं, दृढ़ता से आगे ही बढ़ती जाना।" और यह कहकर वे ध्यानस्थ हो गयीं। गाड़ी बढ़ती ही जा रही थी, और महाराज श्री का ध्यान भी उसके साथ गहरा होता जा रहा था। अंततः गाड़ी पुल से पार हो गई तो हम सब पुल पार कर वहाँ पहुँचे, देखा विमला श्री जी म. सकुशल पुल पार कर पहुँच गई हैं। उन्हें देखकर सबकी साँस में साँस आई।

हमारे पहुँचते ही उन्होंने कहा "महाराज श्री जी आज तो मौत के मुँह से ही बाहर निकली हूँ, जब आपकी आवाज सुनी, तो मेरे अन्दर न मालूम कौन सी शक्ति आ गई, जो मुझे उन पाटियों पर सरपट भगा रही थी, मैं उसी अदृश्य शक्ति से पुल पार करती जा रही थी, बस ज्योंही पुल पार करके अपना कदम बाहर रखा त्योंही गाड़ी निकली, एक क्षण का भी और अंतर रहता तो, मैं आपके दर्शन नहीं कर सकती थी। यह कोई दैवी चमत्कार ही था, जिन पाटियों पर चलने मात्र से ही मैं घबराती थी, उन्हीं पाटियों पर मैं तीव्रता से छलांगे लगाती हुई यहाँ आ पहुँची। और मेरा बाल भी बाँका न हुआ।

महाराज श्री जी मुस्करा दिये। उनकी अध्यात्म-शक्ति का यह अपूर्व चमत्कार देखकर हम सब श्रद्धा से नतमस्तक हो गये।

" स्वर सभी असमर्थ मेरे, कैसे गुण-कीर्तन करूँ।
जी यही कहता तुम्हारा, मन ही मन सुमिरण करूँ।"

जगत उसी का होता है, जो खुद का होता है।

ये गुण सदा याद रहेंगे

-साध्वी डॉ. अर्चना

(महासाध्वी पन्नादेवी जी म. की प्रशिष्या)

जिन शासन को गौरवान्वित करने वाली महासाध्वी ब्राह्मी से लेकर महासाध्वी चन्दनबाला पर्यन्त की यशस्वी श्रमणी-परम्परा में महासती श्री कौशल्या जी म. का नाम सर्वोपरि है। आप स्वभाव से शांत, गंभीर, मिलनसार व समन्वयवृत्ति की धनी हैं। छोटों व बड़ों को साथ लेकर चलना आपका दिव्य कर्म है। आपकी इस उदारता ने जहाँ अनेकों को गहरा प्रभावित किया, वहाँ मुझे भी प्रभावित किया।

सन् १९८० में पूना सम्मेलन में दीक्षा लेने के पश्चात् मुझे प्रथम बार आपके दर्शनों का सौभाग्य मिला, आपके द्वारा दिये गए निश्छल प्रेम को हम आज तक भी विस्मृत नहीं कर पाए हैं। रात्रि प्रतिक्रमण के पश्चात् हम ऊपर गए प्रत्याख्यान किया और नीचे जाकर अपने स्वाध्याय में लीन हो गई। लगभग ९ बजे आप स्वयं नीचे हमारे पास पधारीं और मेरा बड़े स्नेह व अपनत्व से हाथ पकड़कर आप बोलीं "साध्वी जी ! ऊपर चलो, कुछ विचार-विमर्श करना है।" मैंने कहा- "आपने नीचे आने का कष्ट क्यों किया ? किसी के द्वारा भी आदेश भेजते, हम ऊपर पहुँच जाते।

आपने फरमाया -"वर्षों पश्चात् हम सभी पंजाब की श्रमणियों का मिलन हो रहा है ....।" आपके सान्निध्य में हम बैठे विचारों का आदान-प्रदान हुआ। परन्तु आपकी उस उदारता व नम्रता ने हमें आपकी ओर आकर्षित हाने के लिये विवश कर दिया।

एक अन्य विशिष्ट गुण जिसका दर्शन आपके जीवन में हुआ, वह है-प्रमोद भाव। लघु साधु-साध्वियों के जीवन में विकास हो, इस भावना से आप सामने वाले के गुणों की प्रशंसा व अनुमोदना करना नहीं भूलती। राजस्थान से हरियाणा की ओर विहार करती हुई जब मैं कर्ण की राजधानी "करनाल" पहुँची, तो वहाँ अकस्मात् आपके पुनर्दर्शन का लाभ मिला। मैंने जैसे ही आपको वंदन किया, अपका वरद हस्त आशीष रूप में मेरे सिर पर था। आपने तुरंत शाल मंगवाई और वहीं खड़े-खड़े मुझे औढ़ा दी। और आशीष स्वरूप कहा - "आपने शोध प्रबन्ध लिखकर व जिनवाणी का

प्रचार-प्रसार कर श्रमणसंघ व पंजाब की गरिमा को बढ़ाया है, जिस पर मुझे सात्विक प्रमोद है। मुझे शीघ्र ही विहार कर दिल्ली पहुँचना है।" आपकी इस महती कृपा से मेरा सिर कृतज्ञता से आपके चरणों मे झुक गया। आपकी विशालता व विराटता ने हमें अभिभूत कर दिया शासनेश महावीर के चरणों में मेरी अभ्यर्थना है, कि आपके संयमी जीवन में रत्नत्रय की निरंतर अभिवृद्धि हो। आप शतायु व चिरायु बनकर जिनशासन को अपने अनुभवों की प्रौढ़ता से जन-जन को लाभान्वित करती रहें। यही मंगल मनीषा।

★★★

मेरी गुरुणी की सहपाठिनी

—साध्वी सुलक्षणा

(श्री राजेश्वरी जी म० की शिष्या)

आपकी एवं मेरी गुरुणी श्री राजेश्वरी जी महाराज की दीक्षा में दस महीने का अंतर था। अतः सहज ज्ञातव्य है, कि दोनों नवदीक्षिताओं की श्रेणी में आती थीं, दोनों केसर-रंजित वस्त्र धारण करतीं और दोनों साथ ही साथ गुरुणी श्री मोहनदेवी जी से शास्त्राध्ययन करती थीं।

मेरी सद्गुरुवर्या श्री राजेश्वरी जी महाराज दीक्षा पर्याय में दस माह बड़े होते हुए भी उम्र से महासती कौशल्या जी से काफी बड़े थे, अतः वे इनके संस्मरण सुनाया करते हैं कि "बचपन में कौशल्या देवी जी उपाश्रय में आतीं और स्वयं पाटे पर बैठ जातीं, तथा अपनी सखियों को सामने बिठाकर गंभीर मुखमुद्रा से धर्मोपदेश देतीं। उस सयम उनकी वाणी को सुनकर कोई यह नहीं कह सकता था, कि यह छोटी सी बालिका है, वरन् उस समय भी ये प्रौढ़ दिखाई देती थीं।"

आज भी आपके जीवन का ध्येय ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय एवं सेवा है। जल का संपर्क मिलते ही जैसे ज्वाला शांत हो जाती है, इसी प्रकार क्रोधी व्यक्ति भी आपके समक्ष बैठ जाय, तो उसका क्रोध कपूर की भांति उड़ जाता है। आपकी मधुरवाणी एवं ज्ञान भरी बातें किसी के भी रागी मन को विरागी बनाने में समर्थ है। आप शासन-गौरव हैं। धन्य है, आपका महिमामय महान् जीवन !

अच्छाई बाहर नहीं होगी तो चलेगी, भीतर कोई बुराई नहीं होनी चाहिये।

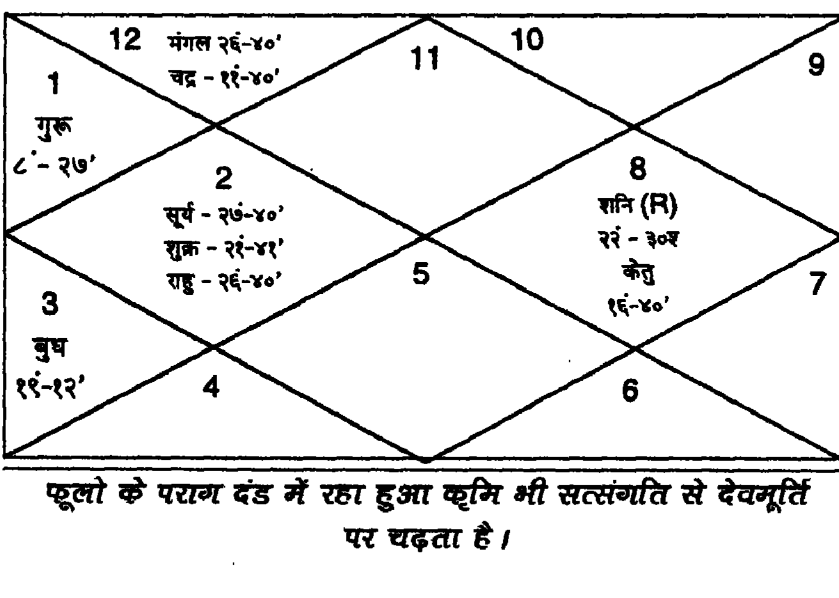
सितारों के अक्षरों में
अध्यात्मयोगिनी महासती पू. श्री कौशल्या जी म.

-साध्वी कृपा श्री (जैनसिद्धांताचार्य)

जिस प्रकार एक विशाल वट वृक्ष का समावेश उसके बीज में होता है उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के पूर्व जन्म-जन्मांतरों के कृतकर्म एवं भवितत्यता के बीज जन्मपत्री में छिपे होते हैं। जो आस्तिक हैं, जो आत्मा को नित्य मानते हैं वे इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। महान् आत्माओं का जीवन हमारे लिए एक आदर्श होता है। उनके उत्कृष्ट गुण हमारे लिए एक प्रतिमान स्थापिल करते हैं, और हमें उनका अनुसरण करने की प्रेरणा भी देते हैं। प्रस्तुत विवेचन की प्रेरणा भी मुझे पू. महासती कौशल्या श्री जी म. के विशिष्ट गुणों से प्रभावित होकर मिली है। उनके जन्मकुण्डली के अध्ययन से न केवल हमें उनके महान् गुणों की पहचान हो सकती है बल्कि उनकी आदर्श कुंडली ज्योतिषशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिए अन्वेषण का विषय भी बन सकती है।

पूज्या म. श्री जी का जन्म लाहौर शहर में, वि. सं. 1985 सोमवार, 11 जून सन् 1928 को रात्री 12 बजे हुआ था। आपश्री जी का जन्म कुंडली इस प्रकार है-

लग्न - 1:9° -53 आषाढ़ वदि अष्टमी



फूलो के पराग दंड में रहा हुआ कृमि भी सत्संगति से देवमूर्ति पर चढ़ता है।

किसी भी जातक की जन्मकुंडली को हम भौतिक तथा अध्यात्मिक दो विभिन्न दृष्टियों से देख सकते हैं। बहुधा यह देखा जाता है, कि जन्म कुंडली अध्यात्मिक रूप से जितनी बली होती हैं उतनी ही भौतिक सुख और संपदा की दृष्टि से निर्बल पाई जाती है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि भौतिक रूप से निर्बल कुंडली अध्यात्मिक रूप से बली हो।

पू. महाराज श्री जी की कुंडली का सर्वांगीण रूप से देखने पर इसकी अनेक विशेषतायें उभर कर आती हैं जैसे -

१) कुंडली में 6 ग्रह केन्द्र और त्रिकोण में स्थिर होकर इस कुंडली को बलवान बना रहे हैं।

२) शनि और केतु को छोड़कर शेष सारे ग्रह पृथ्वी के पार्श्व भाग में स्थित हैं। शनि और केतु ऊपर मध्य-आकाश में अर्थात् दशम भाव में स्थित होकर प्रभावशाली हो रहे है। शनि ग्रह को रात्रि अवस्था में काल-बल भी मिल रहा है। शनि लग्न का स्वामी ग्रह भी है। कुल मिलाकर के शनि कुंडली में सबसे अधिक प्रभावशाली ग्रह है।

३) कुंडली में कोई भी ग्रह अपनी निजी राशि से अशुभ स्थान पर यानि 6, 8, 12 वें स्थान पर नहीं गया अपितु अपने से पंचम या दशम स्थान में अथवा स्वगृही होकर शुभ प्रभाव डाल रहे हैं। मानों सभी ग्रह संगीत के समायोजित स्वरों की भांति जीवन को लयबद्ध कर एक सही दिशा प्रदान कर रहे हैं। राहु-केतु भी अपनी उच्च अवस्था में हैं।

अब हम कुंडली-दर्पण में पू.म. श्री जी की जीवन छवि निहारने की कोशिश करेंगे। जन्म कुंडली को 12 भागों में बाँटा जाता है। प्रथम भाव जन्म-लग्न के नाम से भी जाना जाता है, जो कि व्यक्ति के शरीर, स्वास्थ्य एवं स्वभाव के बारे में इंगित करता है। भावानुसार कुंडली का विवेचन करने से पता चलता है कि प्रथम भाव या लग्न कुंभ राशि का है। कुंभ लग्न के जातक दार्शनिक स्वभाव के होते हैं, उन्हें संसार से अधिक आसक्ति नहीं होती। ये विनम्र तथा मृदुभाषी होते हैं। शांत, सरलचित्त एवं सहृदय होते हैं। उनकी लेखन-शक्ति और वक्तृत्व शक्ति अच्छी होती है। ये अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन नहीं करते किन्तु बातचीत में इनकी प्रतिभा झलकती है। इनमें दूसरों को पहचानने की और अपूर्व ज्ञान की क्षमता होती है। ये भाईचारे में विश्वास रखते हैं, तथा सत्यप्रिय होते हैं। कुंभ लग्न का स्वामी ग्रह शनि द्वादश भाव का भी स्वामी है। द्वादश भाव मोक्ष स्थान है, अतः

नारी विधाता का वैभव है, मानवता का मानदंड है। सौंदर्य का आकार है और प्रेम का पर्वत है।

संसार से विरक्ति इनमें स्वाभाविक पाई जाती है। ध्यान में इनकी विशेष रूचि होती है। लग्नेश शनि दशम भाव में वक्री होकर केतु के साथ युति कर रहा है। दशम भाव कर्म स्थान भी है अतः ये ग्रह व्यक्ति के इस जन्म में किये गये पुरुषार्थ से यश, मान-सम्मान भी दर्शाता है। यानि शनि ग्रह म. श्री जी के व्यक्तित्व को विशेष रूप से प्रभावित कर रहा है। यों तो शनि को भौतिक रूप से अशुभ ग्रह माना जाता है लेकिन शनि के कुछ विशिष्ट गुण हैं जो कि अध्यात्मसाधना में और विशेष रूप से श्रमण संस्कृति को संयमी बनाता है। शनि-प्रभाव युक्त मनुष्य कर्मवादी होता है। इनमें कष्टों को सहने की क्षमता होती है। विनम्र किन्तु साहसी व निडर होते हैं। मितव्ययी, मितभाषी अथवा मौन रहना अच्छा लगता है क्योंकि शनि व्यक्ति को उर्जा संरक्षण की ओर प्रेरित करता है। वे ब्रह्मचर्य और योग साधना की ओर उन्मुख होते हैं। समय का सदुपयोग करना इनके स्वभाव में होता है। शनि द्वादश भाव याने मोक्ष का कारक ग्रह है जो जातक के संचित कर्मों और भाग्य को भी दर्शाता है। इनके इस जन्म में किये गये कार्य अगले जन्म में दृष्टिगोचर होते हैं। उपरोक्त संदर्भ यह सिद्ध करता है कि कुंडली का कुंभ लग्न, लग्नेश, शनि की दशम भाव में स्थिति एवं अध्यात्मिक तथा उच्च अवस्था के ग्रह केतु के साथ उसकी युति म. श्री जी को स्वयमेव ही एक अपूर्व अध्यात्मयोगिनी के रूप में प्रतिष्ठित कर रही हैं। उनके विशिष्ट गुण जैसे गंभीरता, नम्रता, सरलता, मितभाषिता, शांतचित्त, दार्शनिकता, अध्यात्मिकता आदि गुण स्वयं स्पष्ट हो जाते हैं।

द्वितीय भाव वाणी का स्थान है। इसमें चंद्र -मंगल योग इसे शुभता प्रदान कर रहा है। मंगल जहाँ वाणी को ओजपूर्ण बना रहा है वहीं चंद्र उसे शांत भाव प्रदान कर रहा है। साथ में मंगल और गुरु का राशि परिवर्तन भी दिखाई दे रहा है। मंगल दशमेश भी है तथा दशम भाव में इसकी राशि में लग्नेश स्थित है। अतः मंगल अपने में शनि की दार्शनिकता एवं बृहस्पति की विवेक व विद्वता के गुण भी संजोये हुए है, जो म. श्री जी की वाणी में स्पष्ट रूप से उभर कर आ रहे हैं।

तृतीय भाव से पराक्रम-पुरुषार्थ आदि देखा जाता है। तीसरे भाव में गुरु पराक्रम स्थान में बैठकर नवम भाव यानि कि धर्म स्थान को देख रहा है। यह म. श्री जी के श्रमण-मार्ग से तथा गुरु के संयोग से धर्म की ओर सदा अग्रसर होने को दर्शाता है।

पृथ्वी पर रेंगने वाले कीड़े आकाश में स्वच्छंद विचरण करने वाले मेघ की क्या कल्पना करेंगे ?

चतुर्थ भाव सुख का स्थान है। यह केन्द्र भाव भी है। यहाँ सूर्य, शुक्र और राहु स्थित हैं। शुक्र स्वगृही है तथा राहु उच्च-अवस्था में है, लेकिन शुक्र सूर्य द्वारा अस्त भी है तथा शुक्र पर शनि की दृष्टि और राहु का प्रभाव है। अतः इनके भौतिक गुण अर्थात् भौतिक सुख प्रदान करने वाले गुण नष्ट हो गये लेकिन अन्य गुण प्रभावशाली रहेंगे। जैसे शुक्र नवम भाव, धर्मस्थान का स्वामी है। शुक्र और शनि की परस्पर दृष्टि भी है, अतः जहाँ शुक्र ग्रह एक ओर धर्म की वृद्धि कर रहा है वहीं शनि की दृष्टि आलस्य समाप्त कर रही है। सूर्य पर शनि की दृष्टि जो सप्तम भाव याने विवाह स्थान को विकृत कर रही है वही वह मनुष्य को दंभी बनने से रोकती भी है।

पंचम भाव पूर्व पुण्य, विद्या, संतान तथा विवेक को दर्शाता है। यह त्रिकोण स्थान है अतः शुभ है। इस भाव में वृद्धि तथा विद्या का कारक ग्रह बुध स्वगृही होकर बैठा है अतः यह बुद्धि और विवेक की वृद्धि कर रहा है। साथ ही पंचम भाव का बलवान होना पू. म. श्री जी के पूर्व जन्म के पुण्य कर्मों का उदय होने को दर्शा रहा है। संभवतः यह पूर्व जन्मों के पुण्योदय का ही फल था कि म. श्री जी धर्म की ओर अग्रसर हुए। शास्त्र ज्ञान की गहराई का होना भी इस भाव की श्रेष्ठता का परिणाम है। सप्तम भाव यानि कि विवाह स्थान बलवान न होने के कारण विवाह में रुचि नहीं हुई किन्तु संतान भाव के बलवान होने से इतनी उन्नत, शिक्षित तथा गुणवान ऐसी शिष्य संपदा मिली। पंचम भाव पर दशम भाव (कर्म स्थान) के स्वामी मंगल की भी दृष्टि है अतः कर्म, वाणी, विद्या, बुद्धि तथा पूर्व-पुण्य का अनूठा संगम म. श्री जी के जीवन में पाया जाता है।

छठे भाव से रोग, शत्रु आदि का विचार किया जाता है। लग्नेश शनि ग्रह के मित्र शुक्र एवं बुध दोनों ही स्वगृही होकर क्रमशः केन्द्र तथा त्रिकोण भाव में स्थित है, दोनों ही शुभ ग्रह हैं, अतः म. श्री जी के जीवन को शत्रु तथा रोगों से मुक्ति करा रहे हैं।

सप्तम भाव से विवाह, व्यापार आदि का विचार किया जाता है। यह भाव निर्बल होने से म. श्री जी को विवाह एवं व्यापार से वंचित रखता है।

अष्टम भाव आयु की ओर इंगित करता है। लग्नेश शनि ग्रह एवं अष्टमेश बुध ग्रह बलवान होकर के क्रमशः केन्द्र तथा त्रिकोण में स्थित होने से पू. महाराज श्री जी के जीवन को दीर्घायु तथा सुखी बना रहे हैं।

भक्त अपने भगवान की मात्र पूजा करता है।

नवम भाव से भाग्य, प्रभाव, गुरु, तप और शुभ बातें देखी जाती हैं। भाग्येश शुक्र स्वगृही होकर केंद्र में बैठा है जो भाग्यवान योग बना रहा है। नवम भाव पर गुरु की दृष्टि होने से शुभ प्रभाव में और भी वृद्धि हो रही है।

दशम भाव से सम्मान, प्रव्रज्या, आगम (शास्त्र) कर्म तथा यशादि का विचार किया जाता है। लग्नेश शनि को तीन ग्रह शुक्र, राहु एवं सूर्य पूर्ण दृष्टि से देखकर सफल प्रव्रज्या योग बना रहे हैं। दशमेश मंगल, शुभ ग्रह चंद्र के साथ होने से म. श्री जी के वचनों को आदरणीय बना रहे हैं एवं यश, कीर्ति की वृद्धि भी करते हैं।

एकादश भाव लाभ को देखने के लिए है। एकादशेश गुरु होने से म. श्री जी को अपने आचार से अर्थात् अपने उत्तम आचरण से लाभ होता है।

द्वादश भाव से दूर देशों का भ्रमण अर्थात् लंबी यात्रा और प्रवास का विचार किया जाता है। व्यय भाव में चर राशि (मकर) होने से एवं द्वादशेश शनि ग्रह की पूर्ण दृष्टि होने से उसने म. श्री जी को अनेक देशों एवं वनों का भ्रमण कराया।

पू. म. श्री जी की कुंडली के कतिपय शुभ योग :

१) सुनफा योग: चंद्र से द्वितीय भाव में यदि सूर्य से अतिरिक्त कोई भी शुभ ग्रह हो तो यह योग होता है। पू. म. श्री जी की कुंडली में चंद्र से द्वितीय भाव में शुभ ग्रह गुरु होने से इस योग की शुभता और भी बढ़ गई है।

फल : ये अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करते हैं, सभी का हित करने वाले तथा सदैव उन्नति को प्राप्त होते हैं।

२) शुभ वेशि योग : जब चंद्र से अतिरिक्त कोई भी शुभ ग्रह सूर्य से द्वितीय स्थान में होता है तब ऐसा योग बनता है। यह योग भी पू. म. श्री जी की कुंडली का सौभाग्य बढ़ा रहा है।

फल : सुखी, सच्चरित्री, सौम्य आकृति, प्रसिद्धि, दक्ष एवं भाषण से प्रभावित करने वाला होता है।

३) भद्र-योग : बुध ग्रह स्वराशि में स्थित होकर चंद्र से केन्द्र में है। अतः म. श्री जी का जन्म भद्र योग में हुआ है।

फल : भद्र योग में जन्म लेने वाला कुशाग्रबुद्धि और शुद्ध आचरण वाला होता हैं। प्रवचन में चतुर एवं विद्वान् भी इनकी प्रशंसा करते है।

४) मालव्य योग : स्वगृही शुक्र लग्न से केन्द्र में होने से पू.म. श्री जी की कुंडली में यह योग भी बनता है।

फल : मालव्य योग में जन्म लेने वाले जातक प्रसन्नमुख, शांतचित्त, धैर्यवान, आकर्षक व्यक्तित्व, कठिन से कठिन परिस्थिति में भी इनका दिमाग विचलित नहीं होता।

५) पर्वत योग: यदि सातवें तथा आठवें भाव में कोई ग्रह नहीं हो तथा सप्तमस्थ एवं अष्टमस्थ राशि सिंह तथा कन्या राशि पर क्रमशः गुरु एवं चंद्र ऐसे शुभ ग्रहों की दृष्टि होने से यह प्रबल योग बना है।

फल : महान् लेखक एवं गंभीर विचारक, विद्या के क्षेत्र में सदैव उन्नति, सेवाभावी प्रकृति।

६) वासी-योग : चंद्र से अतिरिक्त कोई भी ग्रह या कई ग्रह जब सूर्य से 12 वे स्थान में विद्यमान हो तो यह योग बनता है। सूर्य से द्वादशस्थ गुरु ने म. श्री जी के कुंडली में यह बलवान योग बनाया है।

फल : वासी योग में जन्म लेने वाले व्यक्ति अपने कार्य में निपुण, गुणी, प्रसन्न चित्त एवं यशस्वी होते हैं।

७) चंद्र-मंगल योग: चंद्र-मंगल की युति द्वितीय स्थान में होने से यह शुभ योग बना है।

फल : ईमानदार, प्रभावपूर्ण वाणी, कष्टों से न घबराने वाले होते हैं।

पूज्या म. श्री जी की कुंडली का यह विवेचन कोई विस्तृत व्याख्या न होकर उनकी कुंडली के विशेष भावों और उनके विशेष गुणों को ध्यान में रखकर सीमित रूप से किया गया है। साथ ही सर्वसाधारण को ख्याल में रखकर कुंडली की व्याख्या सरल रूप से करने का प्रयास किया गया है तथा ज्योतिष विज्ञान के तकनीकी पक्षों को यथा संभव कम रखा गया है। इस तरह कुंडली का विवेचन मुख्यतः आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही हुआ है।

प्रेम के एक शब्द का बीज दूसरों के मन की धरती पर बोओ, वह तुम्हें अनेक प्रेम शब्दों की भरी बालियाँ देगी।

कोटि-कोटि अभिनन्दन

एस.एस. जैन सभा, जैननगर, मेरठ

संसार के इस आवर्त चक्र में कभी-2 ऐसी पुनीत, महान एवं समतामयी आत्मायें अवतरित होती हैं कि मन-मस्तक श्रद्धा से झुक-झुक जाता है। ऐसी ही पवित्र आत्मा का अवतरण हुआ 11 जून 1928, आषाढ़ वदी अष्टमी को, पंजाब प्रान्त की राजधानी लाहौर में, सुश्राविका माता श्रीमती तारा देवी एवं पिता श्री खैराती लाल जी के सम्पन्न परिवार में। आत्म पथ के उच्च मार्ग पर चलते हुए, पाँच भाई और पाँच बहनों के विशाल परिवार को छोड़कर परम श्रद्धेया महासती मोहन देवी जी म०सा० एवं परम श्रद्धेया महासती केसर देवी जी म०सा० की चरण-शरण में समर्पित होकर, विभाजन से पूर्व सन् 1947 पटियाला शहर में जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण कर वीतराग वाणी की सेवा में समर्पित हो गई। आप धर्म में समाहित हुई या धर्म आप में। यह तो प्रत्यक्ष ही है, धर्म के समस्त सद्गुणों को आत्मसात् करने वाली पुनीत आत्मा का नाम है-अध्यात्म योगिनी महासती कौशल्या जी म०सा०।

हे, समता, ममता की अनुपम प्रेरणा शक्ति !

आपका व्यक्तित्व सद्गुणों का अनन्त खजाना है, जिसमें मूल्यों के अनमोल रत्न समायें है। आप श्री द्वारा उठते-बैठते, सोते-जागते, कहते-अनकहते, चिन्तन-मनन करते उदारता से वितरित करते आपका यह अनमोल सद्गुण कोष निरन्तर श्री वृद्धि कर रहा है। आपका चरित्र, आपके चारित्रिक सद्गुण, आपकी सहज समता, आपकी वात्सल्यमयी ममता स्वयं में एक अनुपम प्रेरणा शक्ति प्रदान करती है।

हे, तप, संयम, त्याग की गरिमा युक्त प्रेरणा मूर्ति !

आपका जीवन एक तपे स्वर्ण का जीवन है, वीतरागता का मार्ग, संयम का पथ, तप का मार्ग, त्याग का रास्ता एक कसौटी परीक्षण है -मोक्ष राह के पथिक के लिये। आप श्री निरन्तर अविचल, अडिग, दृढतापूर्वक इस उत्कृष्ट मार्ग पर चलते हुऐ जिन शासन की निस्वार्थ सेवा में जुटी हुई है। आपकी जीवनचर्या और दैनिक

व्रत देखकर अद्भुत प्रेरणा का सहज स्फुरण होता है।

हे, ज्ञान की सहज-सरल धर्म प्रभाविका

ज्ञान को प्राप्त करना बहुत दुरुह कार्य है। इसको ग्रहण करने के लिये ज्ञान-निष्ठ होना, गुरू-निष्ठ होना, एकाग्रचित्त होना और सहज-सरल-सुपात्र होना अति आवश्यक है। ज्ञान को संजो कर अभिमानी ना होना, ज्ञान को पाकर विनयी होना, यह कोई सुपात्र आत्मा ही कर सकती है। आप श्री के व्यक्तित्व मे यें सब सद्गुण आपकी सद्ग्राहकता और गुरूनी श्री जी के अटूट आशीर्वाद का ही फल है। आप श्री वीतराग वाणी का प्रचार-प्रसार कर जिनधर्म की प्रभावना में मन-वचन-काया से रमे हुये हैं।

हे, आध्यात्म गुणों से सम्पन्न सौम्य व्यक्तित्व !

आप श्री का व्यक्तित्व बहुमुखी व्यक्तित्व है, आप धर्म के मर्म "अध्यात्म" के प्रति पूर्ण समर्पित हैं। धर्म और धर्म के सद्गुणों से पोषित आपका सौम्य व्यक्तित्व सत्य, अहिंसा तप और त्याग के मार्ग पर स्वयं चलकर, समाज एवं राष्ट्र में अपूर्व प्रेरणा पुंज बना हुआ है। आप श्री हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, प्राकृत, पंजाबी, गुजराती आदि अनेक भाषाओं की सहज ज्ञाता हैं।

हे वीतराग मार्ग की आलोकित दीप शिखा !

"दीप से दीप जले, तम हरे फैले उजियारा,
मन में हो वीतराग भाव, आलोकित हो जग सारा"

सत्य का दीप जब जगमग करता है असत्य का घोर तप भी पलायन कर जाता है। आप श्री का व्यक्तित्व आलोकित है - श्रद्धेय पंजाब सिंहनी, उपप्रर्वतनी, गुरूनी महासती श्री केसर देई जी म०सा० के दिव्य प्रकाश से वर्तमान में आपके प्रकाश से आलोकित हो समग्र जैन जगत को आलोकित कर रही हैं आप श्री की सुयोग्य एवं समर्पित शिष्यायें-महासती विमला श्री जी म०सा०, महासती डा० सरोज श्री जी म०सा०, महासती डा० मंजू श्री जी म० सा० एवं महासती विजय श्री जी म० सा०।

प्रसन्न रहने के दो ही उपाय है - आवश्यकताएँ कम करें, और परिस्थितियों से तालमेल बिठायें।

हे जिन शासन की सुरभित तरण-तारणी पावन गंगा !

गंगा का उद्‌गम गंगोत्री है, तो जिन धर्म का उद्‌गम है वीतराग वाणी, वीतराग भावना। जिस प्रकार गंगा का जल निर्दोष एवं पवित्र है, उसी प्रकार वीतराग वाणी शाश्वता से परिपूर्ण और किसी भी दोष एवं सन्देह से परे है। गंगा जिस प्रकार समग्र जीवन को विभिन्न माध्यमों से पोषित करती है, पवित्र और स्वच्छ करती है, वीतराग वाणी भी मन-वचन-काया के समस्त दोषों को परिष्कृत कर तथा उत्कृष्ट भावों का समायोजन कर आत्मा को मोक्ष के द्वार पर लाकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त कर देती है। आप श्री भी पिछले 50 वर्ष से धर्म की पावन गंगा के रूप में अवतरित होकर वीतराग वाणी के शुद्ध जल से अनेकानेक आत्माओं को अभिसिंचित कर चुकी हैं और निरन्तर कर रही हैं।

हे, मोहन वाड़ी में केसर-क्यारी की अनुपम सौरभ युक्त सुगन्ध !

हर बीज की अपनी-2 क्षमता होती है, कोई सद् विचारों की भूमि पर स्थापित होने पर भी अकुंरित नही होता। कोई अंकुरित तो होता है, पर अनुकूल परिस्थिति होने पर भी पौधे का रूप नहीं ले पाता। कोई पौधे का रूप तो ले लेता हे, पर वृक्ष के रूप में परिणत नहीं होता। और कोई वृक्ष फल और फूल नहीं प्रदान कर पाता। पर यह महावट-वृक्ष तो छाया प्रदाता भी है, फलदाता भी है, सुरभित और सुगन्धित भी है। यह बोधिवृक्ष है, यह कल्पतरू है, यह चन्दन की शीतलता और सुगन्ध लिये अप्रतीम सर्पों से बेखबर जुटा है, वीर वाणी के प्रसार में। यह महासती मोहनदेवी जी म०सा० के उपवन की केसर-क्यारी का अनुपम सौरभ युक्त, सुगन्धित पुष्प है। आज महासति कौशल्या जी म०सा० के पावन दीक्षा दिवस पर कोटि-कोटि वन्दन। शत शत अभिनन्दन।

卐

अध्यात्मयोगिनी महासती कौशल्या देवी जी

- श्री फूलचंद्र जी मेहता

उदयपुर

(आप श्रीमद् राजचंद्र जी से प्रभावित समर्पित व्यक्तित्व हैं। सादगी पूर्ण गृहस्थ जीवन में रहते हुये भी संत सदृश त्यागमय जीवन जी रहे हैं। आप मताग्रह से मुक्त उच्चकोटि के विद्वान हैं। हजारों शिविरों के संचालक व सतत स्वाध्याय-प्रेमी

आम्रवृक्ष की मंजरियों की चटक और मधुर गमक को देखकर कोयल की मधुर वाणी झंकृत हुए बिना नहीं रह सकती।

सद्गृहस्थ हैं, परम-श्रद्धेया महासती श्री कौशल्या देवी जी म. के संबंध में आपके विचार निम्न लेख में पढ़िए)

अध्यात्मयोगिनी महासती श्री कौशल्या देवी जी महाराज की भव्यता, सौम्यता, शांतता एवं निष्पक्षता से मैं अत्यंत प्रभावित हूँ। इस दुःषम काल में आप चौथे आरे की बानगी प्रतीत होती हैं। आप उत्तम प्रवचन कर्त्री, ओजस्वी व निर्भीक वक्ता हैं। फिर भी अभिमान आपको छू भी नहीं पाया है। मैं मद्रास (धोबीपेठ) गया, उस समय आपका प्रवचन चालू था, आपने अपना समय मुझे प्रदान कर दिया। एक गृहस्थ श्रावक को अपनी सभा सौंप देना, उसे इतना सम्मान देने वाला स्वयं में कितना महान होगा ? कितनी सरलता, कैसी गुणग्राही दृष्टि, ज्ञान के प्रति कितना प्रमोद भाव देखते ही बनता है।

मैं आपके बहुत बार निकट संपर्क में आया हूँ, मैंने देखा, कि आपको धर्म की बात बहुत सुहाती है। उसके लिये आप घंटों निकाल लेते हैं। आप मत-मतांतर के आग्रह से भी कोसों दूर हैं। बाह्याचरण में जो शिथिलता है, उसके प्रति आप खेद प्रकट करती रहती हैं।

कैसी भी परिस्थिति, कैसा भी प्रसंग आ जाए, संयोग हो चाहे वियोग हो, आप कभी भी प्रतिक्रिया का मार्ग पसंद नहीं करतीं।

प्रतिकार में संघर्ष है, कलह है, विग्रह है। अतः आप अधिकांशतः मध्यस्थ-दृष्टि अपनाकर सहज बनी रहती हैं। विषय-भोग्य पदार्थों में नीरसता होने से आपके जीवन में वैराग्य की निरंतरता देखी जा सकती है। अधीरता, तुच्छ-वृत्ति, छोटी-छोटी बातों में उलझना, ओछापन आपमें है ही नहीं।

मैंने कई बार चर्चा-प्रसंगों में स्पष्ट कटु-सत्य भी कहा किन्तु आपको कभी आवेश में व्याकुल होते नहीं देखा।

तत्त्वचर्चा, जिज्ञासा को छोड़कर आप सांसारिक-बातों में विशेष रूचि नहीं लेती हैं। इससे अलग रहने की आपकी सदा भावना रहती है।

आपकी अध्यात्म-प्रधान, सहज-साधना सबके लिये अनुकरणीय है। मैं आपके अर्द्धशताब्दी पर्यन्त पाले गये संयमीजीवन को श्रद्धा की नजर से देखता हूँ, एवं आगे के लिये शुभकामना करता हूँ, कि ऐसी निष्कलंक संयमवान् आत्मा शताधिक आयुपर्यन्त सबकी आदर्शरूप बनी रहें।

जो सदा एक जैसा रहे, वही सत्य है।

वे अविस्मरणीय हैं और रहेंगी

—सत्यपाल जैन "जिनसुत" लुधियाना

(आप श्रीमान् शादीलाल जी जैन के सुपुत्र हैं, एवं कौशल्या देवी जी के मामा के लड़के हैं)

मेरे जीवन में एक अनुपम घटना ऐसी घटी कि जिससे मेरी आत्मा भौतिकता से ऊपर उठकर आत्म-धर्म आराधना और आत्म-साधना पर अग्रसर हो गई। वह घटना यह थी –

दीपावली के दिन थे घर में सफेदी हो रही थी। मैं किताबों वाली अलमारी खाली कर रहा था कि 'गृहस्थधर्म' 'श्रमण' श्री फूलचन्द जी महाराज द्वारा सम्पादित पुस्तक हाथ लगी। उसमें श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन, विधि व साधना बता रखी थी। मेरा ग्यारह प्रतिमाओं के बारे में पढ़कर उन्हें आचरण में लेने का संकल्प बन गया। पाँचवी प्रतिमा का पालन जीवन भर के लिये कर लिया। मन छठी प्रतिमा के लिये कटिबद्ध हो गया। इसी दौरान मुझे देहली जाने का अवसर मिला, साध्वीद्वय के दर्शन शक्तिनगर के स्थानक में किये। महासाध्वी कौशल्या जी से धर्म-चर्चा चल पड़ी। सहसा मन के उद्‌गार उनके सन्मुख अभिव्यक्त हो गये। मैंने कहा – महाराज जी ! "मैं श्रमणभूत बनना चाहता हूँ।" उन्होंने मुझे "उत्तराध्ययन सूत्र का स्वाध्याय करो" ऐसा निर्देश दिया। मैंने उन्हे आश्वासन दिया "जब श्रमण जी महाराज लुधियाना पधारेंगे तो उनके चरणों में बैठकर इस सूत्र का स्वाध्याय करूंगा"। तब उन्होंने आदेशात्मक स्वर में कहा "अभी इसे स्वयं पढ़ो, जब श्रमण जी म. लुधियाना पधारेंगे तो उनके चरणों में बैठकर दोबारा पढ़ने में भी कोई हर्ज नहीं है।" संयोग से तभी मैं श्रमण जी महाराज (उपाध्याय श्रमण श्री फूलचन्द्र जी महाराज) के दर्शनों के लिये चाँदनी चौंक स्थानक में पहुँचा वहाँ पता चला कि श्रमण जी महाराज के चरणों में लुधियाना श्री संघ चातुर्मास की विनती के लिये अगले दिन आने वाला है। मैं भी अगले दिन विनती में सम्मिलित हो गया। विनती हुई और कुछ मास पश्चात् श्रमण जी महाराज

जो न्यायमार्ग पर चलता हुआ पुरुषार्थ करता हो, वही सत्पुरुष है।

लुधियाना पधार गये। उनसे उत्तराध्ययन सूत्र के बारे में पूछा। क्योंकि आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा अनुवादित उत्तराध्ययन सूत्र के दो खण्ड ही उपलब्ध थे। जानकारी मिली "जो भी खण्ड मिले पढ़ जाओ यह तो मालपुआ है जहाँ से भी खाओगे मीठा ही मीठा मिलेगा, हित शिक्षाओं से यह सूत्र भरा जो है। सूत्र पढ़ा ज्ञान का ऐसा भण्डार मिला कि प्रतिमा वहन करनी सुगम हो गई। जो अनुभव मुझे हो चुके थे वे सब इस सूत्र में वर्णित थे। भगवद्वाणी के प्रति श्रद्धा द्विगुणित हो उठी। आज जो कुछ भी हूँ, उसमें साध्वी कौशल्या जी का उपकार अद्वितीय है। एतदर्थ मेरा अन्तर्मन उन्हें कोटिशः प्रणाम कर थकता नहीं। जीवन में शायद ही कोई ऐसा अवसर आया हो जब वे देहली में विराजमान हों और मैं उनके दर्शनों से वंचित रहा होऊँ। उनके दर्शनों का लाभ क्या बैंगलौर, क्या मद्रास, क्या बंबई, जहाँ भी चातुर्मास हुये, अधिकांश स्थानों पर दर्शनों का धर्म-चर्चा का लाभ लिया। उनके जन्म-वृत्त से स्पष्ट हो जायेगा कि महासाध्वी कौशल्या जी संसार-पक्ष से मेरी बहिन हैं। भुआ जी की पुत्री हैं, और आध्यात्मिक क्षेत्र में साधना-पथ पर अग्रसर करने वाली मार्गदर्शिका भी।

卐

समता की अखूट स्त्रोत

राजकुमार जैन, रूप नगर, दिल्ली

महासती श्री कौशल्या जी म. का नाम जुबान पर आते ही यह महसूस होने लगता है कि उस शांति की देवी का चरित्र हममें समा जाये। मैंने अपने जीवन में अपने पूज्य पिता श्री प्यारे लाल जी व माता श्रीमती तारादेवी जी के साथ रहकर अनेक महान साधु-साध्वियों के दर्शन किये हैं, फिर भी मुझे कहने व लिखने में यह रत्ती भर भी संकोच नहीं होता कि महासती श्री कौशल्या जी म. समता का अखूट स्त्रोत है। स्त्रोत का मतलब जहाँ से हजारों शीतल लहरें निकलती है जो कि दूसरों को धर्मरूपी गंगा जैसा पानी, वाणी के रूप में देकर सींचती हैं, व धर्म-शुक्ल ध्यान में लगाती हैं। आप वस्तुतः समता की सरोवर हैं, शान्ति की देवी हैं। संयम की नाव हैं, जो खुद भी तिर रही हैं व दूसरों को भी तार रही है। आप श्री जी के सम्पर्क

में जो भी कोई प्राणी आता है उसके अन्तर में स्वतः धर्म भावना जागृत हो जाती है। उसको भी अहसास होता है कि मैं भी इस शांति रूपी नदी की तरह बनूँ। मैंने समाज में साधु वर्ग में, साध्वी वर्ग में किसी भी प्राणी मात्र के मन में आपके प्रति विपरीत विचार नहीं पाए या सुनें।

मैंने आप श्री जी का नाम अपनी माता श्रीमती तारादेवी जी से अनेक बार सुना व आपकी प्रशंसा भी सुनी थी। मगर जब मैंने आपश्री के दर्शन प्रथम बार पूना में किए तो उन सब बातों को आपमें स्थित पाया। मेरा मस्तक श्रद्धा से झुक गया और गर्व से ऊँचा भी हुआ कि आज की शास्त्र वाणी को सार्थक रूप देने वाली साध्वी जी महाराज विद्यमान हैं। धन्य हैं आपके माता-पिता व परिवार जिन्होंने इस अमूल्य रत्न को पाया, सींचा व जिन शासन की ज्योति के रूप में समाज को दिया। धन्य है जिन शासन व जैन धर्म, जिसने आप सदृश साध्वी-रत्न को प्राप्त किया।

卐

महासती श्री कौशल्या देवी जी
"एक दिव्य संदेश" एक प्रेरक प्रसंग

- जीवनसिंह मेहता (प्राचार्य, उदयपुर)

अध्यात्म मूर्ति, शांत-स्वभावी, ज्ञानी, ध्यानी एवं साध्वी गरिमा की धनी महासती श्री कौशल्या देवी जी से मेरा पिछले 30 वर्षों से सान्निध्य रहा है। मित एवं मृदु भाषी होने के कारण धार्मिक चर्चा ही उनसे वार्ता का मुख्य विषय रहता है।

एक बार मैंने महासती जी से प्रश्न किया - हम हिंसा, झूठ, चोरी तथा परिग्रह के सैद्धांतिक पक्ष को अच्छी तरह समझते हुए भी व्यवहार में अपनाने का समय आता है तब ऐसा नहीं कर पाते हैं, बहाने करतें है ? क्या करें कि जैन दर्शन के ये अनूठे सिद्धांत हमारे जीवन का आचरण बन जाए।

महासती जी ने समझाया "जिस तरह कपड़ा पहनते हैं, पहनना पड़ता है वह गंदा भी होता है, किंतु साबुन द्वारा साफ भी किया जा सकता है। उसी प्रकार अपने व्यवहारिक आचरण को सुधारने के लिए प्रतिदिन रात्रि में सोने से पूर्व अपनी प्रतिदिन की क्रियाओं का आत्मावलोकन करें और गलत कार्य न करने

हमारे उद्देश्यों को साकार बनाने वाली दिव्य-शक्ति हमारे अपने अंदर ही है।

का संकल्प करें। निरंतर अभ्यास से जरूर-जरूर परिवर्तन आयेगा और शांति की प्राप्ति होगी। उनका यह वचन मेरे लिये प्रेरणास्त्रोत बन गया, संस्कार परिवर्तन की मूल कुंजी मेरे हाथ लग गई, कि यदि हमें जीवन को संस्कारित करना है तो दिनभर के क्रियाकलाप का रात्री में चिंतन करें कि **'किं मे कडं किं मे किच्च सेसं'** मैंने क्या अच्छा या बुरा किया और आगे मुझे क्या करना है। बस यही चिंतन हमें एक दिन परमात्मा बना देगा। अध्यात्ममार्ग की प्रेरक महासती कौशल्या देवी जी के चरणों में शत-शत प्रणाम करता हूँ।

卐

सत्य, सत्व और स्वत्व की साधिका

- सुमति कुमार जैन

संपादक जगमग दीपज्योति, अलवर

जिन धर्म दर्शन में जहाँ श्रमणों का इतिहास रहा, उसी तरह श्रमणियों का भी दिव्य आदर्श है। श्रमणों ने जैसी अपनी संयमी गरिना को फैलाया है, फैला रहे हैं, फैलाते रहेंगे। ठीक इसी प्रकार श्रमणियाँ भी महिमामयी हैं। पूर्व इतिहास पर दृष्टि डालें तो तीर्थपति आदिनाथ से महावीर पर्यन्त तथा गणधर व मध्ययुग के आचार्य काल में हमारी श्रद्धा दीपिका श्रमणियों ने गौरवपूर्ण, उल्लेखनीय संघ सेवा की है, कर रही हैं। श्रमण-संघ के सुरम्य उद्यान में अनेकानेक सुमन, कलियाँ आज भी अपनी संयम सुवास फैला रही हैं।

भारतीय-संस्कृति में "सती" शब्द अत्यन्त गौरवपूर्ण है। सत्य की आराधिका, सत्व की साधिका, स्वत्व की उपासिका। सत्य, सत्व और स्वत्व संपूरित एक शक्ति का नाम है "सती", शील, संयम, साधना, व्रत, नियम, तप, त्याग, ध्यान आदि जिनमें निरन्तर होता है तो वह "सती" से "महासती" के गौरव से अभिमंडित होती हैं। जैन संस्कृति में पूर्ववत् अनेक मणियाँ, मल्लिनाथ, राजमती, चन्दना, मृगावती के साथ सोलह सतियों के कुल एवं शील का गुणगान युग दोहरा रहा है। भारतीय वाड्मय पुरुष प्रधान भले ही रहा हो मगर नारी की अपनी शक्ति, साधना एवं शील के परिचय के आगे संसार ने नतमस्तक हो पूजा की है।

शब्दों में मंत्र-शक्ति भरने वाला कीमिया है - मौन।

इसी श्रृंखला में वैराग्य एवं वात्सल्य मूर्ति, आत्म-विसर्जन की प्रतिमा सेवाभावी, चाँद की चाँदनी, महासती श्री कौशल्या जी ज्ञान के साथ निरभिमानता, वाणी में ओज के साथ माधुर्यता, व्यवहार में शिष्टता, संयमी जीवन, सरस व्याख्यात्री, बाल युवावर्ग में धार्मिक जागृति का संचरण करने वाली, रचनात्मक, सर्जनात्मक कार्यों में संलग्न आप साधना के सुदीर्घ पथ को पार कर उत्तरोत्तर रत्नत्रय की आराधना से स्व-लक्ष्य की ओर बढ़ रही हैं आपका सम्यक् पथ प्रशस्त बनें, जन-जन आपके सदुपदेशों से लाभान्वित हो, यही हमारी मनोकामना है।

मधुर व्याख्यात्री, प्रखर पंडित, मधुर भाषिणी, संयम स्वाध्याय, आचार निष्ठामय साध्वी जी के सुदीर्घ वय और संयम का मैं मुक्तकंठ से गुणग्राम करता हूँ।

卐

मन की मन में रह गई

- श्रीमति रामप्यारी जैन

(धर्मपत्नी श्री शादीलाल जी जैन, लुधियाना)

(आप महासती श्री कौशल्या देवी जी की संसारपक्ष में मामी लगती हैं। उनके द्वारा लिखा गया एक संस्मरण)

आत्म साधना के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए भव्य आत्माओं को सबसे बड़ी रूकावट स्वजनों से मिलती है। माता-पिता का अपनी संतति के प्रति राग जीव की कमजोरी है। ऐसा ही प्रसंग आया कुमारी कौशल्या और उसकी दो सहेलियों के सन्मुख। स्व. महासती मोहन देवी जी का चार्तुमास सन् 1945 में लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ था। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व ने एक ऐसी छाप इन तीनों भव्य आत्माओं के हृदय पर छोड़ी कि उनका मन संसार से उदासीन हो गया। तीनों वैराग्य रंग में रंग चुकी थी। माता-पिता का वात्सल्य भाव इस मार्ग में चट्टान की तरह खड़ा था। समय व्यतीत हो गया। महासाध्वी जी विहार कर जालंधर पधार चुकीं थी। उनके चरणों में पहुँचने का एक मात्र उपाय घर से भागना ही रह गया था। इसी उपाय का सहारा लेकर वे जालंधर पहुँच गयी। साध्वी-मण्डल के साथ विहार कर या किसी बहन के माध्यम से कुमारी कौशल्या पटियाला पधार गई। उस समय पटियाला में श्रमण श्री फूलचन्द्र जी म.

विराजमान थे। वैरागिन के परिणाम जानकर उसे दीक्षित करने की तिथि निश्चित हो गई। जिसकी सूचना कौशल्या जी ने एक दस्ती (चिट्ठी) द्वारा मुझे भिजवा दी और उपरोक्त घटना का विवरण भी लिख भेजा। माता-पिता की अनुपस्थिति में मामा-मामी जी दीक्षा के समय पधार कर उसकी आत्मा पर उपकार करें, ऐसी विनती थी। जिस समय यह दस्ती (चिट्ठी) मुझे मिली उस समय तक दीक्षा की तिथि निकल चुकी थी। इस कारण दीक्षा उत्सव पर पटियाला नहीं पहुँच सकी, जिसका मुझे बहुत खेद हुआ। आज आत्मरश्मि में साध्वी जी के अभिनंदन के बारे में जानकारी प्राप्त कर मेरे स्मृति-पटल पर यह संस्मरण उभर आया है। वे शासन की अनवरत सेवा करती रहें, यही मेरी शुभकामना है।

卐

जिन चरणन में जीवन तर गया

-श्रीमती चाँदरानी जैन, जयपुर

महासती कौशल्या देवी जी महाराज मेरी श्रद्धेया हैं, आराध्या हैं। उनके शांत, शीतल आभा-मंडल से प्रभावित होकर मैं धर्म की ओर उन्मुख हुई। उनकी कृपा से मैंने प्रतिक्रमण, 25 बोल, भक्तामर, आदि अनेक स्तोत्र, नवतत्त्व, गुणस्थान, स्वरूप आदि कई स्तोक एवं स्तुतियाँ, भजन याद किये। एक उपवास से भी डरने वाली मैंने मासखमण तक की तपस्याएँ उन्हीं के आशीर्वाद से की। वे अत्यंत निस्पृही हैं इसकी एक घटना जिसने मेरे हृदय में अमिट छाप अंकित कर दी, वह इस प्रकार है -

एक बार मैंने गुरु-धारणा करवाने की उनसे प्रार्थना की। उन्हें पता लगा, कि ये पूर्व में महासती कौशल्या जी (लुधियाना वालों) से गुरु-धारणा ले चुकी है, उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया। मैंने उनके चरणों में विनम्र अर्ज की और कहा-

"गुरुजी! उस समय तो मैं गुरु-धारणा का अर्थ ही नहीं समझती थी, मैंने उनके कभी दर्शन नहीं किये, न उनके द्वारा प्रदत्त व्रतों का पालन किया। मैंने आपसे ज्ञान सीखा, मुझे आपसे नया जीवन प्राप्त हुआ, अतः आप ही मेरी गुरुणी हैं"

वे मुस्कुराकर कहने लगे - 'गुरुणी चाहे मुझे भी स्वीकार करो, परंतु गुरुधारणा तो उन्हीं की रहेगी।"

सचमुच, आपके चरणों का सान्निध्य प्राप्त कर मेरा जीवन धन्य हो गया।

समझदार वह है, जो झुक सकता है, झुकाना ये तो नादानों का काम है।

श्रद्धा के भव्य व्यक्तित्व का लघु शब्दांकन

- डॉ० मंजुलता जैन, सिकंदराबाद

सरलात्मा सरलमना प्रातः स्मरणीया पूज्य महासतियाँ जी, पूज्या कौशल्या देवी जी को मैंने निकट से देखा है। वे जितनी बाहर से संयमी, मितभाषी, सादगीपूर्ण और शांत है, उतनी ही अन्तःकरण से भी सरल, कोमल और निश्छल है । उनका वात्सल्य उनकी शिष्याओं को व्यक्तित्व विकास स्नेह की थपकियाँ देता हुआ महसूस होता है दूसरी ओर "वज्रादपि कठोराणी" उनका दृढ़ संकल्प उनके सहचरियों और दर्शनार्थियो को अनुशासन का पाठ पढ़ाता है। यही कारण है कि उनकी शिष्या परम्परा में अनेक सरस्वती, संयमी, साध्वियों की दीप शिखाएँ दैदिप्यमान हुई हैं, जो भारतवर्ष के अनेक प्रांतों में, नगरों में, गाँवों में अपने ज्ञान की ज्योति से, विवेक के सौरभ से और संयम की आभा से संचरण/विचरण कर रही है। जिन वाणी का सन्देश पहुँचा रही हैं, उनकी ओर ज्ञान का प्रकाश प्रसारित कर रही हैं। जैन धर्म और दर्शन की इन प्रज्जवलित ज्योतियों को समुज्जवलित करने वाली महान आभा पूज्या कौशल्या देवी गुरुवर्या को मेरा आस्था भरा कोटि-कोटि नमन।

जैन धर्म में 'सेवा' का बहुत महत्व है। पूज्य सेवाभावी म.स. कौशल्या देवी जी के व्यवहार से प्रतीत होता है मानों उन्होनें 'सेवा' को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना रखा है। बड़ों की छोटों की, सभी की वे पूर्ण रुप से वात्सल्य भाव से सेवा करती रहती हैं। उनका वात्सल्य उनकी ममता सदैव उनके चेहरे पर मुखरित रहती है। ऐसी वात्सल्य मूर्ति, ममतामयी, सेवाभारती, परमविदुषी, म.सा. कौशल्या देवी को मेरे शत शत वंदन, अभिवंदन, अभिनंदन।

卐

किसी को दास बनाकर कोई स्वामी नहीं होता । किसी को समर्थ बनाकर ही कोई स्वामी होता है ।

आस्था की दीप

सौ. बीना जैन, कालका जी, नई दिल्ली

श्री कौशल्या देवी जी म. का जीवन एक अत्यन्त ही आदर्शमय जीवन है। मेरा आपके साथ परिचय करीब 34 वर्ष पहले हुआ था। मैं उस समय कॉलेज मे पढ़ने वाली एक नये जमाने की कन्या थी और मुझे धर्म की कतई भी जानकारी न थी। सौभाग्य से पाँच महासतियों का हमारे घर पदार्पण हुआ और एक माह का समय मुझे जैन साध्वियों के बारे में जानने का सुअवसर बन गया। मैंने पहली बार इतने करीब से साध्वियों के तपपूर्ण जीवने के बारे में जानकारी हासिल की। उनके सम्पर्क में आकर मैंने जाना कि हर एक साध्वी अपने में अनोखी ओर व्यक्तित्वपूर्ण है। मुझे सबसे लगाव सा हो गया, मगर जिस साध्वी ने मेरे मन को अधिकाधिक छुआ वह कौशल्या देवी जी महाराज थी। उनका स्वभाव गंभीर और धीरज से परिपूर्ण था। सबसे अधिक चिंतन में लीन। यह प्रकृति मुझे तकरीबन भगवान सी मालूम होती हैं। मैंने भगवान को तो कभी नहीं देखा मगर कभी-कभार कल्पना से महसूस जरूर कर लेती हूँ। महाराज जी के पास मुझे ऐसी ही अनुभूति होती है। वे बहुत कम बोलती हैं मगर जो कुछ भी कहती हैं वह ज्ञान और धर्म का सुन्दर मिश्रण होता है। मेरे अनुमान से जैन साधु-साध्वियों का जीवन जीने का तरीका दुनियाँ में सबसे कठिन माना गया है। मगर कौशल्या देवी जी महाराज जी ने इसे भी आदर्श की चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। महाराज श्री का प्रेरणापूर्ण व्यक्तित्व सदा हमारा पथ-प्रदर्शन करता रहे, यही मंगल भावना।

卐

ये गुरू मेरे मन बसें

श्री सुशीलाबाई सेठिया, मैसूर

मैं एक ऐसे जीवन के विषय में अपने भाव प्रकट कर रही हूँ, जो जगत वल्लभ आध्यात्म योगी, अपूर्व आध्यात्म-भावों की धनी है। गुरू का पूज्य-भाव जिनके

इतने किसी के छाँव में न रहो, कि खुले में आ ही न सको।

रोम-रोम व प्रत्येक आत्मप्रदेशों में प्रकट हुआ है। वे ही गुरु कौशल्या देवी जी म. मेरे मन में बसे रहें।

ये गुरु आत्मसुख में विचरण कर रहे हैं। ये स्वयं शीतल रहते हैं और औरों को भी शीतलता प्रदान करते हैं। वे गुरु कौशल्याजी म. सदा मेरे मन में बसे रहें।

इन्होंने जग की अनित्यता को पहचाना। गृहस्थ के झंझावातों से उपभीत हुई और चल पड़ी, आत्मा की अखंड आनंदानुभूति पाने के लिए। ऐसे गुरु कौशल्या जी म. मेरे मन में बसे रहें।

ये पाँच महाव्रत धारते हुए उपयोग को आत्मोन्मुख कर संयम का साक्षात् परिचय दे रहे हैं। इनकी संयम की दृढ़ता मेरूपर्वत की तरह अकंप-अखंड है। आपकी जीवन साधना अनेकों रूपों में विद्यमान है। ऐसे महान गुरु कौशल्या देवी जी म. मेरे मन बसे रहें।

इन्होंने संयम की अखण्ड साधना से सेवा की सुगन्ध व प्रेम की ज्योति से अनेकों भक्तगणों के दुर्गुणों की दुर्गन्ध को मिटाया तथा अज्ञान का अंधकार मिटाकर सम्यक् ज्ञान का प्रकाश फैलाया। आपके चरण जहाँ भी पड़े वहाँ ही अमृत की वर्षा से पाप अनुताप धुल गये। ऐसे गुरु कौशल्या जी म. सदा मेरे मन में बसी रहें।

आपका नाम कौशल्या और आपका कुशल संयमी जीवन धन्य है।

महासती श्री केसर देवी जी म. आपको पाकर हर्ष विभोर हो गए और कहने लगे। ये मेरा फूल सदाबहार गुलाब का फूल है, ऐसे मेरे गुरु कौशल्या जी म. को मैं हृदय से नमन करती हूँ।

卐

वामन-स्वर विराट व्यक्तित्व

उषा जैन, दिल्ली (शालीमार बाग)

आज की इस पुनीत-वेला में मेरी लेखनी कुछ लिखने का आतुर है, किंतु इस सर्वतोमुखी विराट् व्यक्तित्व को शब्दों के सीमित दायरे में मैं बांध नहीं पाऊँगी।

वस्तु को चाहे हाथ में धरलें या वृत्ति में मान लें, तथापि वस्तु हमारी नहीं बनेगी, वस्तु तो वस्तु के स्वभाव में रहती है।

क्या कोई विराट सागर के पानी को गागर में भर पाया है ? ठीक कहा है, कि कस्तूरी की सुगंधि छिपाये नहीं छुपती, उसकी मनमोहक महक चहुँ दिशा को प्रभावित कर लेती है। उपवन में पुष्प के विकसित होते ही उसकी सौरभ से आकर्षित होकर भँवरे 'गुनगुन' करने लगते हैं। पावस की मौसम में जब अम्बर से वर्षा होती है तो संतप्त धरा शीतल सुखद हो जाती है। तुलनात्मक दृष्टिकोण से महाराज श्री जी की कीर्ति चहूँ और फैल रही है। उनके दिव्य गुणों की सौरभ से आकर्षित होकर सैंकड़ो श्रद्धालु दर्शनार्थ चरणों में उपस्थित होते रहते है। उनकी पीयूषवर्षी देशना, सुधा-सी मधुर वाणी से अपने हृदयों में अपूर्व आनन्द और शांति अनुभव करते हैं।

परमश्रद्धेया पूज्या कौशल्या जी महाराज के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करना मेरी जैसी के लिए सहज नहीं है। उनमें धरा सी विशालता, हिमालय-सी ऊँचाई, सागर सी गहराई, युवतियों सी स्फूर्ति, तथा वृक्षों-सी स्थिरता है। उनमें सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का अद्‌भुत संगम है। आपका समग्र जीवन कठोर तप तथा सतत आत्म-साधना का अद्वितीय उदाहरण है। विद्वानों के सान्निध्य में गंभीर अध्ययन चिंतन-मनन से ज्ञान की सर्वतोमुखी दिशाएँ आपमें गोमुखी गंगा के रूप में प्रस्फुटित हुई हैं। एक ही आसन में घंटों ध्यान-साधना में आप संलग्न रहती है। आपका मनोबल और संकल्प शक्ति बेजोड़ है। आपके चरणों में जब-जब बैठने का अवसर मिलता है, तो ऐसा अनुभव होता है कि मानो किसी दिव्य प्रकाश के सन्मुख बैठे हैं। इतने गुण होने पर भी आपमें अहंभाव की गंध नहीं है।

परम-प्रतापी महाराज श्री जी की आत्मा में एक अलौकिक आनंद ज्योतिर्मय प्रकाश का वास है। उनका मंद-मंद मुस्कुराता, शांतिमय चेहरा एवं चक्षुओं से प्रस्फुटित दिव्य प्रकाश उनके आंतरिक जीवन का दर्पण है। श्रद्धेय महाराज श्री जी का आशीर्वाद से उठा हाथ जीवन के थके हारे व्यक्तित्व में नये बल एवं पुरूषार्थ की भावना भर देता है। सांसारिक समस्याओं से जूझते-उलझते हुए अनगिनत प्राणी इनकी शरण में आकर विश्राम पाते हैं। उनके मृदुल विनम्र व्यवहार से प्रभावित होकर हर कोई अपने मन की बात बेझिझक कह देता है। आपके प्रति उभरी श्रद्धा एवं निष्ठा की भावना हमारी सुख-चेतना में आत्म-विश्वास के भाव जागृत कर देती है। शंका के कोहरे से घिरा मानस आपसे प्रकाश की किरणें पाता है। चिंतनशील तार्किक वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले युवा आपसे मस्तिष्क के तीखे प्रश्नों का ज्ञान

एवं तर्क द्वारा हृदय तलस्पर्शी एवं सूक्ष्म दार्शनिक एवं वैज्ञानिक सरल भाव से व्याख्या पाते हैं, और सन्तुष्ट होकर जाते हैं। क्या ज्ञान, क्या साधना उनका सब कुछ स्वाभाविक है।

मैने देखा है, कि अकेले बैठे हो या जनता के मध्य में उनके चिंतन में कोई अंतर नही आता है। महाराज श्री जी का संपूर्ण जीवन समन्वय की विशाल-भावना से ओतप्रोत है। गीता की भाषा में ये 'स्थित-प्रज्ञ' है।

उपर्युक्त वर्णित आत्मिक गुणों के कारण पूज्या महाराज श्री के चरणों में मस्तक बार-बार झुकता है। उनकी दीक्षा-स्वर्ण जयंति पर्व पर मैं उनकी दीर्घायु की कामना करती हूँ।

" सौम्य शांतमूर्ति हैं, सागर से गंभीर हैं,
मेरु से अकंप और, धरती से धीर हैं।
सूर्य सम तेजस्वी शीतल चंद्र समान है।
साधिका महान है, ये साधिका महान है।"

卐

गुरु ! कैसे तेरे गुण गाऊँ

श्रीमती सत्यावती जैन (जयपुर)

"गु" का अर्थ है अंधकार, "रू" का अर्थ है मिटाने वाले, ऐसे ही अज्ञान अंधकार को मिटाने वाले, भव्य जीवों को सन्मार्ग दिखाने वाले गुरुदेव महासती कौशल्या जी, जैन जगत के चमकते सितारे हैं। गुरुणीजी के गुणों का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाना है। मैं अज्ञानी चंद शब्द लिखकर ही संतोष कर रही हूँ। मैं कोई लेखिका नहीं, सिर्फ महासती जी के प्रति दो शब्द लिखकर अपने पाप कर्म क्षय करने हैं, इसी भावना से लिखने का दुस्साहस किया है।

परम श्रद्धेय कौशल्याजी महाराज जी का जन्म लाहौर में श्री खैरातीलाल जी जैन के घर माता तारादेई जी की कुक्षि से हुआ। श्रीमती तारादेई जी जैन एक महान् सुश्राविका नारी रत्ना थी। वे मेरी समधन भी है। आदरणीय तारादेई जी का जीवन व संसारी व्यवहार

धर्म से ओतप्रोत था। उनके उच्च विचारों का ही प्रभाव है कि उनका सारा परिवार ही पूज्यनीय तारादेई जी का अनुकरण कर रहा है, और धर्म रंग से रंगा हुआ है, लेकिन होनहार बालिका कौशल्या तो बिल्कुल पक्के केसरी रंग में रंग गई। धार्मिक वातावरण ने कौतुक दिखाया। संसार से मुँह मोड़कर, आध्यात्मिक दुनियाँ से नाता जोड़ लिया। मातेश्वरी तारादेईजी ने एक महान रत्न समाज को देकर समाज का बहुत बड़ा उपकार किया। धन्य हैं ऐसी भारत की वीरमाता। पंजाब सिंहनी, उपप्रवर्तिनी के चरणों में बालिका कौशल्या को भेंट कर दिया, पटियाला में कौशल्यादेवी जी ने दीक्षा पथ ग्रहण किया।

महासती कौशल्याजी, समतासिन्धु, सेवाभावी, ज्ञान की सूर्य, एक ऐसा कोहिनूर हीरा हैं, जिनकी चमक दमक से जैन जगत को चार चाँद लग रहे हैं, और अज्ञान अंधेरा दूर हो रहा है। ऐसे त्यागी गुरू ही, आत्मा से महात्मा, महात्मा से परमात्मा बनकर दुनियाँ को सही दिशा देते हैं।

सन् 1990 का वर्षावास, गुरुणी महासती केसरदेई जी, महासती कौशल्यादेवी जी ठाणा 8 का आदर्शनगर जयपुर होने से हमें उनकी विद्वत्ता का आभास हुआ। इतनी समता, शान्तमय, मुखमण्डल, चन्द्रमा सम शीतलता, कि दर्शन मात्र से ही पाप कर्म क्षय हो जाते हैं व आनंदानुभूति प्राप्त हो जाती है। मेरे पास शब्द नहीं जो मेरे जैसी अज्ञानी अल्पबुद्धि गुरुणीजी का गुण लिख सकूँ। यह आपकी शिष्यमंडली पर आपके गुणों की ही छाप है, कि सब शिष्याएँ गुणवान, समता रास की खान हैं। महासती श्री विजयश्री जी अति धीर, गंभीर, शांतमूर्ति, समता सिन्धु, ज्ञान के सागर हैं, जिनके दर्शन-मात्र से ही शांति प्राप्त हो जाती है। उन्हें देखकर बरबस महासती कौशल्याजी का स्मरण हो आता है। यह महासती श्री कौशल्या जी म. की ही देन है, कि आपकी सभी शिष्या साध्वी मंडल समता सागर, ज्ञान भण्डार, जिन धर्म का श्रृंगार है, और महावीर वाणी का प्रसाद दुनियाँ में बाँट रही हैं। जो भव्य प्राणी प्रसाद ग्रहण करेंगे, वे ही हलुकर्मी बन पायेंगे। महासती कौशल्याजी रोशनी की मीनार है, जो दुनियाँ में प्रकाश फैलाकर धर्म का पथ दर्शा रही हैं।

हे गुरूणीजी आप दीर्घायु हों, भव्य प्राणियों का मार्गदर्शन करते हुए सच्चे ज्ञान, धर्म की रोशनी से, जैन जगत को रोशन करती रहे, और जिनशासन की शोभा बढ़ाती रहें। मेरे जैसी पापी पर कृपा दृष्टि रखियेगा, यह विनती है कि मैं सच्चे पथ पर चलती हुई आत्मा को हलुकर्मी बनाऊँ।

स्वर्ग और नर्क हमारे भीतर ही है।

सदा चमकता कोहेनूर

रमण जैन, अम्बाला

मुझे अपने जीवन में अनेकों महापुरुषों के दर्शन करने का एवं उनके मधुर सान्निध्य में बैठने का सुअवसर मिला। लेकिन जिस व्यक्तित्व ने मुझे सबसे अधिक आकर्षित किया, वे हैं - साध्वी श्री कौशल्या जी महाराज।

आकाश में अनेक तारे दृष्टिगोचर होते हैं, लेकिन महत्ता किसकी है, चन्द्रमा की। समुद्र में अनेक मच्छ-कच्छ, सीप, शंख होते हैं, लेकिन महत्त्व किसका है, रत्नों का। इसी प्रकार जिन-शासन रूपी आकाश में भी अनेक तारागण हैं, लेकिन महत्त्व किसका है, शीतलता व ज्योत्स्ना रूपी गुणों से युक्त चन्द्रमा रूपी संत-साध्वियों का। इसी श्रृंखला में महासतीजी अग्रगण्य है।

लाहौर के एक धनाढ्य परिवार में जन्म ले समस्त वैभव को ठुकरा कर जिन शासन की शान बने। आपके जीवन की जिस विशेषता ने मुझे सबसे अधिक आकर्षित किया - वह है, आपकी गम्भीरता। आपकी गम्भीरता आपके चेहरे से झलकती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो धर्म-ग्रंथों का मंथन कर आपने इस धर्म की यथार्थता को जान लिया है।

आपका जीवन इस चमकते हुए कोहेनूर हीरे की तरह है, जो प्रतिक्षण अपनी दिव्यता और भव्यता से जन-जन को आकर्षित करता है। आपका सम्पूर्ण जीवन सद्गुणों का आधार है, आपमें सरलता है, सौम्यता है, स्नेह और सद्भावना है। आप सरल मति, सरल गति, सरल आत्मा व सरल व्यवहारी हैं।

कहते है कि चावल पुराना व घी नया अधिक लाभदायक होता है। आप श्रमण संघ में पुराने चावल की भाँति बड़ी ही मंझी हुई साध्वी हैं। आपकी वाणी में अपार ओज, व्यक्तित्व में नम्रता, शांतता और व्यवहार में शालीनता है। आप देवी-स्वरूपा साध्वी हैं, त्याग-वैराग्य की प्रतिमूर्ति हैं। आप श्री जी आगमों की अद्भुत अध्येता हैं। आपने अपने शिष्या वर्ग को भी अलौकिक व आध्यात्मिक विद्या में लगाया, यही कारण है, कि आपकी अधिकतर साध्वियाँ एम.ए. या पी.एच.डी. हैं।

अच्छा काम वही है जो दूसरे के चेहरे को प्रसन्नता से खिला दे।

अभिनन्दन स्वरूप में शासन देवी से यही प्रार्थना करती हूँ कि आपका वरद् हस्त हम अल्पज्ञों पर बना रहे।

卐

मस्तक झुक जाता है चरणों में

सौ. सुरेखा बोरूंदिया (आलंदी देव)

जिन्होंने दुर्गम पथ को सहज-सरलता से अपनी जीवन की साधना से एवं ज्ञान की अविरल आराधना से जन-जन की सुविधा के लिए सुगम बना डाला, ऐसे महासतीजी कौशल्याजी का जीवन-दर्शन सभी के लिये उपदेश है।

"मिथ्यात्व का हटा अंधेरा, सूरज बन प्रगटी श्री कौशल राज।
अनंत अनंत पुण्यवानी प्रकटी, धन्य दिवस है आज॥"

सरोवर में कमल खिलते हैं, दो-चार दिन में ही मुरझा जाते हैं, पर जन मानस पर अपनी छाप छोड़कर अपनी सुवास, सुकुमारता और सौन्दर्य से मन को मोह लेते हैं और भ्रमरगण तो पागल हो जाते हैं। उसी प्रकार संत सतियों का जीवन कमलवत् है। जो खिलता, मुस्कुराता जन-मन को मुग्ध करता पराग से भरपूर, स्नेह सुरभि से ओतप्रोत है। कोई भी आये चरण-कमल में, स्नेह की सुगंध उन्हें सहज ही मिल जाती है। आपका हृदय अतीव सुकोमल है। किसी की पीड़ा, किसी का दर्द, किसी का झगड़ा, आपसे देखा नहीं जाता। हृदय व्यथित हो जाता है। आपकी प्रेरणा से कई स्थानों पर नारी जागरण के लिए महिला-मंडल, बालिका मंडल, धार्मिक पाठशालायें, और संघ की एकता, के प्रयास हुए। आपने बेसहारा महिलाओं को सहारा दिलाया। वृद्ध, पीड़ितो, अपंगो को दिलासा दिया। आप कोमल हैं दुःखी बेसहारों के लिये, पर खुद के लिए नहीं।

आपने शरीर का कण-कण और समय का क्षण-क्षण निस्वार्थ भाव से समाज, संघ एवं धर्म की उन्नति के लिए अर्पण कर दिया है। अतः सभी प्रान्त आपके प्रति श्रद्धा-केन्द्र बन गये हैं। सत्य, शील से समन्वित है आपका सुंदर जीवन। वाणी के अनुसार छाँव। कथनी-करणी में कोई अंतर नहीं एकदम शुद्ध एवं पवित्र

जो स्नेह से बंधा हो वही बंधु है, जो विपत्ति में साथ दे वही मित्र है।

आचरण। धर्म के जितने भी अंग हैं, आपके जीवन में समाहित हैं। शांति, समता, शुचिता, सद्भावना, संयम, सादगी आदि अनेक आचरणीय आदरणीय सद्गुण सौंदर्य से आपश्री का पूर्ण खिला हुआ जीवन दर्शन है। इसलिये हर मानव आपके चरणों में आकर शांति पाता है। अपने नयन, मन को पावन बनाता है।

उनकी सुयोग्य शिष्या महासती श्री विजय श्री जी म.सा. आदि सतियों के स्मरण से मन को एक प्रेरणा प्राप्त होती है। वे हमें अंधेरे से हटाकर उजाले में लाये हैं। जब वे इतनी महान् हैं तो उनकी गुरूणी कितनी महान् होंगी, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

बा. ब्र. महासतीजी श्री कौशल्यादेवी जी म.सा. "सन्त हृदय नवनीत समाना" इस उक्ति की साकार मूर्ति हैं। आपका हृदय मक्खन के समान कोमल है जैसे मक्खन आँच पर रखते ही पिघल जाता है, वैसे ही दुःखियों के सन्तप्त जीवन को देखकर आपका हृदय भी द्रवित हो उठता है। महासती जी का जीवन करोड़ों मानवों के लिए समर्पित है। ऐसी सेवा, प्रेम, करुणा की मूर्ति को शत-शत नमन के साथ मेरा हार्दिक अभिनंदन!

卐

समत्व की साधिका: महासती कौशल्यादेवी जी म.

युवराज मेहता, जयपुर

जीवित साधकों को सम्मानित करने वाला समाज ही जीवन्त रहता है। सम्मान वास्तव में व्यक्ति का नहीं गुणों का किया जाता है, गुणों के धारण करने वाले का, गुणों को आत्मसात करने वाले गुणी का किया जाता है। अध्यात्मिक सातिका श्री कौशल्या जी महाराज जो सेवा, विनम्रता, कर्त्तव्यपरायणता, सहनशीलता, कष्टसहिष्णुता, सत्यनिष्ठ, क्षमा, सरलता, दृढ़ता आदि अनेक गुणों से विभूषित हैं। उनके सुदीर्घ संयमी जीवन पर उनका हार्दिक अभिनंदन करते मन हर्षित हो रहा है। क्योंकि उन्होने अपने जीवन के 68 वर्षों के एक-एक पल को, एक-एक क्षण को बड़े सचेत और जागरूक होकर चैतन्य की खोज करते हुए जीया है। ऐसी महान आत्माओं का जीवन भी सार्थक, तो जयंति मनाना भी सार्थक।

दुष्ट पुरुष की विद्या लड़ाई के लिये, धन अभिमान के लिये, शक्ति लोगों को सताने के लिये!

उन्होने अपने संयमी जीवन के 50 पड़ावों को बड़ी स्वाभाविकता और सहजता से पार किया है। उनका समीप्य ही सबको अपनत्व और आनन्द से भर देता है। जैसे श्रान्त पथिक को छाया में आकर विश्राम मिल जाता है, उसी प्रकार से मानसिकता से बोझिल जो भी व्यक्ति आपके श्रीचरणों में आकर बैठता है, उसे आपके सामीप्य से जितनी शांति और संतोष मिलता है उतना ही उनका मन आपके प्रति आदर, भक्ति और श्रद्धा से भर जाता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी के शब्दो में कहें तो -

"जितने कष्ट कंटकों में हैं, जिसका जीवन सुमन खिला।
गौरव-गंध उन्हें उतना ही यत्र-तत्र-सर्वत्र मिला।"

वस्तुतः वे अपने संयमी जीवन की अनुकूलता, प्रतिकूलता में, सुखों-दुःखों में, उपसर्गों-परिषहों में प्रशंसा और निंदा के क्षणों में भी अपने उत्कृष्ट लक्ष्य (कर्मों की निर्जरा करना) को कभी नहीं भूली उनके इसी आत्मिक सौन्दर्य की स्मृति में एक छोटा सा संस्मरण या मधुर स्मृति कहिये जो कि मेरे मन को अभिभूत कर जाती है -

कई बार ऐसा देखा बहुत से श्रद्धालु व परिचित, दर्शनार्थी व भक्त नित्य प्रति उनके दर्शनों का सौभाग्य लेने तो आते ही हैं। कुछ लोग मुक्त कण्ठ से उनकी प्रशंसा करते हैं, कुछ अतिशयोक्ति की भाषा में गुण-ग्राम भी करते है। और कुछ लोग इधर- उधर की चर्चा-वार्ता भी करते हैं, लेकिन वह समत्व की साधिका, आत्मश्लाघा के भाव से कभी गर्वित नहीं हुई, न ही कभी इधर-उधर की बातों में उलझकर समय को व्यर्थ और मन को विचलित किया तथा न ही कभी प्रशंसा करने वालों को विशेष महत्व दिया।

साधना-पथ पर चलते हुए सभी को तो प्रसन्न नहीं रखा जा सकता। एक-दो बार ऐसा भी प्रसंग देखने-सुनने में आया। चातुर्मास न मिलने के कारण विरोधी लोग भी उनके समीप छिद्रान्वेषण को आते भला-बुरा कह गये, व्यंग्य कटाक्ष कर गये पर -

"सार-सार को ग्रहण करे, थोथा देय उड़ाय"

वाली कहावत को ध्यान में रखती हुई व समत्व साधिका जरा भी क्षुब्ध नहीं हुई, जरा भी विचलित नहीं हुई, उनकी सौम्य मुखाकृति में कोई परिवर्तन नहीं आया

सत्पुरुष की विद्या ज्ञान के लिये, धन, दान के लिये,
शक्ति दुखियों की रक्षा के लिये।

ओर न ही उनकी भाषा में कोई रूक्षता आयी। और न ही ऐसे निंदनीय प्रसंगों की या व्यक्ति विशेषों की उन्होंने कभी किसी से कोई चर्चा की। बल्कि हमेशा की तरह ध्यान, स्वाध्याय, मौन, तप, संयम और साधना में जुटी रहीं। मानों व्यर्थ की बातें करने और व्यर्थ चिंतन करने का तो उनके पास समय ही न हो, और महाकवि मैथिलीशरण जी की इस कथनी को चरितार्थ कर गई।

"कहा - राम ने कि, यह सत्य है,
सुखःदुख सब हैं समयाधीन।
सुख में कभी न गर्वित होते,
दुःख में कभी न होते दीन॥"

उनके गुणों की गरिमा की थाह तो मैं नहीं ले पायी हूँ ओर न ही मुझ में इतनी सामर्थ्य, फिर भी थोड़ा सा अल्प सान्निध्य मिल पाने के कारण ये थोड़ा सा ही मैं जान, समझ और महसूस कर पायी हूँ कि विवादों के घेरे में रहकर भी विवादातीत रहने वाली मातृवत् सहिष्णु सरल समतामूर्ति साध्वी श्री कौशल्या जी महाराज को वंदन, शत-शत वन्दन।

करुणामूर्ति व सेवामूर्ति

लीलावती जैन, कोटा
(अध्यक्षा, महिला समाज)

महासती जी श्री कौशल्यादेवी जी महाराज सेवा की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं, उनकी सेवा देखकर मुझे नंदिषेण मुनि की कहानी याद आ जाती है। अपनी गुरुणी की ज्वर के दौरान आपकी सेवा देखकर मैं दंग रह गई, कि इतनी शिष्याओं के होने पर भी गुरुणीजी की सेवा में इतनी तत्परता सचमुच सेवा का जीवंत आदर्श उपस्थित कर देता है। दूसरी ओर उनकी शिष्या सरोज जी महाराज भी कोटा छावनी में एकाएक मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं, उस समय उनकी धैर्यता, अविचलता और सेवाभावना का एक दूसरा रूप भी उनमें साकार होने लगा। मेरा मन उनके चरणों में श्रद्धा से नत हो गया। मन ही मन यह सोचकर कि -

'उपदेशक से आचारक कई गुना श्रेष्ठ है।'

आप चिरकाल तक पथ-भ्रष्ट मानवों का कल्याण करती रहें। यही मेरी शुभ कामना है।

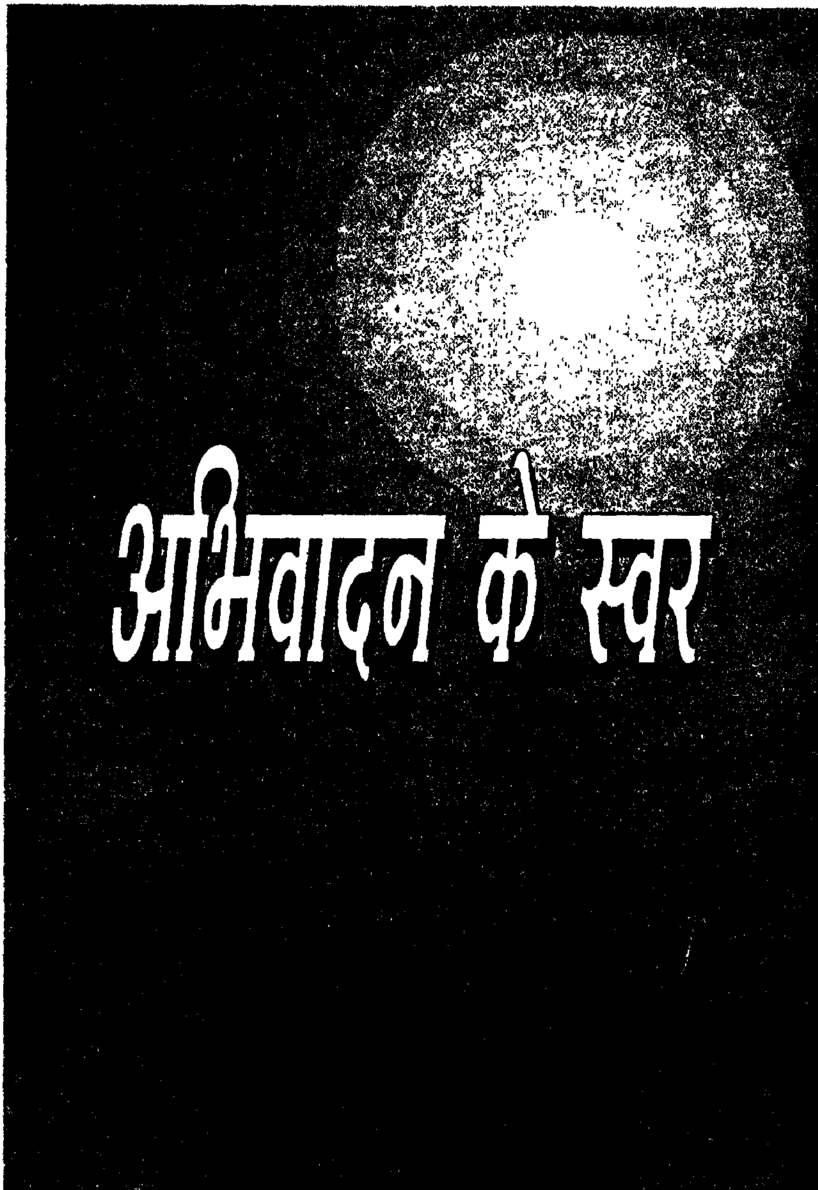
"आपकी इबादत के क्या कहने ?
आपकी बंदगी के क्या कहने ?
जो शमां की मानिंद हैं रोशन
आपकी जिन्दगी के क्या कहने ?"

विचार -कण

संत नदी की भांति जीता है, सरोवर की भांति नहीं । संत सरिता है, गृहस्थ सरोवर । सरिता सदा आगे से आगे बढ़ती जाती हैं, वह जहाँ-जहाँ जाती हैं, वहाँ-वहाँ प्यास बुझाती है, रस बरसाती है और जन जीवन का पोषण करती हुई अंत में अपने आराध्य सागर में लीन हो जाती है।

सरोवर चारों ओर से बंधा होने से आगे नहीं बढ़ता, और न कहीं रस बरसा पाता है, वह एक ही स्थान पर पड़ा-पड़ा अंत में सूख जाता है। संत की यात्रा परमात्मा की ओर आगे बढ़ती है। गृहस्थ की यात्रा बंधी रहती है।

संत वही जो इस संसृति में, होकर विराग से अजितरंजित।
आसक्ति से ऊपर उठता, पंकज सम रे। पंकविवर्जित।


अभिवादन के स्वर

प्रशान्त मूर्ति श्री कौशल्या जी

पूज्य प्रवर्तक मुनिश्री रूपचन्दजी महाराज (रजत)

जाहिर जहान तेरो नाम, कौशल्या सती है,
तपस्या की सिद्धी त्यों, प्रसिद्ध दरसाई है॥

दिव्य तपधारी, अवतारी, विश्व वाटिकाहु,
षोडशकला को जाने, परा प्रभुताई है॥

शील व्रत पालन में, द्वितीय दमयंती तूँ ही,
विधि ने बनाई करी पूरी निपुणाई है॥

भारी तपधारी, थारी 'रूप' लिखवारी काव्य
कली मध्य कौशल्या जी, संयम में सवाई है॥

दिखीयों लक्षगुन लहरतो, शुक्ल पक्ष सम सेव।
अभिनंदन ग्रंथ अक्ष रहो , ततक्ष रहे गुनभेव॥

पारस मनि सम गुरूकृपा, जन तन लोह समान।
सो मिटी देव स्वरूप भये, कंचन करन प्रमान॥

शुभ कविता से रहत है, बहु दिन निश्चल नाम।
अनेक रूपे होई के, प्रसरत ठामहि ठाम॥

तुम चरित्र के ग्रंथ को, सब पढ़सी संसार।
सद्गुन जो संग्रह करे, होई भवनिधी पार॥

जैसे जलधि के विशे, अति धुनि नीर समाव।
तैसे अभिनंदन ग्रंथ है, संयम शील दरियाव ॥

चिंतामणी सम सर्व को, आवण को अति काम।
अभिनंदन ग्रंथ अमूल है, 'रूप' करे गुनग्राम॥

***

जहाँ मौन से काम होता है, वहाँ बोलने से क्या लाभ ?

जप-तप-शम-दम-संयम-सेवी 'महासती कौशल्या देवी'

(षटदशी)

उपप्रवर्तक "चन्दन मुनि" (पंजाबी)

(१)
केसर देवी श्रमणी की जो,
शिष्या मुख्य महा मशहूर।
'महासती कौशल्या देवी'
मान शान शठता से दूर॥

(२)
जिससे जुड़ी आपकी जीवित,
पावन अमर कहानी है।
जन्म नगर लाहौर आपका,
अब जो पाकिस्तानी है॥

(३)
रामचन्द्र की माता जी का,
जो था प्यारा-प्यारा नाम।
मात-पिता ने बहुत प्रेम से,
रक्खा वही तुम्हारा नाम॥

(४)
'तारादेवी' प्यारी माता,
पूज्य पिता 'खैराती राम'।
'ओसवाल' विख्यात वंश में,
आप अवतरीं उनके धाम॥

(५)
उगनीसौ पच्चासी सम्वत्,
आषाढ़ वदि प्यारी थी।
कन्या के ग्रह श्रेष्ठ श्रवण कर,
खुशी सभी को भारी थी॥

(६)
युवा अवस्था में पग धरते,
मन में जाग गया वैराग।
'केसरदेवी महासती' से,
दिया आपने जग को त्याग॥

(७)
पूज्य 'श्रमण' मुनि फूलचन्द्र ने,
दीक्षा पाठ पढाया था।
सारा ही 'पटियाला' मन में,
फूला नहीं समाया था॥

(८)
चैत्र वदी तिथि पाँचो प्यारी,
सम्वत् दो हजार था तीन।
जैनागम का ज्ञान प्राप्त कर,
आप बने फिर परम प्रवीण॥

(९)

हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत, उर्दू,
इंग्लिश, पंजाबी सीखी।
सीख गये गुजराती भी, थी,
बुद्धि बहुत निर्मल तीखी॥

(१०)

जैनागम बत्तीस पढे थे,
कंठ सैंकडों स्तोक किये।
न्याय, दर्शन, स्तोत्रादिक,
बहुत-बहुत थे सीख लिये॥

(११)

तत्वज्ञान परिपूर्ण भाषण-,
शैली जो अपनाई है।
क्या बतलायें जनता के मन,
कितनी भारी भाई है॥

(१२)

दम्भी-पाखंडी-मिथ्यात्वी-,
को जो दूर हटाती हैं।
सतियाँ विरली बहनों को जो,
सच्चा धर्म सिखाती है॥

(१३)

हरियाण, पंजाब जगाया,
महाराष्ट्र फिर मध्य प्रदेश।
तमिलनाडू, कर्नाटक, दिल्ली,
आन्ध्र प्रदेश जगाया शेष॥

(१४)

'विमला सती' 'सरोज सती जी'
'मंजू' 'विजय श्री' प्यारी जी।
चारो सतियाँ अति गुणवतियाँ,
शिष्याएँ सुखकारी जी॥

(१५)

अधिक कहें क्या और आपके,
नहीं, गुणों का आता अन्त।
आप समान संयमी विरले,
क्रियापात्र हैं सतियाँ सन्त॥

(१६)

'गीदड़बाहा मण्डी' में जो,
पंजाबी मुनि चन्दन है।
महासती के गहन गुणों का,
करता शत अभिनंदन है॥

* * *

गुरू महिमा बेअन्त है

श्रमणसंघीय सलाहकार श्री ज्ञानमुनि जी म०

गुरू महिमा बेअन्त है, कभी न आवे पार।
प्रभु से भी यह है बड़ी, गुण गाता संसार॥

सौ चन्दा क्या कर सके ? सूर्य चढ़े हजार।
फिर भी बिनगुरू के सदा, रहता है अंधियार॥

गुरू ब्रह्मा गुरू विष्णु है , शंकर हैं गुरूदेव,
जपी तपी गुण रहे, इनकी करते सेवा॥

कौशल्या जी गुणवती साध्वी तपभण्डार।
जीवन में है सरलता, तन–मन है अविकार॥

रंग चढ़ा वैराग्य का तजा मोह परिवार।
जैन साधना स्वचछ है दयाधर्म साकार॥

आगम शिक्षण उच्च है नही जरा अभिमान।
समता सरिता में बहें तप संयम की खान॥

शिष्याएँ भी योग्य हैं करती सब सम्मान।
मन मे सेवा भगवती, पावन है श्रद्धान॥

अपने गुरूओं का सदा, जो करता गुणगान।
वही जगत में धन्य है विनयवान धीमान॥

श्री कौशल्या जी बनें श्रमणसंघ की शान।
रहे सदा इस जगत में कहता है मुनि 'ज्ञान'॥

***

गुण - गरिमा

जिनेन्द्र मुनि 'काव्यतीर्थ'

खिली केसर की क्यारी, लगे सबको ही प्यारी,
आप महिमा की धारी, ज्ञान दीपक जलाती हैं।
जो भी चरणों में आते, वाणी सुन ना अघाते,
सार जीवन का पाते, मन सुमन खिलाती हैं।

रहें मृदु व्यवहारी, आप महा गुणधारी,
कहे सब नर-नारी, अमृत पिलाती है।
महासती ! धन्य-धन्य, तुमसा ना देखा अन्य,
श्रमण जिनेन्द्र पुण्य, आप तो जगाती हैं॥

छोटी थी ऊमर जब, ले लिया संयम तब,
केसर की क्यारी अब, सौरभ लुटाती है।
समता के फूल खिले, ज्ञान-ध्यान गुण मिले,
साधना के पथ चले, मन को लुभाती हैं।

सरल सहज मन, संयम जीवन धन,
साधना नन्दन वन, पीयूष पिलाती हैं।
मन को 'जिनेन्द्र' जीत, गाये नितप्रभु गीत,
समय ना जाये बीत, सफल बनाती है॥

सती केसर उदार , करे नैया भव पार,
मन अटल विचार, सदगुण की निधान है।
कौशल्या जी महासती, साधना में रत रहती,
प्रभु गुण गान करती, सिद्धि का सोपान है।

वीर की वाणी का सार, जीवन में लिया धार,
करें भावना साकार, सब गुणो का सम्मान है।
कहता जिनेन्द्र मुनि, साधना की लगी धुनि,
धन्य मधु वाणी पुनि, सुधा के समान है॥

साधु का भूषण विद्वत्ता नहीं, त्याग है।

भारत में घूम-घूम, श्रोताओं में झूम-झूम,
आगम को चूम-चूम, वाणी को सुनाती हैं।
नर-नारी दौड दौड, घर द्वार छोड़-छोड़,
अन्तर को मोड़-मोड़, सत्य को सिखाती हैं।

सोये मन को जगाती, पथ तम में दिखाती,
मन माया से हटाती, धर्म ध्यान में लगाती हैं।
एक सुर एक ताल, अहिंसा की ले मशाल,
दिल 'जिनेन्द्र' विशाल, ज्ञान रोशनी दिखाती हैं॥

गहन आगम ज्ञान, बडे ही विनयवान,
शासन में पहचान, धर्म की ताज है।
विमल विजय द्वार, सरोज से गुण धार,
मंजुल सुव्यवहार, करे सब नाज है।

कोकिला सी वाणी वाली, महिमा बड़ी निराली,
'जिनेन्द्र' जाता ना खाली, सकल समाज है।
तिरते तिराते नाव, अन्तर में है उच्छाव,
दर्पण समान भाव, खुशियों का साज है॥

गली-गली ग्राम-ग्राम, गूंजे आपका ही नाम,
कहे लोग सुबह शाम, आप पुण्यवान है।
स्नेह सरिता बहाये, खुशी सारे मन लाये,
वाणी सुन-सुन झूम जाये, ऐसी ज्ञानवान है।

जाना भव जल पार, वाणी प्रभु की उच्चार,
भोले जीवन संवार, कर जीवन उत्थान है।
द्वय सती जी महान, जिन शासन की शान,
लगे पारस समान, सच 'जिनेन्द्र' महान है॥

***

लक्ख - लक्ख अभिनन्दन

(पंजाबी कविता)

श्री मेजरमुनि जी म०

(१)

देश पंजाब दा शहर सोहना, नां मशहूर जीहदा लाहौर सीगा ।
सारी दुनियाँ दे शहर सोहनियां तों, घट न किसे वी तौर सीगा॥
गढ ओसवालां-जैनियां दा ओह, असां वेखियां कर गौर सीगा।
लाला खैरातीलाल दा वास ओथे, यश जिन्हां दा चारों ओर सीगा॥
तारा देवी जैन दी कुक्खों जन्म लै के, ओन्हां नु खूब सत्कारिया सी।
"कौशल्या देवी" बच्ची दा नां धरके, माँ पिया वी बड़ा दुलारिया सी॥

(२)

विक्रम संवत् उन्नीसौ अठाई दा, भागां भरियां दिन ओ आया सी।
जैन घराने विच जन्म लै के, जग्ग अन्दर नां चमकाया सी॥
पूज्य सोहनलाल जी अमृतसर बैठे, जैनधर्म ते जिन्हां दी छाया सी।
"होनहार विरवान दे चिकने पात" होंदे, एस गल्ल नुं बखूबी अजमाया सी॥
उमर होई सोला साल दी जद मन मतड़े जोबन ने पैर आन धरया।
माँ पियो ते शादी दा सोचदे सी, ऐ पर कौशल्या ने इरादे होर करया॥

(३)

जिन्हां जीवां ने आत्म कल्याण होवे करना, ओन्हां दी स्वलड़ीए तकदीर हुंदी।
राह खुद-ब-खुद ही मिल जांदी, ओसे राह चलन दी हर तदबीर हुंदी॥
कोई रोकने दी हिम्मत नही कर सकता, ऐसी लाजवाब ओन्हां दी जमीर हुंदी।
अस्सां वी खूब डिट्ठा परख करके, हस्ति ओनां दी बेनजीर हुंदी॥
गल्लां बहुतियां दी लोड की ए , मैं थोडे विच मुका देवां।
सोहनी-रंगली जवानी नूं मोड़ त्याग वल्ल, गुरणी "मोहनदेवी" तांई हत्थ फड़ा देवां॥

अतीत की चिंता भले ही मत करो, पर अतीत पर चिंतन अवश्य करो।

(४)

विक्रम संवत् २००३ महीना फग्गन दा जो सिर ते खड़ी जीहदे मौसम बहार सी गी।
"महासती केसरदेवी" दीक्षा दी त्यारी विच रूज्झी, मिट्ठी जेही जीहदी गुफतार सी गी।
पटियाले शहर विच रौनकां लग रहियां, गली-गली अंदर खिड़ी गुलजार सी गी।
आखिर ओह घड़ी सुलखणी आन पुज्जी, लोकांनु काहली नाल जी दी इंतजार सी गी॥
दीक्षा पाठ पढ़ाया "श्रमण श्री फूलचन्द्र जी ने एहतां सोहने नुसुहागे वाली गल्ल होई।
पुनवानां नु पुनवानी संयोग मिलदा, एह बात जग्ग दे विच अटल्ल होई॥

(५)

दीक्षा लैंदिया ही शुरू पढ़ाई कीती, नाले सेवा तपस्या वल्ल ध्यान होया।
हर वेले संयम विच रक्ख उद्धम, इक्क पल नहीं फालतू गवान होया॥
कुझ साल पंजाब दिल्ली विच लाके, फेर दक्षिण भारत वल्ल रवान होया।
बीस साल तक प्रचार दी धुम्म पाई, ओधर गर्मी-सर्दी सिर परवा न होया॥
दस हजार किलोमीटर दा सफर तै करके, आखिर मुड़ पंजाब फेरा पाया जी।
२२ अप्रैल सन् ८४ नु जद आचार्य भगवन देवेन्द्र अंबाले आया जी॥

(६)

समता साधना दी एह मूर्त सोहनी, जैन धर्म नु खूब चमका रही ए।
उनोदरी तप ते शांत चित्त रैहंदी, गुस्सा कदे न मन लिआ रही ए।
अठारा चेलियां दा बढ़ा लै सिंघाड़ा, ज्ञान-दर्शन-चारित्र दी मोहर छाप लगा रही ए।
फकीरी धारयां ५० साल होन चल्ले, नम्रता दी मूरत बन संघ नुं चमका रही ए॥
पहली बार अंबाले पा दर्शन, 'मेजर मुनि' दा गद्‌गद् चित्त होया।
लक्ख वारी मै तेरा करां अभिनन्दन, शील-संयम जीहदा सदा मित्त होया॥

* * *

हो अभिनन्दन आपका

जिनेन्द्र मुनि 'काव्यतीर्थ'

(१)

आत्म साधना सहजता, ज्ञान ध्यान गुण धाम।
कौशल्या जी आपका, गूँजा चहुँ दिश नाम॥

(२)

आत्म गुरु से आपने, पाया आगम ज्ञान।
विनयवान गुणवान बन, देती सम्यक् ज्ञान॥

(३)

दूर - दूर तक घूम कर, फैलाया जिन धर्म।
भ्रम के बन्धन काटने, समझाते सत् मार्ग॥

(४)

महासती जी आपका, जीवन आभावान।
जैन जगत में आपकी, अनुपम है पहचान॥

(५)

सरलभाव मन में लिए, देती सद् उपदेश।
पीड़ित राहत पा रहे, सुन आगम सन्देश॥

(६)

पावन प्रतिभा पुंज हो, कोश धर्म का धार।
कौशल्या जी कर रही, जीवन का उद्धार॥

(७)

शिष्याएँ सब योग्य हैं, शोभित होता संघ।
जिन की प्रतिभा देखकर, हो जाते सब दंग॥

(८)

महक रहा है जगत मे, ये केसर का बाग।
बढ़ता जाये अर्निश, जन-मन में अनुराग॥

(९)

हो अभिनन्दन आपका, विजयी बने विचार।
'मुनि जिनेन्द्र' तुम से मिला, शब्दों को आधार॥

***

वन्दना - एकादशी

जैनार्या सुदर्शनप्रभा, बी. ए. (गुरू पुष्कर कौशल्या शिष्या)

(१)

वात्सल्यमूर्ति अध्यात्म योगिनी, जन्मी आप लाहौर में।
ओसवाल वंशी कुल अवंतसी, तारा माँ के आँगन में॥

(२)

आसाढ़ बदि आठम संवत् उन्नीसौ पच्चासी आला।
सन् उन्नीसौ अठाईस में, जन्मी कौशल्या बाला॥

(३)

धर्मध्यान में चित्त लगा, वैराग्य का रंग लगा है।
असार यह संसार जानकर, संयम का भाव जगा है॥

(४)

संवत् दो हजार तीन साल, सन् उनीस सौ सैंतालीस।
पटियाला पंजाब प्रांत में, दीक्षा ली है हर्षित॥

जिनमें चिन्तन का अभाव है, वे दूसरों से बहुत जल्दी प्रभावित होते है।

(५)

फूलचन्द ज़ी दीक्षा दाता, प्रवर्तक श्रमण शिरोमणि।
उपप्रवर्तनी महासती श्री केसरदेवी गुरणी।

(६)

गौरवशाली नीतिश्री जी, गुरू-भगिनी हैं प्यारी
विमला सरोज़ मंजु विजयाश्री, शिष्या विनयी सारी॥

(७)

प्रशिष्याएँ तेरह आपकी, चमके जैन समाजा।
विचर रही हैं देश-देश में, धर्म-जागृति काजा॥

(८)

सात प्रदेश में आप विचरीं, सप्त-भाषा विज्ञाता।
न्याय-दर्शन साहित्य आगम, स्तोत्र ज्ञान अध्येता॥

(६)

शांत दांत सागरवर गम्भीर, हो ओजस्वी वक्ता।
सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति हो, लिए तत्त्व-गहनता॥

(१०)

श्री 'कौशल्या' कृपा से सुदर्शन पद्य बनाया आला।
श्री चरणों में अर्पण करती, भाव-सुमन की माला॥

(११)

कौशल सम्यक्-दर्शन से, आत्म विमल बनाना।
भव्य-जनों को दे दिग्दर्शन, भव जल पार लगाना॥

* * *

लाखों वर्ष जीवन जाने पर भी जो अनुभव नहीं होते
उतने अनुभव जीवन-चरित्र पढ़ने से मिल जाते है।

"स्वर्ण जयंती है शुभ आई"

डा. सुव्रतमुनि शास्त्री

श्री गुरु कृपा प्रसाद से, कर जिनवर का ध्यान।
विमल ज्ञान चरित्र बढ़े, होवे आत्म कल्याण॥

मन्त्र विशुद्ध परमेष्ठी, जैनागम का सार।
पंचम पद उसमें कहा, मन्त्रराज आधार॥

कषायाग्नि में जल रहा, देखो सब संसार।
उसे शमन का बोध दें, सन्त सती अणगार॥

(१)

साधु सती के जो गुण गावे। जीवन मंगलमय बन जावे।
दुर्गुण सभी दूर हो जावे, सदगुण कमल हृदय विकसावे॥

(२)

दिन-दिन गौरव बढ़े उसी का, स्त्रोत प्रकट हो दिव्य खुशी का।
गुणियों की गाथा सब गाओ, जीवन पावन धाम बनाओ॥

(३)

पंजाब प्रान्त है महिमाशाली, जन-जीवन में है खुशहाली।
लाहौर जिला था सरनामी, सुकीर्ति उसकी जग ने जानी॥

(४)

जहाँ हुए दृढ धर्मा आला, उनमें थे खैराती लाल।
जिनकी पत्नी तारा देवी, धर्म कर्म की नैया खेव॥

(५)

पुण्योदय था, उनका आया, जीव दया में मन था लाया।
सन उनीसौ उनतीस आया, तारा देवी मन हर्षाया॥

दक्ष मानव ही लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

(६)

जन्मी पुत्री श्री कौशल्या, मानो देवी हो निःशल्या।
चन्द्रकला सम बढती जावे, बाल्यकाल में सबको भावे।

(७)

मात-पिता अति लाड़ लड़ावे, वय किशोर में धर्म सिखावे।
संग मिला सति केसर जी का, शरण ग्रहण किया उन्हीं का।

(८)

सन उनीसौ छयालीस प्यारा, भौतिक सुख से किया किनारा॥
पाकर आज्ञा परिवार की, चैत्र वदि पंचमी दीक्षा ली।

(६)

मन वच काया वश में कीना, गुरूणी सेवा में चित्त दीना॥
संस्कृत प्राकृत आगम पढ़कर, बनी विदुषी आलस तजकर।

(१०)

सुधा तुल्य है मीठी वाणी, सुनकर जगे अनेकों प्राणी ॥
शिष्य मण्डली बहु विशाला, ज्ञान ध्यान जप तप की माला ।

(११)

विमला जी का शील निराला, सरोज श्री साध्वी आला ॥
विदुषी सति मंजु श्री जी, प्रिय शिष्या है विजया श्री जी ।

(१२)

द्वादश प्रशिष्या भी सुप्यारी, चरण कमल पर जो बलिहारी ॥
जीवन अपना शुद्ध बनाया, मोह कर्म से पिण्ड छुड़ाया ।

(१३)

नाम आपका मंगलकारी, सुख का दाता भवभय हारी ॥
दीक्षा स्वर्ण जयन्ती आयी, जैन समाज में खुशियाँ छाई ।

(१४)

मुनि सुव्रत दे रहा बधाई, जय जय बोले बहना भाई ॥
कहती गुरूणी केसर देवी, बढ़ो बढ़ो हे। शासन सेवी ।

(१५)

सुव्रत मुनि की यही भावना, शीघ्र पूर्ण हो मोक्ष कामना॥
महावीर का नाम दिपाओ, जीवन नैया पार लगाओ॥

(१६)

दोहा – श्रद्धा भक्ति समेत जो करे, गुणों का गान।
पाप ताप सब शान्त हो, पावे सौख्य महान ॥

* * *

श्रमणीवर्या शासन शान

कवि विजय मुनि 'विकास'
(प्रर्वतक श्री रमेश मुनि जी के शिष्य)

(१)

ओस वंश की दिव्य दीपिका, श्रमणीवर्या गुण की खान।
कौशल्या है नाम उन्हीं का संयम–साहसी कौशलवान॥

(२)

पाकिस्तान 'लाहौर' नगर में जन्म आपने पाया है।
खैराती पितु तारा देवी ने कन्या को जाया है ॥

(३)

सुता सपूता प्रगट हुई है नाम किया रोशन जग में ।
जैन धर्म संस्कार सुहाने, छाये जिनके रग–रग में ॥

जो जितना सह सकता है, पचा सकता है
वह उतना ही बड़ा संत है।

(४)

दीक्षा दाता फूलचंद जी पूज्य प्रवर्तक श्रमण महान् ।
दीक्षा गुरूणी केसर देवी उपप्रवर्तिनी शासन की शान ॥

(५)

संयम ले बत्तीस आगम का ज्ञान किया श्रमणी वर सुखकार ।
स्तोक शताधिक छन्द-न्याय फिर जाना समता दर्शन सार ॥

(६)

योग्य सुशिष्या बनी आप फिर गुरूणी की क्षमता पाई ।
सेवा भावी स्वाध्यायी हैं धीर वीरता अधिकाई ॥

(७)

तत्वज्ञान से पूरित प्रवचन कौशल्या जी देती है ।
ध्यान-मौन वात्सल्य मूर्ति जन-जन मोह लेती है ॥

(८)

शिष्याओं-गुरू बहनों को भी समय-समय पर देते सीख ।
शास्त्र ज्ञान व्यवहार बोध भी सदा-सदा देते हो ठीक ॥

(९)

तपोसाधिका त्याग प्रतिभा संयम रत्ना हो जयवंत।
श्रद्धालु भक्तों के उर में भक्ति रस का भरे बसंत॥

(१०)

पद-यात्रा से जहाँ-जहाँ पहुँचे धर्म ध्वजा वहाँ फहरावे।
लघुता में प्रभुता के दर्शन नर-नारी वहाँ-वहाँ पावे॥

(११)

संयमशील महाश्रमणी का अभिनन्दन गुणगान करें।
युग-युग मार्ग प्रदर्शक का गौरव गायें सम्मान करें॥

(१२)

दोहा - सम-दम-श्रम की खान है, महासती तपवान।
सविनय सादर भाव से, अर्पण कविता गान॥

वात्सल्या च कौशल्या

साध्वी कमलश्री
(गणाधिपति आचार्य तुलसी की शिष्या)

शस्य श्यामत्वं तनोः हृदि शुभ्रता पुण्या
सौम्य वात्सल्या च ''कौशल्या'' महाधन्या

(१)

साधुता सारल्य-कारुण्येन परिपूर्णा,
जन्म लाहोरे 'खैराती' 'तारिका' तूर्णाः।
'फूलचन्द' प्रवर्तकेन लब्ध श्रामण्या,
देवी 'केशर' कर कलेः दीक्षा सुधा जन्या॥

(२)

शास्त्र द्वात्रिंशक दधीतं न्याय व्याकरणम्
आंध्र कर्नाटक मुखं स्पृष्टं व्याधत् भ्रमणम्
श्री विमल सरोज सुमंजु विजय शिष्यान्याः

(३)

आंग्ल संस्कृत प्राकृतादौ प्राप्त वेदुष्या
सहनमूर्तिरूदार हृदया धोत कालुष्या
दृष्टं मया विजया श्री गुण ग्रहिकाग्रण्या

***

मातृवत्स्नेहदायिनी श्री कौशल्या महासती

साध्वी विजय श्री 'आर्या'

(१)

पञ्चापे शुभे राज्ये, सर्वैगुणगणैर्युते,
आसीत् लवपुर नाम, नगरं भूमि मण्डनम्।।

(२)

तस्मिन् कुले महातेजाः धार्मिक : कुलदीपकः ।
श्रीमन् खिरातीलालोऽभूत् यशस्वी कीर्तिमान् सुधी।।

(३)

तारादेवी सपत्न्यस्ति सदा धर्मपरायणाः।
वत्सलाशीलसम्पन्ना चन्द्रिका शांतिदायिनी।।

(४)

धन्य दिनं मुहूर्त च पुरं माता तथा कुलं।
यस्मिन् जाता 'कौशल्या' धर्मवृक्षस्य रक्षिका।।

(५)

सदा पूज्याः सदा सेव्या, मातृवत्वत्सला सदा।
ज्ञान चारित्र सम्पन्ना श्री कौशल्या महासती।।

(६)

श्रद्धामूर्तिमती सेयं मेधा विनयरुपिणी।
गुणानां ग्राहिणी नित्यं, क्रियाज्ञान समन्वयः।।

(७)

अज्ञाननाशिनी नित्यं, ज्ञानोद्योतप्रसारिणी।
पापापहारिणी चैव, मातृवत्स्नेहदायिनी।।

मन होने पर भी प्रत्येक मानव मनस्वी नहीं कहलाता।

(८)

धैर्यशीला क्षमाशीला स्वकर्त्तव्यानुगामिनी।
सहस्त्रगुण संयुक्ता: श्री कौशल्या महासती॥

(९)

अर्पयित्वा च सर्वस्वं, कृपामिच्छेव ते वयम्
नत्वा चरणाम्बुजे ते च, यामः शुभपथे सदा॥

***

"शुभ-मंगलाष्टक समर्पयामि'

साध्वी प्रियदर्शना 'प्रियदा'
जैन सिद्धान्ताचार्य, 'साहित्यरत्न'

(१)

आराध्य श्री गुरु नाम मंत्र का, मन में चलता प्रतिपल जाप है,
गुरुणी जी आपका अभिनंदन, धो देगा सारे पाप है॥
शुभ-भावों के पूर्ण कर्ता, मात-तात त्वमेव हो,
मंगलमयी वात्सल्यमूर्ति, वंदना सदैव हो॥

(२)

करूणा की बहती सरिता, शील सुगंधित धार है,
प्रेम-वर्षा करते हर दम, जिसका न पारावार है।
क्षमा मैत्री सद्भावना की, मूर्तिमयी मातेश्वरी
दीप-दीप से ज्योतित करे, हे अद्भुत ज्ञानेश्वरी॥

ज्ञानी की पकड़ ताले के सदृश होती है, जो चाबी लगते ही खुल जाता है।

(३)

प्रीति हुई वीतराग से, मोह–माया को छोड़ दिया,
अमर–संगी की लालसा, इस संसार से मुख मोड़ लिया।
'मोहन देवी जी' का प्यार भरपूर, गुरुणी ' केसरदेवी जी'।
जिन शासन को है समर्पित महासती कौशल्यादेवी जी॥

(४)

वैराग्य–रस से अभिषिक्त, प्रभु–प्रीति का फल पाया है,
सुखानंद को प्राप्त कर, 'विजय' ध्वज फहराया है।
वात्सल्य करुणा–रस से, अभिषेक होता नित्य ही
षट्काय जीव–रक्षिका, धन्य माता हो तुम्हीं॥

(५)

संयम–साधना में लगी, जीवन की हार पावन घड़ी,
उग्र–तपस्याएँ की कई, और अठाईयों की लड़ी।
शुभ–ध्यान में स्वाध्याय में, संलग्न रहती हर घड़ी,
सति–मंडल की जुड़ी, फिर एक एक से नई कड़ी॥

(६)

'अनाग्रही है ना हठाग्रही, सहज–जीवन पद्धति,
स्वीकार ही है जिनका जीवन, नहीं नम्रता की इति।
संसार में रमे हुये भी, निर्लिप्त कमल समान है,
सेवाधर्म हित सदा ही, सर्वस्व किय कुर्बान है॥

(७)

विशालकाय ग्रंथ भी क्या, हमको शिक्षा दे पाएँगें?
जो आचरण की शुद्धता गुरुणी जी तुमसे पाएँगे।
मौन भी हैं संदेश तेरा, वाणी पावनकारी है,
तेरी जीवन–साधना, शुद्ध–शिष्ट विहारी है।

(८)

गुरुणीजी तव-चरणों में है, भेंट लायक कुछ नहीं,
जीवन समर्पित जो किया, वह भी दुर्गुणों का पुँज ही।
आपकी जीवन चर्या से, प्रेरणाएँ जो मिलीं
वे बनी पथ-दीप जब से, श्री मम उद्यान में खिली॥

दोहा - अष्टमी को अवतरे, सिद्धाष्टक गुण पावन।
अष्ट सिद्धि दातार हो, 'प्रियदा' के मन-भावन॥
अष्ट कर्म करने-सूदन प्रवचन-माता संग।
अष्ट मद को त्यागकर, बन गये आप निसंग॥

* * *

कल्याणी महासती श्री कौशल्या जी म.

प्रेषिका : श्री गुरु मगन अन्तेवासी
साध्वी मनोरमा कु. "मुक्त"

महासती कौशल्या जी कल्याणी है,
मन को जो शुद्ध कर दे ऐसी वाणी है - (टेक)

पाक धरती पर था तुमने जन्म लिया,
माता तारा और खैराती धन्य किया,
बालपन से ही समझ लो ज्ञानी है॥

उठते नव यौवन की पाके लाली ये,
नहीं फँसी थी आप भागों की जाली में,
दीक्षा ले ली जानकर जग फानी है॥

फूल केसर का ये कौशल खिल गया,
गुरुणी केसर को ये हीरा मिला गया,
शिष्याएँ भी उनकी ज्ञानी ध्यानी है॥

लोक की एषणा तुमने तज दिया,
शरणागत को त्याग का ही पथ दिया,
शास्त्रों से पूत तेरी वाणी है॥

जैन शासन की चमकती शान हो,
शील समतादि गुणों की खान हो,
शिक्षा देने वाली तेरी कहानी है॥

विजयश्री जी ने लिखी तव जीवनी,
धन्य कर ली है इन्होंने लेखनी,
श्रद्धा भक्ति हमने इनकी सराहनी है॥

सागर के तल में छिपे जितने रतन,
आयु के जीना तुम उतने बरस,
भावना मेरी ये 'मनोरम' जानी है॥

❋ ❋ ❋

आस्था की ज्योति

साध्वी यशा श्री
(महासती डॉ० सरोज श्री जी म०सा. की सुशिष्या)

अन्तर में दीपक जले, ज्ञान-ध्यान का नित्य।
ध्याया जिसने ध्यान से, फल पाया अचिन्त्य॥
त्याग तपोमय साधना, गुरुवर से अनुराग।
मधु-वाणी व्यवहार से, खिलता जीवन बाग॥
योग चलेंगे शुद्ध तो, जीवन का कल्याण।
गिनती सद्‌गुण की करें, बनने को भगवान॥
नीतिमान का जगत में, होता है सम्मान।
श्री यश-कीर्ति मिलती सदा, मिलता है वरदान॥
कौशल बनने के लिये, शिक्षा दी हर बार।
शल्य रहित बन कर रहो, देते श्रेष्ठ विचार॥
याद करो श्रद्धा सहित,देव गुरु सद्धर्म।
जीवन बाजी जीतने, समझो आगम मर्म॥
यही प्रेरणा आपसे मिलती है हर बार।
शान बढ़ाई संघ की, वंदन बारम्बार॥

***

अक्षरांजुरी

साध्वी कौमुदी श्री

परम प्रभु परमात्मा, देना सम्यग् ज्ञान।
रमन करें निज रूप में, करें आत्म उत्थान॥
मनन आगमों का किया, पाया संयम सार।
साधन ले त्रय रत्न का, करते भव-जल-पार॥
ध्यान साधना विनय तप, सेवाव्रत को धार।
वीतराग विज्ञान से, ली निज शक्ति निहार॥
महावीर का धर्म है, शूर वीर का पंथ।
हासिल होती सिद्धियाँ, बन जाते अर्हन्त॥
समकित का दीपक जला, भ्रम-तप हो गया दूर।
तीर्थ रूप तारण तरण, आत्मानन्द भरपूर॥
कौशल से वश में किये, मन-वच-तन व्यवहार।
शल्य रहित बनकर सदा, करते हैं उपकार॥
याद प्रभु का नित करे, बनने को भगवान।
श्री जिनशासन श्रेष्ठ है, करने को कल्याण॥
जीती कौशल जगत् में, 'केशर' की पा प्रीत।
वन्दन करती 'कौमुदी', आशीष चाह पुनीत॥

***

श्री कौशल्या महासती

साध्वी विजय श्री 'आर्या'

पंजाब की हरीतिमा में जन्मी,
वैभव की दुलारी,
वैभव का त्याग कर,
भोग–भाव का अंत कर,
त्याग का अंकुर उगाने वाली, वह कौन है?
श्री कौशल्या महासती

मानस की पवित्रता,
ज्ञान–रश्मियों की प्रखरता,
हिम–सीकरों सी तरलता,
पुष्प सी कोमलता,
पुरातन में नवीनता और,
नवीनता में पुरातनता का सुमेल, वह कौन है,
श्री कौशल्या महासती

तात्त्विक के साथ सात्त्विक,
ज्ञानी के साथ संयमी,
जपी के साथ तपी,
आत्मनिग्रही के साथ कुशल जीवन निर्मातृ,
लोकेषणा से दूर,
सद्गुण अन्वेषणा से भरपूर, वह कौन है?
श्री कौशल्या महासती

***

गुरू-गुणाष्टक

साध्वी प्रतिमा श्री 'प्राची'

(१)

लाहौर शहर है भारत में, जाने जिसको सारा जहाँ।
जन्म लिया था गुरूवरजी ने, तेजवन्त गुणवन्त महाँ॥१॥

(२)

नाम हैं कौशल्यादेवी और गुण पाने में पूर्ण कुशल।
सन्त समागम ज्ञान ध्यान से, प्रकट हुआ वैराग्य प्रबल॥२॥

(३)

सींचा उस उपवन को देखो, वीर वाणी के कर्णधारों ने।
मोहनदेवी केसरदेवी, महासती वर ज्ञानी ने॥३॥

(४)

ज्ञानी जपी तपी संयमी, ध्यान साधना में लीन स्वर।
आगम ज्ञाता तत्व विज्ञाता, बुद्धि में बनी तीव्र प्रखर॥४॥

(५)

महातपस्वी महामनस्वी, महायशस्वी गुरूणी प्रवर।
कैसे गुण गाऊँ मैं तेरा, नहीं हैं वैसा ताल व स्वर ॥५॥

(६)

धीरे-धीरे वृद्धि हुई है, शिष्यायें बनी चार प्रखर।
गुरू-गुणों से मंडित है ये, सुघड़ है उनके कार्य प्रवर॥६॥

(७)

"विजयश्रीजी" लघु शिष्या है, गुरू महिमा का साज सजे।
तेजस्वी गुणवन्त बहु, गुरु-गुणों की माल रचे॥७॥

(८)

प्रतिमा आई चरणों में, अध्यात्म-योगिनी गुरूवर के।
युग-युग जीयें आप भूमि पर, सुयश फैले सब जग में॥८॥

❋ ❋ ❋

सज्जन और शर (बाण) का स्वभाव एकसा ही होता है।

नमस्कार शतवार

रेमलदास अंबाला

(१)

आ रही केसर-सुगंधी, आपके व्यक्तित्व से।
गर नहीं यह सच तो पूछो, अपने हर इक भक्त से॥

(२)

फूलों की आती महक, हर शब्द से जो बोलें आप।
फूलचन्द जी श्रमण थे, दीक्षा-गुरू महाराज साहब॥

(३)

पाक धरती पाक में रह गई, जिसे कहते लाहौर।
केसरी फूलों की खुशबू फैलाई जिसने हर ओर॥

(४)

भाग्यशालिनी माँ श्रीमती, तारादेवी जैन थी।
आप जब आए महाराज, हर तरफ सुखचैन थी॥

(५)

लाला खैरातीलाल पिताश्री अति ही प्रसन्न थे।
ऐसी दिव्य-ज्योति को पाकर बड़े ही मगन थे॥

(६)

ओसवाल वंशज हैं आप यह जिसका जहाँ में नाम है।
पर फकीरी में कहाँ, ऐश्वर्य का कुछ काम है॥

(७)

न्याय-दर्शन, व्याकरण, बत्तीस शास्त्रों का मंथन किया।
हिंदी, प्राकृत, संस्कृत, इंग्लिश भाषाओं का ज्ञान किया।

(८)

वात्सल्यमूर्ति शांतस्वभावी, व्याख्याता हैं आप।
आपश्री की चरण-रज से, कटें सभी संताप॥

(६)

ज्ञान-दायिनी, पापापहारणी, क्षमा-सरलता की भंडार।
आपके चरणों में मेरा, नमस्कार शत वार॥

* * *

मेरी प्यारी गुरुवर्या

डॉ० एल.बी.जोगड़

(१)

सुनो सुनो ऐ जैन धर्मियों ! महासती की जीवन कहानी।
महासती पूजित इतनी, जितनी वीर प्रभु की वाणी॥

(२)

महासती का नाम कौशल्या, प्रतिभा जिनकी रही उज्ज्वल।
सम्पर्क हुआ जिनका जीवन में याद रहेंगे उनकों वे क्षण॥

(३)

वंश ओसवाल स्थान लाहौर, महासती का जन्म हुआ।
पिता श्री खैरातीलाल माता श्री तारादेवी, आंगन में एक फूल खिला।

(४)

स्थान पटियाला तिथि चैत्र कृष्णा पंचम का शुभ दिन है।
महक उठी पंजाब की माटी, ली दीक्षा गुरुणी महासत्ती केसरदेवी से॥

(५)

ऐसा जीवन जिया आपने, उनकी गाथा अमर रहेगी।
याद करेगे युगों-युगो तक ऐसी प्रतिभा कहाँ मिलेगी॥

(६)

जग में नाम कमाया, हर मन में सद्भाव जगाया।
किया जो अर्जित ज्ञान आपने, अमृत वाणी से उसे लुटाया॥

(७)

व्याख्यानों में वह शक्ति है, जनता सुन मंत्र मुग्ध होती।
स्नेह भाव का पाठ पढ़ाया, खुद भी उसी राह पर चलती॥

(८)

अनुशासन है प्रिय सदा, नहीं किसी से द्वेष किया।
ऐसी गुरुवर्या को पाकर, श्रमण संघ धन्य हुआ॥

(९)

प्रांत-प्रांत में भ्रमण किया ओर दैनिक अपना धर्म किया।
त्याग-तपस्या में रत रहकर, जीवन भर सत्कर्म किया॥

(१०)

संकट आने पर भी जिसने, विचलित होना नहीं जाना।
उसी मार्ग पर अग्रसर वो, जिस मार्ग को सच जाना॥

(११)

कार्य-प्रणालि ऐसी जिनकी, दुनियाँ दंग रह जाती।
वैर भाव मिटाने को जो, निशदिन तत्पर रहती॥

* * *

हम नतमस्तक नमन करें

हेमन्त श्रीमाल, उज्जैन

जिनकी वाणी मन आँगन का चप्पा-चप्पा चमन करे।
अभिनन्दन से पहले उनको हम नतमस्तक नमन करें।

(१)

अभिनन्दन वात्सल्यमयी इन स्नेहवाहिनी नजरों का,
अभिनन्दन है प्रेम सिन्धु की प्राणदायिनी लहरों का।
जिनकी हर इक साँस-साँस नित प्रतिपल प्रभु का स्मरण करें,
अभिनंदन से पहले उनको हम नतमस्तक नमन करें॥

(२)

त्याग-तपस्या और ज्ञान की अतुलनीय सीमाओं का,
अभिनन्दन है चलती-फिरती संयम की प्रतिमाओं का।
जिनकी शरणागत हर प्राणी के सत्कर्मों का सृजन करें।
अभिनन्दन से पहले उनको हम नतमस्तक नमन करें॥

(३)

'केशर' और 'कौशल्या' दोनों नाम अनुग्रहकारी हैं,
एक लुटाये गन्ध, दूसरा ममता की महतारी है।
जिनका उच्चारण जीवन दे, पीड़ित मन को मगन करे
जी भर कर अभिनन्दन करके फिर नतमस्तक नमन करें।
हम नतमस्तक नमन करें
हम नतमस्तक नमन करें!

***

मन सफेद वस्त्र के समान है, किस रंग में रंगना है, यह अपनी रुचि पर है।

कौशल्य-कलाप

राजेन्द्र नगावत

नहीं हो जिसमें कोई शल्य
वह जीवन कहलाए कौशल्य।

कौशल्या सती चन्द्र सम शीतल,
दृढ़ तप में जप में अविचल।

मन में स्थित अपार प्रशांति
फिर भी कलाप में है क्रांति।

नहीं अमर्ष का कोई काम,
कटु कठोरता जहाँ लेती विराम।

हुए अनेकों माथ वंदित,
मन हुए लख-लख स्पंदित।

जो आता पाता धर्म प्रसाद,
बिसरा देता प्रत्येक विवाद।

नहीं जहाँ अन्यत्र संभावना,
धर्म की नित्य वहाँ प्रभावना।

हे वंदना धीर वीर श्रमणी,
रहे प्रदीप्त सदा तेरी करणी॥

***

श्री कौशल्या देवी-स्तवन

सुमन्त भद्र, चिंचवड़ (पूना)

(१)

संयमकोशल की कौशल्या
श्रमणसंघ की कीर्ति महान्,
साध्वीवरा परम भगवती
भारतमाता का वरदान।
आगम रता परमकल्याणी
केसरशिष्या सुरभिवितान,

(२)

पंचमहाव्रतधा विज्ञाना
विद्या विनयधर्म शुचिमान।
शैलेशीप्रतिमा जिनकल्पा
संग सुमित्रा लोकाख्यात,
युगप्रमुखा युगसन्धि हिरण्या
तारातनया मुक्ति प्रभात।

(३)

लाहौरी खैरातीजाता,
ओसवाल कुलकमला कान्ति।
विमला विजय मंजु श्री गुरुणी
श्री सरोज हृदया सुखशान्ति।
परम वत्सला विदुषी भव्या,
तपस्विनी सेवानिष्णात।

(४)

सहृदया तत्त्वार्थदर्शिनी
निष्ठाधृतिमय सत्यप्रपात।
युगप्रतिभा युगशक्ति युगाख्या
युगमेधा युग-युग अभिनन्दन,
युगाक्षरा जिनयुगपरिभाषा
युगवाणी युग-युग युगवन्दन।

***

गुणवान व्यक्ति का वचन घृत-सिंचित अग्नि के समान तेजस्वी और पथ-प्रदर्शक होते है।

करुणा की तसवीर हैं

शिव प्रसाद जैन 'शाद" मेरठी

महासती कौशल्या जी, करुणा की, दया की, तस्वीर हैं,
प्रगट न कर सके, शायर का कालम, ऐसी तकरीर है॥
जीवन के गुलिस्तां में शबनम की तरह आप,
दुखियों के दुख क्षण भर में हरे, त्यागी फकीर है॥

सादगी, सरलता, भोलापन, आपका लाजवाब है,
चेहरे पर बरसता नूर, जिसका न कोई हिसाब है॥
चरणों में आकर आपके, सुख भी है शांति भी,
सुगंधित हो आत्मा, व्यक्तित्व आपका एक गुलाब है॥

वाणी में है वो अमृत, जो गुल को गुलजार बना दे,
टूटे हुए दिलों को 'शाद' बना दे, दिलदार बना दे।
उपदेश आपके हैं, मानवता के जख्मों पे मरहम,
नफरत को मिटाकर, घृणा को क्षण भर में प्यार बना दे॥

***

सुख की चाँदनी में सभी हँस सकते है, पर
दुःख की दोपहरी में हँसना सरल नही।

काव्य कुसुमांजलि

(मनहरण कवित्त - छंदराज 'पारदर्शी'

(कालजयी विश्व कीर्तिमान निर्माता)

(१)

केसर क्यारी की कली, **"कौशल्या देवी जी"** भली
लाहौर में जन्म लिया महासती आई है।
सन् उन्नीसौ अट्ठाइस, असाढ़ वदि आठम,
उन्नीसौ पिच्यासी जन्म-तिथि मन भाई है।
पिता **"खैराती लाल जी"** ओसवाल वंश प्यारा
माता तारादेवी की ये सुपुत्री कहाई है।
'पारदर्शी' पटियाला पंजाब में दीक्षा धार,
फूलचन्द्र जी **'श्रमण'** दीक्षा-गुरु पाई है"

(२)

दो हजार तीन मिती चैत्र वदि पाँचम को,
दीक्षा ले के **"केसर"** की शिष्या कहलाई है।
हिन्दी-उर्दू-गुजराती, संस्कृत-प्राकृत संग
अंग्रेजी पंजाबी भाषा ज्ञान बहु पाई है।
छन्द-व्याकरण-स्तोत्र, न्याय-दर्शन-साहित्य
बत्तीस शास्त्रों का ज्ञान विद्वान कहाई है।
'पारदर्शी' सेवाभावी शांत स्वभावी कुशल
ओजस्वी-वक्ता, वात्सल्यमूर्ति मन भाई है॥

(३)

भव्य-विभा-स्वर-भाल, रखें हृदय-विशाल,
मृदुल स्वभावी हैं ये मधु-सम वाणी है।
संयम-पथ-पथिक, दया भावना अधिक
महायशस्वी-तपस्वी, अध्यात्मिक ज्ञानी है।

कम बोलने वाला अधिक कार्य करता है।

सच्ची समाज-शिक्षिका, नारी-पथ-प्रदर्शिका
अहिंसा की प्रचारिक, संयम की निशानी है।
मानवता की पुजारी 'पारदर्शी' उपकारी,
"कौशल्या देवी महासती" संयम की कहानी है।

***

माँ तू धन्य हो गई

रिखबचन्द डागरिया, रामपुरा (म.प्र.)

यह जीवन ही न्योछावर है,
जहाँ कौशल्या मैया रहती है।
विमला, सरोज मंजू विजया सी-
शिष्याएँ उसका सौरभ कहती है॥
मंद मंद मीठी मुस्कानों पर,
यह धरती फिर से गूंजेगी।
दर्शन ज्ञान चरित्र की भाषा,
जिसका जीवन बोलेगी॥
हम क्या बोलें, तुम्हीं बता दो,
ये झनकारें गूंजेगी।
मैया! सारा भारत मेरा है,
तू दया धर्म को पूजेगी॥

***

इस क्षणभंगुर जीवन में अमरता की साधना कर लेने वाला ही चतुर और विवेकी है।

जय-जय गुरूणी ! जय-जय महान्

माया गुप्ता, दहेली

जय जय गुरुणी ! जय जय महान !
सांसारिक सुख की कुछ चाह न की
बाधाओं की परवाह न की
अतिशय कष्टों पर आह न की
विघ्नों को कोई भी राह न दी
अध्यात्मयोगिनी कौशल्या जी
– हो ज्ञानमयी तुम क्षमावान

जय जय गुरुणी............................

सुन-सुनकर तेरे धीर वचन,
पाषाणों में भी करुणा जागी।
प्रेरित होकर तव समता से,
हिंसा ने भी हिंसा त्यागी।
दर्शनमयी हो परम आर्यिका,
भवसागर की तुम दिव्य यान।

जय जय गुरुणी............................

'विमल श्री' है प्रभु वीर की चन्दना,
ज्ञान की करती प्रतिपल वन्दना।
ध्यान और तप का संदेश है देती
जप ओ तप का निर्देश है देती
तुम चारित्रमयी हो तेजवान।

जय जय गुरुणी............................

निंदा, ईर्ष्या, चुगली-तीन बातों से मनुष्य की क्षुद्रता प्रगट होती है।

"**सरोज श्री**" भव जल में है कमल पावन,
सुषुप्ति में दिया है तुमने नव जागरण
धर्म-बीज बोया तो आया तरुओं पर सावन,
सबके मन में छाई हो तुम ज्ञान-प्रवण
अद्भुत है तव आगम प्रमाण।

जय जय गुरुणी............................

धरा की वैभव '**मंजुश्री**' अनमोल रतन,
रवि-किरणें प्रवचनों में है तव स्वर्णिम
कबीरा व जिनधर्म का लेखन तेरा है शोभन,
धीरसाध्वी ! मेधावी हो तुम अनुपम।
जिनवाणी की हो तुम मधुरिम गान

जय जय गुरुणी............................

"**विजय श्री**" जिन शासन ज्योति हो,
करुणा भाव की तुम प्रसारिका।
क्षेममयी हो प्रेममयी हो तुम,
जिन धर्म की हो कुशल संचालिका।
भव्य जीवों को प्रतिबोधित करती
कवि, लेखिका तुम महिमावान

जय जय गुरुणी............................

श्री कौशल्या जी तुम तो हो सुधा बिन्दु,
बहाया है तुमने सबमें एक प्रेम सिन्धु।
पाठन को तेरे रवि आलोकित करता है,
ज्ञान-शशि तव शिष्याओं को चमकाता है।
धर्माचरण की हो तुम सुन्दर तान

जय जय गुरुणी............................

* * *

वात्सल्यमूर्ति कौशल्या देवी

डॉ० स्वर्णकिरण
(साहित्यालंकार, राष्ट्रीय गीतकार)

(१)

सतत साधना जहाँ, वहाँ सच जीवन जीवन बनता,
नर-नारी दोनों ही बन जाते, जगहित ध्रुवतारा।
सरल हृदय जो व्यक्ति खींचता चुम्बकवत् लोगों को,
आकर्षण का केन्द्र क्या न वात्सल्य प्रेम की धारा।

(२)

आत्मतत्त्व का ज्ञान बनाता, ऊर्ध्वमुखी जीवन को,
विद्या प्रेम अंकुरित होता-बढ़ता यह जाता है।
यह संसार विविध रूपों में, प्रतिभासित होता है,
स्व का बंधन स्वेतर हित क्या बंधन बन पाता है।

(३)

यहाँ-वहाँ का विचरण स्व या स्वेतर हित उपयोगी,
महासती कल्याणभाव ही, तुम में अति मुखरित है।
तपः मूर्ति उन्मुक्त हृदय, मस्तिष्क ओज से पूरित,
शांतचित उन्नयन कामना से यह क्या न भरित है।

(४)

छल-छद्मों से दूर, वाग्मिता का जादू कितना है,
अहंभाव से शून्य तुम्हारा अंतस्तल निस्पृह है।
अन्यायी जो दुखी सतत, तुमने सबको बतलाया,
भेदभाव से परे-पूर्ण यह विश्व तुम्हारा गृह है।

❋ ❋ ❋

चिकित्सक, गुरु और नौकर ये पुराने अच्छे हैं।

वन्दन

अंजू जैन 'प्राची'

श्री 'कौशल्या महासती" को
वन्दन मेरा शत-शत वन्दन।
सौम्यता की पावन मूर्ति को
वन्दन मेरा शत-शत वन्दन।
सागर सा गांभीर्य आपमें
शिखरों जैसी है ऊँचाई
पृथ्वी सी है सहनशीलता
चन्दा सी उज्जवलता पायी।

प्रखर-तेजस्वी तपो-निधि को
वन्दन मेरा शत-शत वन्दन॥

वाणी में है ओज आपकी
व्यवहार है बहुत सहज-सरल
मुख पर है मुस्कान आपके
होते है ऐसे लोग विरल।

दया, सादगी की प्रतिमा को
वन्दन मेरा शत-शत वन्दन॥

कहते सब 'अध्यात्म योगिनी'
गंभीर है दर्शन व चिन्तन
मुक्ति -रमा को वरने वाली
तोड़े सब सांसारिक बन्धन

तपो-साधिका-ज्ञान-मूर्ति को
वन्दन मेरा शत-शत वन्दन

सादगी भी प्रदर्शन के लिये न हो।

तप का ऐसा है प्रभाव जो
लोगों को नयी राह दिखाता
भटका मंजिल को पा जाए
दृष्टिहीन, सुदृष्टि पाता।

तत्व-ज्ञान परिपूर्ण, आपको
वन्दन मेरा शत-शत वन्दन।

***

कैसे गुण करूँ वर्णन

माँगीलाल जाँगड़ा
बैंगलौर

कौशल्याजी महासती
हम गुण तेरे गायें, श्रद्धा से भक्ती से चरणो में झुक जाये॥

(१)

तुम्हें कहूँ में कल्पतरू, या कहूँ मैं चिन्तामणी।
कहूँ देवी या देवी पुण्य, कहूँ सति या महासति।
है मेरी समझ में तो, कम तुच्छ ये उपमाएँ।

(२)

तुम ज्ञान दिवाकर हो, समता की सागर हो,
है करूणा की दरिया, तुम गुण रत्नाकर हो।
तेरे नाम का जपने से, जो चाहे वही पावे॥

(३)

है आज नही कोई, तेरे संयम मे उपमान।
हम भक्तों की तुम हो, हो धरती पर भगवान।
तेरी सूरत में हमको, सति चंदना नजर आये।

'दूरदर्शन' ने स्व दर्शन को कम कर दिया है।

(४)

सब सुर सुरेन्द्र मिलके, सहस्त्र रूपधर कर

गुण आपके लिखने लगे, थक जाये लिख, लिखकर

फिर 'माँगीलाल' कैसे गुणवर्णन कर पाए।

***

फले-फूले ये गुलिस्तां

श्रीमती सविता जैन, जयपुर (राज०)

दोहा -अगर गुरू का ज्ञान न हो तो, भगवान को कैसे पाएगा।

इंसान बनकर आया है, पशु बनकर जाएगा।

(१)

कविता - श्री कौशल्या जी के चरणों में हम सादर शीष झुकाते है।

इनके गुणों को देख-देख हम नतमस्तक हो जाते है॥

(२)

अमृत सी है वाणी इनकी, अखिल गुणों की खान।

आप है अति महान गुरणी जी, जैनधर्म की शान॥

(३)

आपके ही उपवन में विमल सरोज मंजुल विजय जैसे फूल खिलते हैं।

जन-जन में घूम-घूमकर ज्ञान की जोत जगाते है।

(४)

केशर क्यारी महके आपकी, फूले फले ये गुलिस्तां।

खुशबू आपकी दूर-दूर फैले, तर जाए आकर भी 'सविता'

शरीर को भोजन तब दो जब वह आत्मा का भजन करता हो।

(५)

धन्यवाद क्या दें हम आपको
धन्य हुए हैं हम खुद ही पाकर आपको।
श्रद्धा-सुमन क्या चढ़ाएँ आपको,
श्रद्धा में ही बिठा लिया है हमने आपको।

***

साध्वी श्री कौशल्या जी के प्रति

अंकुर जैन, नई दिल्ली

कषाय विजेता विनय सत्य से, जो सब का मन हरती है।
गुरुणी श्री कौशल्या हमारी, जन-मन मंगल करती है।
मौनी ध्यानी सरल आत्मा, भद्र व्यक्तित्व गुणों की खान।
आगम-ज्ञान की मंथन कर्ता, यश बुद्धि सौभाग्य निधान।
प्रातः काल नमन और दर्शन, उन के जो भी करते है।
विजय विभूति धर्म-प्रतिष्ठा, उन को आकर वरते है।

***

अवशेष के पृष्ठ

गधैया कुल की वंशावली

चन्देरी (राज०) के राजा खरतर सिंह राठौर के पौत्र गधैशाह से गधया गोत्र का सृजन हुआ।

श्री जवारे शाह गधया स्यालकोट

श्री देवी सिंह गधया स्यालकोट

श्री केसर शाह स्यालकोट

श्री गोविन्द शाह गधया

श्री जयदयालशाह

- श्री पालेशाह: श्री गणेशाह, श्री सौनशाह, श्री जमीतेशाह, श्री हजारीशाह, चार पुत्रियाँ
- श्री लालशाह: श्री पंजूशाह, तीन पुत्रियाँ; एक पुत्री
- श्री निहालशाह: श्री नत्थूशाह, श्री चूनीशाह, श्री सोहनशाह, श्री रामचन्द, तीन पुत्रियाँ
- श्री रूपेशाह: श्री हरीचन्द, श्री पन्नाशाह, श्री गंडूशाह, श्री जगन्नाथ, श्री प्रभदयाल, श्री दिवानचन्द, दो पुत्रियाँ
- श्री मथुराशाह: श्री कर्मचन्द, श्री लक्ष्मीचन्द, पाँच पुत्रियाँ
  - श्री बधावेशाह: श्री छज्जूशाह, एक पुत्री
- श्री कांशीशाह: श्री लू शाह, श्री हंसराज, श्री देवी चन्द, श्री कुन्दन लाल, श्री जगी लाल, श्री नगीनालाल

श्री मानक शाह गधया

श्री सावन शाह गधया

- श्री वैसाखीशाह: श्री शादी लाल, श्री सरदारी लाल, श्री चैन लाल, श्री इन्द्र सैन
- श्री ज्ञान चन्द
  - श्री कपूर चन्द
    - कुलदीप
      - हितेन्द्र — वरुण
      - रोहित
    - जीनेन्द्र — रघुवीर — अनमोल
    - कीमती — सुमित
    - पवन — गौरव — पुनीत
    - महेन्द्र — राहुल — चेतन — बबलु
- श्री बसंत लाल
  - श्री हीरा लाल आत्म नगर — संजीव जैन — सुव्रत
  - श्याम लाल — ललित जैन — दो पुत्रियाँ
- श्री बृजलाल
  - त्रिशला देहली
  - स्व० श्री मुनिलाल, मनोहर लाल, रमेश चन्द्र, कृष्ण लाल, निर्मल

श्री जगन्नाथ गधैया (स्यालकोट), श्रीमति गुरुदेई (अमृतसर)

- स्व० मायादई, स्व० मोहनलाल
  - श्री प्रकाश चन्द, श्री चैनलाल, श्री विशम्भर, श्री मदनलाल, श्री सतपाल, श्री दर्शनलाल
- स्व० तारादेवी, स्व० खैरातीलाल
  - स्व० सुमित्रा देवी, महासाध्वी कौशल्या, श्री अमृतलाल, श्री बाबूलाल
  - श्री देवराज, स्व० संतोष, श्री विजय कुमार, सौ० सूर्यकान्ता, सौ० चन्द्रकान्ता
- भोलादई, विवाहित स्वर्गीय
- स्व० शादी लाल, राम प्यारी
  - 1. श्री सत्येन्द्र जी, निर्मल जैन वीरनगर
  - 2. सत्यपाल जैनपुत्र
  - 3. शोभनलाल, कमलकान्ता जालंधर
  - 4. पुष्पदन्त
- स्व० श्रीखजानची लाल
  - अशोक रानी, स्व० बचन, पूर्ण चन्द देहली, कीमती लाल, विजय कुमार, भूषण देहली, नेमइन्द्र
- स्व० स्वामी चैन लाल
  - स्व० राज कुमारी, पुष्पा जैन लुधियाना, सरला जैन देहली, कमला जैन देहली, प्रेम पाल लुधियाना, सुभाष जैन, शान्तिकुमारी देहली

स्व० शादीलाल (१९१०-१९७१)

- 1. श्री सत्येन्द्र जी, पवन जैन
  - राजीव, सुमन — विशेष, सुनीता, विवेक
  - संजीव, निधि — ऋद्धि, प्रेरणा, विजयकुमार, बाम्बी
  - रविकान्त, रजनी
- 2. सत्यपाल "जिनसुत", राजबाला
  - जिनेश, रंजू, विदुषी, जिनिका, अरुणा प्रथमेश, सलोनी देवांगी शिवांगी
  - जिनेन्द्र, हर्षा — अक्षय
- 3. शोभनलाल, प्रवेश
  - दीपक, शैली, सूर्यकान्त, सलिल, सना
  - सुधा, रमेश, नेहा, आदीश
  - रजनी, अजय, अरुणी
- 4. पुष्पदन्त, मंजू
  - निधि, नेहा, मिन्नी, पुनीत

"जिनसुत"

गधैया कुल की गरिमा

- कपूरचंद जैन, जयपुर

अध्यात्मयोगिनी, शांतमूर्ति महासती श्री कौशल्या देवी जी का पितृपक्ष जैसे गरिमामय है, उसी प्रकार मातृपक्ष भी।

आपकी मातु श्री का पीहर "गधैया" गौत्रीय है। ऐसा कहा गया है, कि चन्देरी नगर के राठौर वंशीय राजा खरहत्थ सिंह जी ने खरतर गच्छाचार्य श्री जिनदत्त सूरि से जैनधर्म अंगीकार किया था। आपके 'भैंसाशाह' नामक एक पुत्र हुआ। इन भैंसाशाह जी के पाँचवे पुत्र 'सेनहत्थ' का लाड़ का नाम 'गद्दाशाह जी' था। इन्हीं गद्दाशाह जी की संताने आगे जाकर 'गधैया' के नाम से मशहूर हुई और धीरे-धीरे यह नाम गौत्र के रूप में परिणत हो गया। तभी से गद्दाशाह जी के वंशज 'गधैया' के नाम से मशहूर हैं।

श्रीमती तारादेवी जी का पितृपक्ष श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय को मानने वाले सज्जन हैं। इनका मूल निवास स्थान सियालकोट ही है। इसका इतिहास लाला 'केशरशाह जी' से प्रारंभ होता है। लाल केशरशाह जी के 'गोविन्दशाह जी' और गोविन्दशाह जी के "जयदयालशाह जी" नाम के पुत्र हुए।

लाला जयदयाल सिंह जी बड़े धर्मात्मा पुरूष थे। आपने कपड़ों के व्यवसाय में खूब सफलता प्राप्त की।

आपके सात पुत्र हुए -

(१) लाल पालेशाह जी	(२) लालशाह जी
(३) निहालशाह जी	(४) रूपाशाह जी
(५) बधावाशाह जी	(६) मथुराशाह जी
(७) काशीशाह जी	

श्री रूपेशाह जी के चौथे सुपुत्र लाला जगन्नाथ जी के तीन सुपुत्र हुए-

(१) शादीलाल जी (२) खजांची लाला जी

(३) स्वामी चैनलाल जी

और तीन सुपुत्रियाँ थी - श्रीमती माया देवी जी, श्रीमती तारा देवी जी, श्रीमती भोली देवी जी। इस प्रकार यह परिवार बड़ा ही विशाल एवं समृद्धि से भरपूर था। इस परिवार को 'सतपुत्रिये' के नाम से आज भी आज भी पहचाना जाता है।

इस परिवार के वीरों ने पंजाब की रंग स्थली पर जो अद्‌भूत कारनामे दिखाये और देश की रक्षा के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाकर, स्वार्थ त्याग के जिन अपूर्व उदाहरणों को प्रस्तुत किया, उन्हें हम इतिहास की अमर कीर्ति के रूप में यहाँ अंकित कर रहे हैं।

श्रीमान् जगन्नाथ जी के तृतीय पुत्र श्री चैनलाल जी 'स्वामी' के नाम से प्रसिद्ध थे। आपके चाचा के लड़के 'कपूरचन्द जी जैन' ने 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' की ट्रेनिंग लेकर अमृतसर में सर्वप्रथम इस संघ की स्थापना की थी।

श्री चैनलाल जी सियालकोट में 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' विभाग के 'कारेवां' थे। अपने जैन समाज में भी इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

कहा जाता है, कि स्यालकोट के जैन मोहल्ले में 300 से अधिक जैन परिवार रहते थे। भारत-पाक विभाजन के समय इस मोहल्ले की सुरक्षा की पूर्ण जिम्मेदारी आपने निभाई थी।

सुरक्षा प्रबंध हेतु आपने मोहल्ले वालों से दूसरे दिन के सूर्योदय से पूर्व 20 हजार रुपये माँगे, और कहा कि उसका हिसाब कोई नहीं माँगेगा। आप पर लोगों का इतना विश्वास था, कि सूर्योदय होना तो दूर, एक घंटे में बीस हजार रुपये स्वामी जी के हाथों में आ गये।

11 अगस्त को जब इस मोहल्ले को मुसलमानों ने घेर लिया, तो लाला चैनलाल जी व उनके सहयोगियों ने जैन मोहल्ले के छहो दरवाजे बंद करके, स्वयं

ऊपर चढ़कर 24 घंटों तक मुसलमानों का सामना किया। इस संघर्ष में दो लोग गोली से मारे गये। और केवल एक मकान (श्रीमान् लाला सुंदरदास जी का) को आग लगाने में कामयाब हुए। अब तक मुस्लिम जनता यह समझती थी, कि जैन लोग धन से समृद्ध हैं, तन से नहीं। जैन लोग भीरू, कायर व बुजदिल होते है। अहिंसा को सर्वोपरि धर्म मानकर ये लोग एक चींटी की भी हत्या नहीं करते। ऐसे कायरों को लूटना बड़ा आसान है। लेकिन स्वामी चैनलाल जी की मोर्चाबंदी देखकर वे आश्चर्यचकित रह गये, कि जैन लोग बड़े बहादूर होते है, इन्हें जीतना आसान नही है।

एक दिन-रात की मोर्चाबंदी के बाद अंततः स्वामी जी ने निर्णय लिया, कि यह मोहल्ला अब खाली कर देना चाहिये, जिस स्थान पर रहने से भय, पीड़ा और आतंक हो, उसे छोड़ना ही श्रेयस्कर है। उन्होंने जम्मू जाने वाली अंतिम ट्रैन में लोगों को बिठाना शुरू किया। ट्रैन इतनी भर गई कि लोगों का बैठना तो दूर खड़े रहना कठिन हो गया। ऊपर नीचे, अंदर बाहर केवल लोग ही लोग नजर आ रहे थे, वे अपने धन, माल की परवाह किये बिना जीवन की सुरक्षार्थ ट्रैन में बैठे हुए थे। स्थिति इतनी विचित्र और वातावरण इतना डरावना आतंकपूर्ण था कि कई लोग अपने परिवारजनों से बिछुड़ गये। कौन कहाँ है, किधर बैठा है, किसी को सुध नहीं, सभी भयभीत अवस्था में गाड़ी में बैठ तो गये लेकिन ट्रैन चलाने वाला कोई ड्राईवर नहीं। कोई भी चालक इस ट्रैन को जम्मू तक ले जाने को जोखिम उठाने को तैयार नहीं था। जबकि सियालकोट और जम्मू की दूरी केवल 25 कि.मी. की थी।

रेलवे अधिकारियों ने 6 घंटे के पश्चात् एक हिन्दू ड्राईवर की व्यवस्था की और 6 मिलिट्री के सैनिक प्रदान किये।

श्रीमान् कपूरचंद जी, चैनलाल जी आदि जैन समाज के 8 सदस्य भी राईफलें लेकर चल रहे थे, हजारों लोगों की सुरक्षा का भार मात्र 14 व्यक्तियों ने संभाल रखा था।

लेकिन कहते है, जब मुसीबत आती है, तो चारों ओर से आती है, एक तरफ से नहीं। इन लोगों को अभी वीरता की कड़ी परीक्षा देनी और शेष थी। अतः जब

गाड़ी रेलवे स्टेशन से केवल एक माईल ही आगे बढ़ी, कि हमलावारों ने पटरियों को उखाड़ दिया, अतः इंजिन एकदम पटरी से नीचे उतर गया। लोगों में त्राहि-त्राहि मच गई। बचने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे, सब अपने-अपने इष्ट देव को याद करने लगे, मौत का भयंकर दृश्य सबकी आँखों में तैरने लगा। किन्तु - 'जाको राखे सांइया मार सके न कोय।' इनकी गाड़ी किसी तरह पटरी से उतरकर रुक गई, लोग कुछ आश्वस्त हुए, परंतु 'आगे क्या होगा?' इसका भय अभी तक सबके सिर पर सवार था। इतने में उपद्रवियों ने इन पर लाठियाँ बरसानी शुरू की।

स्वामी चैनलाल जी आदि आठ सज्जनों ने अपनी राईफलें निकाली और एक हजार लोगों से भिड़ गये। गोलियों की मार से दंगाई घबराकर भाग गये। संकट टला देखकर सबकी जान में जान आई उस समय लाला कपूरचन्द जी व स्वामी चैनलाल जी आदि सभी को 'ईश्वर के दूत' नजर आ रहे थे।

दंगाइयों के चले जाने के बाद उसी गाड़ी में बैठे लाला सुंदरलाल जी हिम्मत करके दो फर्लांग दूर खेत के मार्ग से चलकर Executive Officer श्री बंसीलाल जी अग्रवाल से मिले, उन्होंने Brigadier अंग्रेज से संपर्क कर शीघ्र ही Miltary भेजी। मिलिट्री ने गाड़ी में बैठे लोगों को अपने घेरे में लेकर एक अस्थाई Camp बना दिया। यहाँ से दूसरे दिन वाहनों में बैठकर सभी जम्मू पहुँचे।

इस प्रकार तीन सौ घरों के तीन हजार लोगों को बचाने वाले लाला चैनलाल जी एवं उन्हीं के चचेरे भाई कपूरचन्द जी को भला सियालकोट का बच्चा-बच्चा भी कैसे भूल सकता है ? जिन्होंने जैन मोहल्ले के तीन तरफ धावा बोलने वाले दंगाइयों के सारे प्रयासों को विफल करके सभी को सुरक्षित जम्मू तक पहुँचा दिया। मौत से लड़कर उस पर विजय प्राप्त करने वाले भारत माता के इस शूरवीर सुपुत्र ने अपने समय में वह काम कर दिखाया, जो इतिहास में सदा-सदा के लिये अमर रहेगा । स्यालकोट जैन मोहल्ले के वंशज जहाँ भी कहीं होंगे, वे इनके उपकारों को सदा याद करते रहेंगे।

जम्मू से स्वामी चैनराज जी अपने ज्येष्ठ दो भ्राताओं के साथ लुधियाना जाकर रहने लगे। वहाँ पर भी आप विश्व हिन्दू परिषद् के सक्रिय कार्यकर्ता रहे।

विश्व हिन्दु परिषद् के द्वारा संचालित होस्पीटल में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

आप सच्चे देशभक्त थे। घर-घर जाकर नवयुवकों को देश के लिये तैयार करते और उन्हें 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' के सदस्य बनाते। जैन मोहल्ले में ही ऐसे तीन सौ नवयुवकों को सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता था।

स्वामी चैनलाल जी का मुस्लिम आंतकवादियों पर इतना भय सवार हो गया कि जैन मोहल्ला खाली हो जाने के एक महिने बाद भी मुस्लिम लोग अंदर नहीं घुसे।

आजकल कुछ लोगों की मान्यता है, कि ओसवाल एक वणिक जाति है, उसका राजनीति एवं वीरता से कोई संबंध नहीं, उनकी इस मान्यता को लाला कपूरचंद जी एवं स्वामी चैनलाल जी की वीरता, शौर्यता, देशप्रेम एवं कार्यकुशलता ने डंके की चोट से भ्रमात्मक सिद्ध कर दिया। एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज इतिहसवेत्ता का कथन है कि, "महान पुरुषों के कार्यों का वर्णन ही इतिहास का प्रधान सेतु है। महान पुरुषों की कार्यावली ही ऐतिहासिक घटनाएँ होती हैं।"

महासती कौशल्या देवी जी के मामा स्वामी चैनलाल जी और कपूरचन्द जी ने देश की रक्षा के लिये अपना तन-मन-सर्वस्व समर्पित किया, तो उन्हीं के उज्जवल वंश को और भी समुज्जवल किया है महासती जी की संयम, क्षमा, निर्लोभता, निरभिमानता एवं अपूर्व त्याग भावना ने।

"सहस्रों वर्ष विचरकर के सबको पथ-प्रदर्शन दो।
अध्यात्म की दिव्य-ज्योति, ज्ञान का दिव्य दर्शन दो।।"

卐

महासती जी की गुरुणी-परम्परा

क्रम	नाम	वि. संवत्
1.	पंजाब की आद्या साध्वी श्री खेतां जी म.	1750
2.	पू. श्री वगता जी म.	1750-1780
3.	धर्म प्रचारिका श्री सीता जी म.	1755
4.	शास्ता साध्वी श्री खेमां जी म.	1800
5.	आर्या सजना जी म.	1865
6.	महाप्रभाविका आर्या श्री ज्ञाना जी	1870-1895
7.	साध्वी श्री खूबांजी	1881-1931
8.	साध्वी श्री मूलां जी	1897-1903
9.	तपस्विनी साध्वी श्री मेलोजी	1901-1964
10.	महान तत्त्वज्ञा प्रवर्तनी महासती श्री पार्वती जी म.	1924-1996
11.	वैराग्यमूर्ति श्री भगवानदेवी जी म.	1943-1962
12.	तेजस्वीनी महासती श्री द्रौपदां जी म.	1953-1992
13.	ज्ञानयोगिनी महासाध्वी श्री मोहनदेवी जी म.	1970-2023
14.	सरलमना श्री रोशनमती जी म.	1970-2023
15.	पंजाब उपप्रवर्तनी श्री केसरदेवी जी म.	1995 से निरंतर
16.	अध्यात्मयोगिनी श्री कौशल्या देवी जी म.	2003 से निरंतर

आध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी का धर्म परिवार

महासती केसरदेवी जी महाराज

महासती कौशल्या देवी जी महाराज

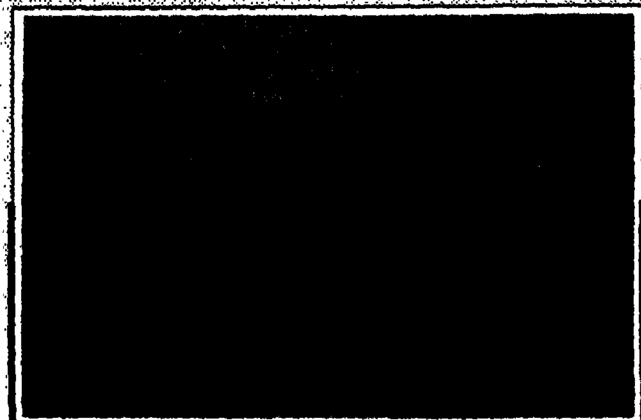
- श्री विमला श्री जी म.
  एम. ए., जैन सिद्धान्ताचार्य
  - श्री उर्मिला श्री जी
    जैन सिद्धान्तशास्त्री
    - श्री निधि श्री जी
      बी. ए.
  - श्री कृपा श्री जी
    जैन सिद्धांताचार्य
- डॉ० श्री सरोज श्री जी म.
  एम. ए., पी. एच डी
  जैन सिद्धान्तशास्त्री
  - श्री यशा श्री जी
    बी. ए.
  - श्री कौमुदी श्री जी
    बी. ए.
- डॉ० श्री मंजु श्री जी म.
  एम. ए. पी. एच डी
  जैन सिद्धान्ताचार्य
  - तपस्विनी
    श्री भारती श्री जी
  - श्री अक्षय श्री जी
    डबल एम. ए.
    जैनसिद्धान्तशास्त्री
  - श्री मल्ली श्री जी
    बी. ए. जैन सिद्धांत
    प्रभाकर
  - श्री प्रगति श्री जी
    बी. ए. जैन सिद्धांत
    प्रभाकर
  - श्री संबोधि श्री जी
  - श्री करुणा श्री जी
- श्री विजय श्री जी म.
  एम. ए.
  जैन सिद्धान्ताचार्य
  - श्री प्रियदर्शना जी म.
    साहित्य रत्न,
    जैन सिद्धांताचार्य
  - श्री प्रतिभा श्री जी
    साहित्य रत्न
    जैन सिद्धांताचार्य

चातुर्मास-सूचि

क्रम	सन्	वर्षावास
1	1947	पटियाला (पंजाब)
2	1948	अंबाला (हरियाणा)
3	1949	करनाल (हरियाणा)
4	1950	दिल्ली, सब्जीमंडी
5	1951	दिल्ली, सब्जीमंडी
6	1952	दिल्ली, सब्जीमंडी
7	1953	दिल्ली, चाँदनी चौंक
8	1954	दिल्ली, सब्जीमंडी
9	1955	दिल्ली, सब्जीमंडी
10	1956	दिल्ली, चाँदनीचौंक
11	1957	दिल्ली, सब्जीमंडी
12	1958	बड़ौत (उ. प्र०)
13	1959	दिल्ली, दरियागंज
14	1960	दिल्ली, सब्जीमंडी
15	1961	बड़ौत (उ. प्र०)
16	1962	दिल्ली, सब्जीमंडी
17	1963	दिल्ली, चांदनी चौंक
18	1964	जयपुर (राजस्थान)
19	1965	उदयपुर (राजस्थान)
20	1966	दिल्ली, चाँदनी चौंक
21	1967	दिल्ली, सब्जीमंडी
22	1968	दिल्ली, सब्जीमंडी
23	1969	दिल्ली, शक्तिनगर
24	1970	दिल्ली, शक्तिनगर

क्रम	सन्	वर्षावास
25	1971	उदयपुर (राजस्थान)
26	1972	बंबई, खार (महा०)
27	1973	बंबई, घाटकोपर (महा०)
28	1974	बंबई, अंधेरी वेस्ट (महा०)
29	1975	पूना, साधना सदन (महाराष्ट्र)
30	1976	जालना (महाराष्ट्र)
31	1977	हैदराबाद, रामकोट (आं०प्र०)
32	1978	सिकंदराबाद (आं०प्र०)
33	1979	सिकंदराबाद (आं०प्र०)
34	1980	बैंगलौर (कर्नाटक)
35	1981	मैसूर (कर्नाटक)
36	1982	बैंगलौर (कर्नाटक)
37	1983	मद्रास साहूकार पेठ (तमिलनाडू)
38	1984	मद्रास धोबी पेठ (तमिलनाडू)
39	1985	पूना (महाराष्ट्र)
40	1986	बंबई, खार (महा०)
41	1987	पूना (महाराष्ट्र)
42	1988	धूलिया (महाराष्ट्र)
43	1989	उज्जैन (म०प्र०)
44	1990	जयपुर (राजस्थान)
45	1991	दिल्ली, वीरनगर
46	1992	दिल्ली, कोल्हापुर रोड
47	1993	दिल्ली, अशोक विहार
48	1994	दिल्ली, चाँदनी चौक
49	1995	बड़ौत (उ०प्र०)

आभार-दर्शन



श्रीमति राजदेवी जी और श्रीमान् ज्ञान चन्द जी

इस प्रकाशन में मुख्य सहयोगी हैं- लाहौर निवासी स्व० लाला ज्ञानचंद जी एवं उनकी धर्मपत्नी स्व० श्री राजदेवी जी, के पुत्ररत्न — शादीलाल जी, दर्शन लाल जी, सुरेन्द्र कुमार जी एवं सुभाष कुमार जी।

कहते हैं 'बहुरत्ना वसुंधरा' यह पृथ्वी अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित है। जहाँ जड़रत्नों की प्रचुरता है वहाँ इस धरातल पर चेतन रत्नों की भी कमी नहीं है। ऐसे ही सुंदर श्रेष्ठ रत्नों में चमकीला रत्न है- स्व० लाल ज्ञानचंद जी का समस्त परिवार।

सामान्यतया सभी का अनुभव है, कि जैसा बीज बोया जाता है, वैसी ही फसल प्राप्त होती है। इसी प्रकार माता-पिता द्वारा सत्कार्यों से सिंचित सुसंस्कार बच्चों में आते ही हैं।

लाल ज्ञानचंद जी अपने समय के वरीष्ठ व्यापारियों में से एक थे। आपकी कार्य कुशलता, आपके सुझाव और निर्णायक शक्ति विशेष रूप से प्रशंसनीय थी। जहाँ आपका व्यावहारिक जीवन श्रेष्ठ था वहाँ आपका धार्मिक

जीवन भी उच्च स्तरीय था। स्थान स्थान पर दान देकर आपने अनेक संस्थाओं को समृद्ध किया।

आपकी जीवन संगिनी श्रीमति राजदेवी भी आपसे किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं थी। उनकी मनोभूमि इतनी कोमल थी, कि किसी भी पीड़ित को देखकर द्रवित होकर जो भी हाथ में आता, उसका दान कर देती थी। आपकी विशेषता थी, कि जो भी आपके द्वार पर आया उसे पूर्ण ममत्व एवं स्नेह से अन्य को बताये बिना संतुष्ट कर देती थीं। उनकी इस दानवृति का तब पता लगा, जब उनकी मृत्यु के बाद उनके सहयोग से उपकृत लोगों ने आकर बताया। उन्होंने अपने जीवन में इस लोकोक्ति को पूर्ण रुप से सिद्ध कर दिखाया – 'सौ शिक्षक बराबर एक माता'। महासती कौशल्या देवी जी की आप संसारपक्ष में भुआ लगती थीं।

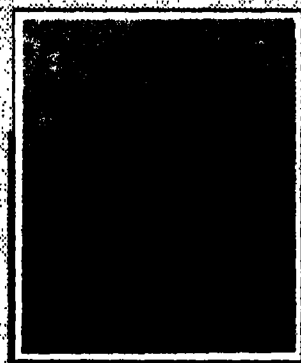
आपके ही सुसंस्कार आपके पुत्र, पुत्रियों एवं पुत्रवधुओं में पल्लवित हुए हैं। वे भी जन कल्याण के अनेकविध कार्य करते हुए अपने माता-पिता के नाम को रोशन करते हुए चार चाँद लगा रहे हैं।

श्रीमान् शादीलाल जी, दर्शन कुमार जी एवं सुरेन्द्र कुमार जी वर्तमान समय में अच्छे उद्योगपति हैं। साथ ही माता द्वारा प्रदत संस्कार आज धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में निरंतर वटवृक्ष बनकर पनप रहे हैं। आज भी श्रीमान शादीलाल जी शारीरिक रुप से अस्वस्थ होने पर भी जैन समाज के अग्रगण्य कार्यकर्त्ता हैं। वीर नगर एस० एस० जैन सभा को आपका सक्रिय योगदान प्राप्त है। इसी संघ द्वारा संचालित महावीर जैन स्कूल की आप नींव है। प्रतिवर्ष आपकी ओर से करीब एक-डेढ़ हजार गरीब बच्चों को स्कूल ड्रेस व पुस्तकें दी जाती हैं। आप भी अपने पिताजी की तरह सूझ-बूझ सम्पन्न हैं। जिसका परिणाम है-अन्य तीन लघुभ्राताओं द्वारा आदर-बहुमान प्राप्त करना तथा समस्त पारिवारिक सदस्यों का नेतृत्व व उनके द्वारा सम्मान का भाव। परिवार में छोटे से लेकर बड़े तक कोई भी कार्य आपकी सलाह बिना नहीं होता।

ऐसे नर रत्न दानवीर कर्मठ नेता समय-समय पर हर क्षेत्र में अपना योगदान देते हुए धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय स्तर को ऊँचा उठायें, ऐसी शुभकामना।



श्रीमान् राम लाल जी



श्रीमति कमला देवी जी

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रमुख सहयोगियों की कड़ी में एक और नाम है– स्व० रामलाल जी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमति कमला देवी जी के सुपुत्र–समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता दानवीर उत्साही नररत्न श्रीमान् सुरेन्द्र मोहन जी – श्रीमान् कुलभूषण जी जैन।

जैन ऊनवालों के नाम से प्रसिद्ध आपके पिताश्री लाला रामलालजी जैन, श्रीमान् गंगारामजी तथा श्रीमती गुरदेईजी के सुपुत्र व महासती श्री कौशल्यादेवी जी म० के संसारपक्षीय चाचा थे। गंगारामजी ने 1890 में अपना व्यवसाय सनड्राइ गुड्स (Sundry Goods) के रूप में खोला था, किन्तु शीघ्र ही वह एक जनरल मर्चेन्डाइस ट्रेड (General Merchandise trade) के निर्यातक फर्म मेसर्स हीरालाल गंगाराम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आठ वर्ष की लघु वय में पिता श्री का साया सिर से उठ गया। 17 वर्ष की लघु वय में आपका विवाह श्रीमान् जयवंतमल जैन अमृतसर वालों की सुपुत्री श्रीमती कमलादेवी जैन से हुआ। 21 वर्ष की उम्र में आपने अपना स्वतंत्र व्यवसाय मेसर्स गंगाराम रामलाल के नाम से प्रारंभ किया। 1947 में भारत विभाजन के पश्चात् दिल्ली में आकर आपने अपनी व्यावसायिक क्षमता एवं ईमानदारी से हैंड निटिंग वूल (Hand-Knitting Wool) के क्षेत्र में अपार ख्याति अर्जित की। एक कुशल

व्यवसायी के साथ ही आप कई संस्थाओं के उत्साही कार्यकर्ता रहे हैं। कई वर्षों तक आप महावीरा जैन संघ के अध्यक्ष, पश्चिमी पंजाब रिहेबिलिटेशन असोसियेशन (West Punjab Rehabilitation Association) एवं एस० एस० जैन सभा वीर नगर के उपाध्यक्ष, दिल्ली हैंडनिटिंग वूल प्रोसेसर्स युनियन (Delhi Hand Knitting Processors Union) के मंत्री रहे हैं। मुनि श्री सुशील कुमारजी द्वारा प्रेरित विश्व धर्म-सभा (World Religions Conference) दिल्ली शाखा के सक्रिय कार्यकर्ता रहे हैं। भगवान महावीर की 2500 वीं निर्वाण शताब्दी समारोह में आपका सक्रिय सहयोग रहा तथा जिस समय 27 अगस्त 1974 में आपका स्वर्गवास हुआ, उस समय श्री आप दिल्ली प्रदेश के खजांची के रुप में नियुक्त थे।

आपकी धर्मनिष्ठा धर्मपत्नी श्रीमति कमला देवी जी आज भी गरीबों की मसीहा एवं एमाज में अग्रगण्य महिला हैं। अत्यंत शांत स्वभाव, मृदुमानस, परिमित एवं मधुर भाषण, गुप्तदान आपके जीवन के अनमोल गुण हैं। इस उम्र में भी आपकी शास्त्र-रुचि इतनी है कि जब भी देखो शास्त्र-पठन या स्त्रोत चिंतन, धर्मचर्चा आदि में संलग्न रहती हैं।

आपके ही सुसंस्कार आपके पुत्र-पुत्रियों एवं पुत्रवधुओं में संपूर्ण रुप से विकसित हुए हैं। श्रीमान् सुरेन्द्रमोहन जी एवं श्रीमान् कुलभूषण जी व्यावसायिक सामाजिक एवं धार्मिक प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी हैं। आपने भी अपने पिता ही की तरह वूल प्रोसेसिंग (Wool Processing) में खूब यश और ख्यति प्राप्त की है। के० डी० आर० वुल० (K.D.R. Wool) के नाम से आप भारत भर में प्रसिद्ध उद्योगपति के रुप में प्रतिष्ठित हैं। स्वभाव से आप मृदुभाषी, शांत एवं मैत्रीपूर्ण व्यवहार के धनी हैं। महावीरा सीनियर मॉडल स्कूल के आप प्राण हैं। आपके परिवार का स्नेह, संगठन, आत्मीयता एवं सद्भावना प्रशंसनीय है। आप जैसे दानवीर नररत्न समाज एवं देश के गौरव हैं।



श्री दर्शन कुमार जैन (चूड़ियाँ वाले)
पिता श्री सुशील कुमार जैन



श्री देव राज जैन
पिता श्रीमति अर्चना जैन

प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्य प्रमुख सहयोगी हैं-श्रीमान् दर्शन कुमार जैन एवं श्री देवराज जी जैन।

श्री दर्शनकुमार जैन सपुत्र श्री स्व० लाल चंद जी जैन स्यालकोट वालों का सम्पूर्ण जीवन मेहनत एवं कार्यशीलता की जीवंत मिसाल है। जालंधर में एक छोटी सी नौकरी करते हुए उनका विवाह श्रीमति त्रिशला जैन (अमृतसर निवासी) के साथ सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात आप दिल्ली चले आए और लगभग 35 वर्ष पूर्व व्यापार के जिस छोटे से पौधे को आपने रोपा था वह आज बढ़ कर विशाल वृक्ष बन चुका है जिसकी छाया तले आज उनका समस्त परिवार सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा है धन-धान्य बढ़ने के साथ-साथ आपमें दानशीलता भी बढ़ी है और आयु के साथ विवेकशीलता भी। सतत् रुप से मेहनती एवं कार्यशील आपका जीवन सभी के लिए एक प्रेरणास्त्रोत हैं। उनका आशीर्वाद हमें सदैव प्राप्त होता रहे, यही हमारी कामना है।

श्री देवराज श्री जैन लाहौर वाले सांसारिक पक्ष से महासती श्री कौशल्या श्री जी महाराज के भाई होते हैं और उन्ही के समान, मितभाषी, मृदुभाषी एवं सीधे सादे इंसान हैं। बिना किसी राग द्वेष, छल कपट व ईर्ष्या के इनका जीवन सरलता की एक मिसाल है। स्व० धर्मपत्नी श्रीमति धनेश जैन के असामयिक एवं दुखद मृत्यु के पश्चात उन्होने अपने जीवन को और भी सादा एवं आत्म केन्द्रित कर लिया है। साथ ही उनमें धार्मिक प्रवृत्ति भी बढ़ी है। भगवान महावीर स्वामी हमें आपके आशीर्वाद से सदैव लाभान्वित करें, यही हमारी कामना है।

श्रीमति अर्चना जैन
श्री सुशील कुमार जैन
ए-300, डेरावाल नगर, दिल्ली